राहबीती

यशपाल

'राहबीती'

अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित श्री यशपाल की पूर्वी योरुप की यात्रा के वर्णनों ने पाठकों में एक अदम्य कौतुहल उत्पन्न कर दिया है। पाठकों के उसी कौतुहल को पूरा करने के लिये यशपाल की यात्रा के अनुभव 'राहबीती' शीर्षक से प्रकाशित किये जा रहे हैं।

यशपाल की वर्णन और विश्लेषण शैली कितनी यथार्थ और तटस्थ है, यह उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' और ऐसे अन्य लेखों मे प्रमाणित है। रोचकता में यह उपन्यास के समकक्ष रहती है :

विप्लव पुस्तकमाला—३३

राहबीती

यशपाल

• तीसरा संस्करण
जनवरी १९६६

• मूल्य
६ रुपये ५० पैसे

• प्रकाशक
२१, शिवाजी मार्ग
लखनऊ

दो शब्द

एक कुएं में जन्म पाकर उसी में बूढ़े हो जाने वाले मेंढक की कहानी प्रसिद्ध है। उस मेंढक का विचार था कि संसार में मेंढक ही एकमात्र जीव है और कुआं ही संसार है। अवसरवश एक नया घूमा-फिरा मेंढक कुएं में आ गिरा। कुएं के मेंढक को बाहर घूमे-फिरे मेंढक की बातों पर विश्वास करने में कठिनाई हुई थी। फिर भी बाहर से आये मेंढक की बातें कुएं के मेंढक को मनोरंजक तो लगी ही होंगी। राहबीती से यदि और कोई प्रयोजन पूर्ण न होगा तो वह कुछ कौतूहल उत्पन्न करेगी ही, उस से कुछ मनोरंजन तो होगा ही। इस में काबुल और प्राहा जैसे दो युगों के प्रतिनिधि नगरों की चर्चा है।

राहबीती के रूप में यात्रा के कुछ अनुभव और तत्-सम्बन्धी विचारों की उधेड़बुन प्रस्तुत करने के लिये किसी सफाई की आवश्यकता नहीं है। यह दावा भी नहीं है कि यात्रा की इस कहानी में किसी अगम रहस्य का पर्दाफाश कर रहा हूं। जो और जैसा देख पाया हूं और उन प्रसंगों में अपनी प्रतिक्रियाएं पाठकों के सम्मुख रख रहा हूं।

मूल रूप से एक जाति और प्रकृति के जीव मनुष्य, परिस्थितियों के भेद से किस प्रकार भिन्न भाषाएं बोलते और भिन्न व्यवहार करते हुये भी कितने एक जैसे हैं! भिन्नता और सादृश्यों का द्वन्द्व मनोरंजक तो है ही विचारोत्पादक भी हो सकता है।

इतनी लम्बी बात सुनने के लिये पाठकों को अग्रिम धन्यवाद!

१२ अक्टूबर १९५६ — यशपाल

समर्पण

मेरी पूर्वी योरुप की यात्रा का यह वर्णन यात्रा का अवसर देने वाले अपने अतिथियों और इस यात्रा के अनुभवों के प्रति जिज्ञासु पाठकों को समर्पित है।

यशपाल

प्रसंग और विषय

विमान और कल्पना की उड़ान

रोम और भारत

सुन्दर नगर प्राहा का जन-समाज

लेखकों की कांग्रेस

अर्थ और व्यवस्था

लेखकों के प्रासाद और मधुशाला

परम्परा और नयी संस्कृति

प्राहा की परिधि में

तात्रा का हिमशिखर और प्रदेश

कार्लोविवारी, सोची और कालदूम

जिप्सी और महलों का नगर

रोमांचक यात्रा

जूता सम्राट बाटा

काबुल और तिर्मिज

बर्लिन में ध्वंस की विभीषिका

पूर्वी और पश्चिमी बर्लिन के बाहर भीतर

रहस्यमयी सुरंग

बुखारेस्ट का जीवन

धर्म और कुसंस्कार

कोरताजा, दब्रोजे और मजीदिया का नया पुराना जीवन

राहबीती

तीसरी बार योरुप जाने का निमंत्रण मिला तो उल्लास से किलक उठने का कारण नहीं था। यह निमंत्रण चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राग में लेखकों की कांग्रेस में सम्मिलित होने के लिये था। कुछ समय से भारत के लेखकों को सामूहिक प्रयत्न के लिए संगठित करने, लेखकों की स्वतंत्रता की रक्षा के लिये सचेत होने और राष्ट्र-निर्माण में लेखकों का सामूहिक सहयोग पाने के प्रश्नों पर बातें चल रही हैं। इन प्रयत्नों और प्रवृत्तियों से मैं भी उदास नहीं रहा हूं। ऐसी समस्याओं के प्रति दूसरे देशों के लेखकों के दृष्टिकोण क्या हैं, यह जानने का अवसर था। तार से मिले निमंत्रण की स्वीकृति तार से प्राग भेज दी और आकाश यात्रा के लिये तैयार हो गया।

विमान में पहली बार पृथ्वी से ऊपर उठने पर नीचे देखने का अदम्य कौतूहल होता है। मैं तो बहुत बार विमान से यात्रा कर चुका हूं, फिर भी रात में आकाश से बम्बई की रोशनी आकर्षक मालूम होती ही है। सामन्तवादी साहित्य की उपमा देनी हो तो कहा जायगा, पृथ्वी सूर्य से नये मिलन की उत्कंठा और आशा में रात के अंधेरे में शृंगार करने के लिए सूर्यकांत मणियों के अगणित हार, मेखलाएं और लड़ियां फैलाये है। जनवादी साहित्य में शायद कहा जायगा, सूर्य के दमन और उत्ताप से मुक्त होने पर पृथ्वी असंख्य नेत्रों से प्रकाशमान हो उठी है। जो भी हो, यह दृश्य कुछ ही पल के लिए दिखाई पड़ता है। विमान की गति तो प्रायः कल्पना के समान तीव्र होती है। विमान रात के ठीक बारह बजे बम्बई से उठा था। विमान की चुस्त परिचारिकाओं ने कुर्सियों के बटन दबा कर उन्हें फैला दिया। यात्री कुर्सियों पर यथा-सम्भव पसर कर आंखें मूंदने लगे। छत पर लगी रोशनी बुझा दी गई। सुबह आठ बजे, दो

हजार मील लांघ कर मिस्र की राजधानी कैरो में ही विमान को पृथ्वी पर उतरना था ।

विमान में प्रत्येक कुर्सी के ऊपर भी छोटी-सी रोशनी लगी रहती है । इच्छा होने पर दूसरों को चौंधियाये बिना जब तक चाहे पढ़ा जा सकता है । नींद नहीं आ रही थी परन्तु दूसरों की देखादेखी आंखें मूंद लीं । सोच रहा था, एक झपकी में दो हजार मील से अधिक दूर उड़ जायेंगे । मामूली बात नहीं है । यह भी ख्याल आया कि इतने बड़े साधनों और साज-सज्जा के सहारे हम आकाश यात्रा कर रहे हैं । हमारे ऋषि तो योग बल से अथवा तंत्र बल से, स्थानान्तरण सिद्धि द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़ जाया करते थे । ऐसी सिद्धि प्राप्त करने के लिये जीवन भर के तप की आवश्यकता होती थी । आज तप का स्थान विमान-यात्रा के टिकट ने ले लिया है । रेडियो की सहायता से दस-बीस हजार मील दूर का समाचार भी सब लोग सुन सकते हैं । मनुष्य की शक्ति यह सब आविष्कार के तप का फल है । आध्यात्मवादी तप का फल तपस्वी व्यक्ति तक ही सीमित रहता था । वैज्ञानिक अविष्कारों के भौतिक तप का फल पूरा समाज भोग सकता है । आखिर नींद आ ही गई ।

"चाय लेंगे या काफी ?" सुन कर आंखें खोलीं ।

सामने युवती का मुस्कान भरा चेहरा था । पलक झपक कर समाधान किया, आकाश विचरण कर रहा हूं अवश्य, परन्तु स्वप्न तो नहीं देख रहा हूं ! बात सोमरस अथवा अमृत की नहीं, चाय-काफी की ही है । सामने स्वर्ग की अप्सरा नहीं, इंडिया इंटरनेशनल की विमान परिचारिका (एयर होस्टेस) ही है । सूर्योदय हो चुका था । नीचे बहुत दूर असीम मानचित्र की तरह फैली हुई पृथ्वी पर रेतीले मैदान, बंजर पहाड़ियां और समुद्री खाड़ियों के तट दिखाई दे रहे थे । चाय के साथ ही नाश्ता आरम्भ हो गया । बच्चों को लेकर यात्रा करते समय चतुर मां खाने के लिये पर्याप्त सामग्री रख लेती है । बच्चे यात्रा में कुछ न कुछ खाते ही रहना चाहते हैं । विमान की परिचारिकाएं सभी यात्रियों को वैसा ही समझती हैं । कुछ न कुछ खिलाते ही रहना चाहती हैं । खाने का समय न हो तो टाफी, लेमन-ड्राप्स की तश्तरी ही सामने करती रहती हैं ।

इधर तीन बरस से विमानों में यात्रियों की दो श्रेणियां बना दी गई हैं । पूरा समाज ही श्रेणियों में बंटा है तो विमान ही कैसे बचा रहे । फर्स्ट क्लास के यात्रियों को तो फर्स्टक्लास ही कहा जाता है परन्तु दूसरी श्रेणी के यात्रियों

का मन रखने के लिये उन्हे टूरिस्ट क्लास कह दिया जाता है। फर्स्ट क्लास के यात्रियों के लिये खाने के समय से पहले और बाद में टिकट के मूल्य में ही अनेक प्रकार की मदिरा भी यथेष्ट मात्रा में प्रस्तुत की जाती है। भारत सरकार मद्य को अनैतिक समझती है। भारत के विमान अब राष्ट्रीय नियन्त्रण में है। विदेश जाने वाले विमानों में मद्यनिषेध की नीति का विकल्प है क्योंकि यात्रियों को दूसरे राष्ट्रों के विमानों के अनुसार सुविधा देने की व्यवसायिक होड का प्रश्न भी तो है!

कैरो में तेल भरने के लिये विमान को प्राय घंटे भर तक रुकना पडता है। यात्रियों का यह समय न खले इसलिये शरबत, चाय, काफी और पेस्ट्री का प्रबंध कर दिया जाता है। प्रतीक्षालय में स्मृति के उपहारों की दुकानें है। हाथी दांत और पीतल का सामान लखनऊ, दिल्ली या हैदराबाद की बनावट से बहुत मिलता-जुलता जान पडता है। शायद वह भारत से ही जाता है वर्ना साम्य विस्मयजनक है। मूल्य में भारी अन्तर है। उस मूल्य से केवल अमरीकन या योरोपियन यात्री ही आकर्षित हो सकते है इसलिये यह दुकान-दार भारतीय यात्रियों को देखकर विशेष उत्साहित नही होते। कैरो के विमान अड्डे पर लोग अपने रूप, रंग के भेद से भिन्न-भिन्न काम करते दिखाई देते है। अफसर गौरवर्ण और सुस्वरूप है। बैरागिरी और कुली का काम काले रंग और लम्बी गर्दन के दूसरी ही नस्ल के लोग करते है।

विमान में बैठते ही पान और भोजन आरम्भ हो गया। भोजन के बाद जरा ऊंघ आई थी कि एयर होस्टेस (इसके लिए यदि परिचारिका शब्द ठीक नही तो वैमानिका क्या बुरा है?) ने टाफी, लेमन-ड्राप्स की तश्तरी सामने कर मुस्करा कर सूचना दी—"रोम के अड्डे पर उतर रहे है।"

विमान प्राय पन्द्रह से अठारह हजार फुट की ऊंचाई पर उडता है। बाहर उतनी सर्दी रहती है जितनी सदा हिम से ढके रहने वाले पर्वत शिखर पर होनी चाहिए। भीतर ऐसा कि गरम कपडे खलते नही और उनकी आवश्यकता भी अनुभव नही होती। नीचे देखा तो पृथ्वी भूरे कम्बलों के पर्दों की ओट में थी। विमान बादलों के उस आवरण को बेध कर नीचे आया। पृथ्वी पर रिमझिम बूंदाबूंदी हो रही थी। विमान से निकलने पर गरम कोट, जो बम्बई में संकट जान पड रहा था, सुखद जान पडने लगा। यह भी पछतावा हुआ कि ओवर-कोट साथ क्यों नही लिया।

रोम

विमान बदलने के लिये रोम में तीन घंटे ठहरना आवश्यक था। रोम पहले कभी देखा नहीं था। कौतूहल था, खुशी भी थी। यात्रा में यह व्यापार अप्रिय नहीं लगा। विमान के अड्डे से नगर जाने के लिए बस में बैठा तो ड्राइवर ने टिकट हाथ में थमा कर पांच सौ लीरा मांग लिए।

इटली का सिक्का लीरा कहलाता है। पांच सौ सुन कर विस्मय प्रगट करने के लिए ड्राइवर के मुख की ओर देखा। वह बिलकुल तटस्थ था। अंग्रेजी समझता न था। भारत में भ्रम है कि अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है। योरुप में प्रवेश करते ही यह भ्रम दूर हो जाता है। यात्रा की हुंडियां (ट्रैवलर्स चेक) दिखा कर उसे आश्वासन दिया कि नगर के दफ्तर में पहुंच कर हुंडी तुड़ा कर दाम दे दूंगा। एक सौ दस लीरा का मूल्य प्रायः एक रुपये के बराबर होता है। उतने से फासले के लिए यह अधिक ही था। जैसे किसी समय काश्मीर के लोगों की प्रवृत्ति थी, रोम के लोग भी यात्रियों की जेब से पैसों का बोझ हलका कर देने के लिए व्यग्र रहते हैं।

हमारे देश में तो अब भाव-तोल करने का चलन कम हो रहा है परन्तु इटली, फ्रांस, मिस्र और अरब में भाव-तोल खूब चलता है। इटली में सौ लीरा दाम बता कर साठ या उस से भी कम ले लेना असाधारण बात नहीं है। आम तौर पर; बख्शीश और रिश्वत की आशा ही नहीं की जाती, बल्कि मांग भी की जाती है। बख्शीश और रिश्वत का सम्बन्ध मनुष्य के आत्मसम्मान से रहता है। जब पेट निरंतर खाली रहता है, मनुष्य की रीढ़ सूखे में मर गई फसल की तरह गिर जाती है। युद्ध के बाद फ्रांस, इटली, आस्ट्रिया और जर्मनी आदि की अवस्था बहुत गिर गई थी और उसके साथ ही वहां के लोगों का आत्म-सम्मान भी। आत्म-सम्मानी व्यक्ति बिना कमाये मांग कर या बख्शीश के रूप में कुछ स्वीकार नहीं कर सकता। वियाना का अनुभव है कि डाक-घर से टिकट कार्ड खरीदने पर यदि खिड़की के पैसे तुरन्त न उठा लिये जायें तो डाक कर्मचारी पैसे समेट कर बख्शीश के लिए मुस्कराकर धन्यवाद दे देगा।

फ्रांस और इंगलैंड में व्यवहार का अन्तर छोटी सी बात से समझा जा सकता है। वियाना से रेल द्वारा लन्दन जाते समय 'इंगलिश चैनल' को जहाज

से पार करना होता है। कैले में फ्रांस के कुली ने गाड़ी से जहाज में सामान रखने के लिए धौंस से दो रुपये मांग लिये। मुझे विस्मित देख उस ने अधिकार-पूर्ण ढंग से उत्तर दे दिया—"यही दर है।" इंगलैंड के किनारे फोकस्टोन में उसी सामान की मजदूरी अंग्रेज कुली से पूछने पर उत्तर मिला, दर तो पांच ही आना है पर दस आने (एक शिलिंग) दे देने पर उस ने भरपूर धन्यवाद भी दे दिया।

एक सहयात्री से फ्रांस का जो अनुभव सुना वह तो कहानी ही जान पड़ती है। किसी भी देश में प्रवेश करते समय पासपोर्ट और वीसा (राहदारी का परवाना और प्रदेश की अनुमति का पत्र) देखा जाता है। पासपोर्ट में व्यक्ति के परिचय के लिये उस का फोटो भी रहता है। दो वर्ष पूर्व यह सज्जन लन्दन से पैरिस जा रहे थे। पासपोर्ट दिखाने के लिये पांत में खड़े थे। पांत में तीन ही व्यक्ति थे परन्तु सब से आगे खड़ा पासपोर्ट दिखाने वाला व्यक्ति हट ही नहीं रहा था। उन्होंने जानना चाहा, ऐसी कठिनाई क्या आ पड़ी है?

मालूम हुआ कि पासपोर्ट देखने वाला अधिकारी सब से आगे खड़े व्यक्ति के पासपोर्ट को जाली बता रहा था। आपत्ति की जा रही थी—'तुम्हारा चेहरा पासपोर्ट में लगे फोटो से नहीं मिलता।'

ऐसी आपत्ति कर देने पर क्या सफाई दी जा सकती है? पासपोर्ट दिखाने वाले अमेरिकन यात्री ने क्रोध प्रकट किया—"मैं कहता हूं, यह मेरा फोटो है। यहां जो लोग खड़े हैं, उन्हें दिखा कर पूछ लिया जाये।"

पासपोर्ट देखने वाले कर्मचारी का कहना था—"तुम्हारा चेहरा और यह फोटो मेरे सामने है। किसी से पूछने का क्या मतलब?"

समीप खड़े फ्रांसीसी व्यापारी ने अमेरिकन यात्री को समझाया—"झगड़े में समय नष्ट करने से क्या लाभ? दो सौ फ्रांक (लगभग ढाई रुपये) उसे थमा दो और आगे बढ़ो।"

अमरीकन ने कर्मचारी को धमकाया—"दो सौ फ्रांक की तो कोई बात नहीं परन्तु याद रखना मैं सम्वाददाता हूं, अखबार में ऐसी खबर दूंगा कि याद रखोगे।"

अधिकारी ने निःशंक उत्तर दिया—"जो चाहे बकवास कर सकते हो लेकिन तुम्हारे पास सबूत क्या होगा? याद रखना, सरकारी अफसर पर मिथ्या आरोप लगाना अपराध है……।"

यह वह फ्रांस है जो कुछ समय पूर्व योरुप का शासक और संसार का सांस्कृतिक गुरु था। फ्रांस की भाषा और रीति-रिवाज संसार के लिये आदर्श थे। इंगलैंड की पार्लियामेंट तक में फ्रेंच ही बोली जाती थी। उस समय फ्रांस शस्त्र-शक्ति में योरुप का विजेता था और सब से पहले फ्रांस ही उपनिवेशों का धन खींच कर समृद्ध बन सका था।

रोम यात्रियों के लिये महंगा ही है। अच्छे होटलों में चाय भर के लिये एक सौ लीरा दाम हो जाता है। बियर और अंगूरी शराब इस से कुछ कम में ही मिल सकती हैं। टैक्सी कीजिये तो दो-तीन फर्लांग में ही तीन सौ लीरा देने पड़ेंगे। दुर्भाग्य से उस दिन रविवार था और बूंदाबांदी भी। पैदल कुलीजियम देखने गया।

कुलीजियम का दो हजार वर्ष पुराना अस्तित्व रोमनगर के मध्य भाग में खड़ा ऐतिहासिक परिवर्तनों की साक्षी दे रहा है। इमारत इस समय खंडहर के रूप में है, परन्तु इस विराट खंडहर की अपनी भव्यता है। प्रायः छः सौ फुट लम्बी और पांच सौ फुट चौड़ी यह इमारत अंडाकार है। ऊंचाई डेढ़ सौ फुट से भी अधिक ही है। दोनों बांहों की फैलावट से भी बहुत अधिक चौड़ी दीवारों पर बनी खूब ऊंची अस्सी महराबों पर पूरी रंगशाला सधी हुई है। संध्या का समय था। बूंदाबांदी भी थी। समीप के बाग में बेंचों अथवा घास पर बैठने का अवसर न था। अल्हड़ नवयुवक और नवयुवतियों के जोड़े एक दूसरे की कमरों में बांहें डाले इन महराबों के भीतर पड़ी बड़ी-बड़ी शिलाओं पर एकान्त में बैठने के लिये स्थान खोज रहे थे। कुलीजियम की चिर-प्राचीन शिलाओं ने ऐसे ही कितने प्रणय-व्यापार देखे होंगे। बीते समय की साक्षी ये शिलायें इन प्रणय व्यापारों की नश्वरता से भी परिचित हैं और नश्वर प्रणय की अमर परम्परा को भी देखती आ रही है। इन के लिये यह सब क्रियाकलाप शायद वैसे ही स्वाभाविक हैं जैसे वर्षा और वायु।

कुलीजियम की रंगशाला में पांच मंजिलें हैं और बीच में आंगन। पांचों मंजिलों में लगभग सतासी हजार दर्शक एक साथ बैठ कर मनोरंजन करते थे। यहां सशस्त्र योद्धा दर्शकों के विनोद के लिये आमरण युद्ध करते थे। आंगन में जल-कुंड बना कर नौका युद्ध किया जाता था। यह युद्ध सिनेमा में होने वाली तलवारों की लड़ाई की तरह कृत्रिम नहीं होता था। रक्त बहता था, अंग कट कर गिरते थे और हत्याएं होती थीं। मनोरंजन के लिये मस्त सांडों और सिंहों

से मनुष्यों का युद्ध देखा जाता था। देवालयों में देवताओं की पूजा के लिए आजन्म कौमार्य व्रत में दीक्षित कर दी गई नवयुवतियां भी इन समारोहों में सम्मिलित होती थीं।

इस विनोद का सब से रोमांचक अंग होता था, हार जाने वाले योद्धा का सिर कटते हुए देखना। दर्शक पराजित योद्धा को प्राणदान देना चाहते है अथवा उस का सिर काटा जाने का दृश्य भी देखना चाहते हैं, इस प्रश्न का निर्णय प्रायः निष्पाप, कोमल हृदया देवबालाओं की अनुमति से ही होता था। यदि देवबालाएं पराजित को प्राण-दान देना चाहतीं तो अपने हाथ का अंगूठा ऊपर उठा देतीं। यदि उस के प्राणांत का दृश्य देखना चाहतीं तो अंगूठा नीचे झुका देतीं। इतिहास का कहना है कि देवबालाएं अधिकांश में युद्ध के विनोद से अतृप्त रहकर लाज से मुस्कराती हुई अंगूठे को नीचे झुका देने का ही संकेत करती थी और कुलीजियम की पांचों मंजिलों में भरा जनसमूह देवबालाओं के निर्णय से आनन्द-विभोर हो उठता था। तब शायद दया नाम की अनुभूति ने मनुष्य की संस्कृति में स्थान नहीं पाया था।

दया, उदारता, सहनशीलता आदि अनुभूतियों का परिचय तब तक मनुष्य-समाज ने कम ही पाया होगा इसीलिये उस ने अपने देवताओं में भी इन गुणों की कल्पना अथवा स्थापना नहीं की थी। मनुष्य ने अपने स्वभाव के अनुसार देवता के लिये भी नारी को कमनीय समझा था। नरबलि में देवता को प्रायः कुमारी कन्या ही अर्पित की जाती थी। देवता की पूजा-अर्चना के आयोजन का नियंत्रण प्रायः पुरुष पुजारी अथवा प्रीस्ट के ही हाथ में रहता था परन्तु देवता के सम्पर्क में आकर उन्हें अर्घ्य अर्पण करने अथवा उन्हें रिझाने का काम नारी को ही सौंपा गया था। मनुष्य ने अपनी ही तरह नारी के सम्बन्ध में देवताओं को भी ईर्ष्यालु ही समझा। उस के विचारों में देवता किसी ऐसी नारी के हाथों पूजा स्वीकार न करना चाहते थे जो केवल उन के लिए ही सुरक्षित न हो। इसीलिये ग्रीस और रोम में देवबालाओं की और भारत में देवदासियों की प्रथा चलाई गई थी। इतिहास यह स्वीकार नहीं करता कि देवबालाओं और देवदासियों पर अविवाहित रहने का बन्धन लगा कर भी इनका कौमार्य देवता के लिए ही सुरक्षित रहा हो। मनुष्य की यह आत्म-प्रवंचना कितनी उपहासास्पद थी कि वह देवता को सर्वज्ञ मानकर भी इस विषय में उसे धोखा दे सकने का विश्वास कर लेता था। मनुष्य जब अपनी

कामुकता के विज्ञापन को लज्जा का कारण समझने लगा, उसने देवताओं को भी नारी लोलुपता के कलंक से मुक्ति दे दी और देवालयों से देवबालाओं और देवदासियों की प्रथा का अन्त हो गया।

संध्या समय हल्की फुहार में उस प्रकांड खंडहर के आंगन में खड़े हो कर इतिहास की पुस्तकों में पढ़ी कई बातें याद आने लगीं। आज रोम ईसाइयत का गढ़ है परन्तु एक समय देवपूजक रोमन लोगों के विचार में ईसाइयत एक अपराध ही था। उस समय की व्यवस्था से दलित और शोषित दास और दीन लोग ही ईसा की शरण स्वीकार करते थे। उस समाज में दीनों और दासों के लिए कोई आशाएं न थी, न इस जीवन में, न परलोक में। ईसा में विश्वास उन्हें परलोक में सुख और मुक्ति की आशा देता था।

इस जीवन में निराशा पारलौकिक आशा का सहारा ढूंढ़ती है। उस समय ईसाई बनने का अर्थ समाज और शासन की व्यवस्था को अन्याय समझना और उस के प्रति विद्रोही विचार रखना था। जैसे आज पूंजीवादी व्यवस्था में समाजवादी समानता का स्वप्न देखना पूंजीवाद के प्रति विद्रोह समझा जाता है। ईसाइयों, विशेष कर ईसाई साधुओं को पकड़-पकड़ कर कुलीजियम में सिंहों के सामने डाल दिया जाता था। कभी उन के शरीर पर तेल से भीगी रुई लपेट कर उन्हें दर्शकों के सामने जलाया जाता था। इस व्यवहार से दो प्रयोजन पूरे होते थे—अपराधियों को दंड दिया जाता था और धर्मभीरु दर्शकों का विनोद भी हो जाता था। ऐसे संकटों का सामना करके जिस ईसाई धर्म ने संसार के अधिकांश मनुष्यों के मन पर विजय पायी उस धर्म और संस्कृति के प्रति श्रद्धा क्यों न हो? परन्तु शासन की शक्ति हाथ में पाकर निरीहता का अभिमान करने वाली ईसाइयत में विश्वास करने वालों ने ही किया क्या? ईसा और ईसाइयत की प्रतिष्ठा के लिए किए गए युद्धों में पचासों लाख व्यक्तियों के प्राण और सैकड़ों नगर भस्म हो गए। भारत में अंग्रेजी शासन की कलम लगाने वाले क्लाइव और हेस्टिंग्स ने ही क्या किया था? मानवता के लिए बलिदान हो जाने वाले ईसा के भक्तों ने अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए जान पर खेल जाने वाले लोगों को खूनी तथा विद्रोही और भारत को दास बनाये रखने के लिए इस देश में रक्त का कीचड़ करने में जूझ जाने वालों को शहीदों की पदवी दी। लन्दन के सेंट पाल गिर्जे में उस क्लाइव की समाधि साम्राज्य निर्माता शहीद के सम्मान में बनी हुई है। मलाया में आज

थी वही बात हो रही है। कोई भी धर्म या संस्कृति जब दीनों की मुक्ति की विचारधारा बन कर चलती है तब उस का एक रूप और व्यवहार है, परन्तु वही विचारधारा शासक वर्ग के हाथ में आकर जब शासन और दमन का समर्थन करने का साधन बन जाती है, तो उस का रूप और व्यवहार बदल जाता है।

रोम प्राचीन कला के लिए प्रसिद्ध है। स्थान-स्थान पर विशाल मूर्तियां दिखाई देती हैं, प्रायः दिगम्बर। कलाकारों का प्रयोजन वस्त्रों की तड़क-भड़क दिखाना नहीं बल्कि शरीर का सौंदर्य दिखाना रहा होगा। प्राचीन मूर्तियों के वस्त्र प्रायः कुर्ती जांघिये के सैनिक वेश में अथवा शरीर पर लिपटी धोती चादर के अभिजात वर्ग के वेश में है। आज वैसा वेश किसी आधुनिक रोमन नर-नारी के शरीर पर दिखाई नहीं देता। होटल-स्प्लेंडोर के गार्डन रेस्टोरां में बैठे बैठे विचार आया कि रोमन लोगों ने अपनी प्राचीन राष्ट्रीय पोशाक क्यों छोड़ दी ? सभी स्त्री-पुरुष आधुनिक औद्योगिक युग की पोशाकें, पुरुष कोट-पतलून और स्त्रियां फ्राक या ब्लाउज-स्कर्ट पहने दिखाई देती हैं। प्राचीन राष्ट्रीय पोशाक—धोती अथवा चूड़ीदार पायजामे, अचकन की जिद्द केवल हमारे यहां ही है। यदि रोमन लोग आजकल भी ब्रूटस और सीजर की मूर्ति की भांति शरीर को चादर में लपेट कर चलने लगें तो ट्राम, बस अथवा टैक्सी पर चढ़ते समय कितनी घटनाएं हुआ करें ? जीवन के आधुनिक वातावरण में वह कैसा उपहासास्पद जान पड़ेगा। उचित पोशाक की कसौटी पोशाक का ढंग पुराना या परम्परागत होना ही नहीं मान लिया जा सकता। पोशाक का नित्य व्यवहार के अनुकूल और सुविधाजनक होना भी आवश्यक है।

●

प्राहा

स्विस एयरवेज के विमान ने, सुबह प्रायः दस बजे प्राहा के विमान अड्डे पर उतार दिया। केवल अंग्रेजी बोलने वाले लोग ही चेकोस्लोवाकिया की राजधानी को प्रेग पुकारते हैं; शेष योरुप में 'प्राहा' नाम ही चलता है। खूब ठंडी हवा चल रही थी। योरुप के शेष विमान अड्डों की भांति प्राहा हवाई अड्डे की इमारत में भी मैदान की ओर की दीवारें दोहरे शीशे की ही हैं।

मैं अपना पासपोर्ट दिखाने के लिए पांत में खड़ा था। एक नवयुवक ने अपना हाथ बढ़ा कर सम्बोधन किया—"मि० यशपाल !"

नवयुवक ने अपना परिचय अंग्रेजी में दिया—"मैं यहां सांस्कृतिक मन्त्रालय में काम करता हूं।" समीप खड़ी नवयुवती का परिचय भी दिया, "यह मिलाना हिब्शमानोवा है। आप को यहां भाषा सम्बन्धी कठिनाई न हो इसलिए यह आप को सहायता देंगी।"

मेरे अभिवादन का उत्तर मिलाना ने मुस्कराकर हिंदी में दिया—"आपसे मिल कर बड़ी प्रसन्नता हुई। हम आप का इन्तजार करते थे। माफी करेंगे मैं हिन्दी अच्छी नहीं जानती। बहुत गलत बोलती हूं।"

दो एक वाक्य हिन्दी में और दो एक अंग्रेजी में ऐसी ही बातचीत करते हम लोग विमान अड्डे के बाहर निकले। मैं मिलाना की हिन्दी में क्या दोष बताता। वह तो हिन्दी बोल रही थी जब कि मैं चेक भाषा का एक भी शुद्ध या अशुद्ध शब्द नहीं जानता था। यह सन्तोष भी न था कि मैं नहीं जानता तो क्या, मेरे देश में दूसरे लोग तो जानते हैं। अंग्रेजी के अतिरिक्त दूसरी भाषाओं का हमारा अज्ञान हमारी न्यूनता है या हमारी अहम्मन्यता ! लखनऊ में एक बार एक महोदय को व्याख्यान देते सुना था "...हिन्दी एक दिन विश्व की अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बनेगी।" ऐसे मिथ्या अहंकार की क्या नींव है ? इस समय तो सत्य यही है कि भारत को सीखना ही सीखना है। जहां कहीं भी योरुपियनों से सम्पर्क पड़ा, उन्हें सिखा सकने लायक कोई बात अपने में दिखाई दी नहीं। योरुपियन लोग भारतीयों से एक ही बात सीखने की आशा करते हैं वह है, योगाभ्यास। उन की धारणा है कि दिल्ली-बम्बई की सड़कों पर योगियों के झुण्ड फिरा करते हैं।

मिलाना ने बताया कि वह इस से पूर्व कई भारतीयों—अली सरदार जाफरी, अब्बास, गार्गी आदि भारतीय लेखकों से मिल कर बातचीत कर चुकी थी। उसने जाफरी की एक-दो कविताओं का अनुवाद भी चेक में किया था। हवाई अड्डे की इमारत के बाहर दो चेक लेखक गाड़ी में प्रतीक्षा कर रहे थे।

हम लोग नगर की ओर जा रहे थे। एक लेखक साथी ने कहा—"यदि थकान के कारण होटल पहुंचने की जल्दी न हो तो जरा चक्कर देते हुए पहाड़ी के ऊपर से चलें। नगर का विहंगावलोकन ही हो जाय।"

प्राहा छोटी-छोटी पहाड़ियों के बीच खूब फैली उपत्यका में बसा है। कुछ

भाग ऊंचाइयों पर भी हैं। पूरा नगर ऊंचे-ऊंचे गिर्जों और प्रासादों के सूची आकार बुर्जों और गुम्बदों के जंगल-सा प्रतीत होता है। नगर नई दिल्ली, बम्बई या मास्को की तरह नया बना या कोरे बर्तन-सा नहीं दिखाई पड़ता है। पत्थरों की बड़ी-बड़ी इमारतें समय और सीलन के प्रभाव से श्यामल हो गयी हैं। बहुत से गुम्बद सूचियां और गिर्जों की छतें ताम्बे की बनी हैं जो सीलन के संयोग से तूतिया—रंग हरे की हो गई हैं। नगर के मुख्य चौक और राजपथ आधुनिक ढंग के खूब चौड़े हैं। बीचोबीच ट्राम की लाइनें हैं। एक ओर आने और दूसरी ओर जाने के मार्ग हैं। उस के पश्चात् पैदल चलने की चौड़ी पटरियां। कुछ भागों में चढ़ाई उतराई है। गलियां चकले पत्थरों से मढ़ी हुई हैं। बाजार चहल-पहल से गुंजान है और दूकानें सजी हुई हैं।

नगर के बीचोंबीच वल्तावा नदी बहती है। नदी के घाट पक्के बंधे हुए हैं। नदी भरपूर बहती है। स्थान-स्थान पर अनेक पुल हैं। प्राहा को राजधानी बनाने वाले सम्राट चार्ल्स चौथे का बनाया पुल सब से पुराना है। पुल पर अनेक मूर्तियां बनी हैं। पूरा नगर ही मूर्तियों से भरा है। सभी नर-नारी कोट-पतलून और फ्राक, स्कर्ट ही पहने दिखाई देते हैं परन्तु उस में राशन में बांटे गये कपड़े की एकरूपता नहीं है। कपड़ों में काफी वैचित्र्य दिखाई देता है।

पूंजीवादी प्रणाली के नगरों और समाजवादी व्यवस्था के नगरों की दूकानों में एक अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। पूंजीवादी प्रणाली या व्यवसाय के व्यक्तिगत स्वामित्व की प्रणाली में दूकानों पर प्रायः कम्पनियों या व्यक्तियों के नाम—उदाहरणतः जेम्स एण्ड कम्पनी, छिन्न के जूते, नत्थू हलवाई, बोमनजी दरीवाला आदी नाम दिखाई देते हैं। यहां समाजवादी व्यवस्था की दूकानों पर वस्तुओं के ही नाम पर्याप्त समझे जाते हैं, उदाहरणतः दवादारू, मोजे बनियान, मीठा नमकीन, श्वेत हंस (श्वेत हंस प्राहा में शौकिया चीजों की बहुत बड़ी दूकान है।)। मालिकों के नाम नहीं।

प्राहा में अधिकांश दूकानें समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत सामाजिक सम्पत्ति ही हैं परन्तु कुछ छोटी-छोटी दूकानें व्यक्तिगत भी हैं। सब सामाजिक दूकानों में मूल्य निश्चित और एक जैसे रहते हैं। व्यक्तिगत दूकानों में मालिक व्यक्ति की इच्छानुसार यहां दूकान कर्मचारियों में अपने देश या इंगलैंड की तरह नम्रता और आग्रह का भाव नहीं दिखाई देता। एक वस्तु पसन्द न आने पर दस-बीस और दिखाने की चेष्टा नहीं होती। मांगी वस्तु दूकान में मौजूद न

होने पर 'नहीं है' टका-सा उत्तर मिल जाता है। दूकानदार में विनय की अपेक्षा सरकारी आदमी की रुखाई अधिक जान पड़ती है क्योंकि दूकान कर्मचारी एक प्रकार से सरकारी नौकर ही है। यहाँ के लोग भी ऐसा रूखा व्यवहार पसन्द नहीं करते। इन कर्मचारियों या बिक्री करने वाली लड़कियों के व्यवहार का विद्रूप करने के लिए पत्रों में कार्टून भी छपते रहते हैं। इन लोगों को विनय का व्यवहार करने की प्रेरणा देने के लिए कई उपाय भी सोचे जा रहे हैं।

चेकोस्लोवाकिया में समाजवादी व्यवस्था रक्त क्रान्ति द्वारा नहीं स्थापित हुई है। दूसरे महायुद्ध में समाजवादी रूस की सेनाओं के सहयोग से नाजी शासन को हटाने के पश्चात् नये वैज्ञानिक ढंग से समाजवादी व्यवस्था स्थापित की गई है। नाजियों का साथ देने वाले बड़े-बड़े पूँजीपतियों के व्यवसाय राष्ट्रीय अधिकार में ले लिये गये हैं, उसी प्रकार बड़े-बड़े जागीरदारों की भूमि भी राष्ट्रीय सम्पत्ति बना दी गई है। छोटे-मोटे किसान जो अपनी भूमि पर व्यक्तिगत या पारिवारिक रूप से कृषि करना चाहते थे, उन की भूमि को व्यक्तिगत अधिकार में रहने दिया गया है। वैसे ही घरेलू उद्योग-धन्धों से निर्वाह करने वाले अथवा छोटे दूकानदारों के व्यवसायों का भी बलात् राष्ट्रीयकरण नहीं किया गया। यही बात मकानों के सम्बन्ध में भी है। बहुत से मकान अब भी व्यक्तिगत सम्पत्ति हैं परन्तु निवास स्थान परिवार की संख्या के अनुसार ही मिल सकता है। किराया भी मनमाना नहीं लिया जा सकता। किराये का निश्चय और मकानों की बाँट तथा एतद्विषयक दूसरी बातों का निर्णय किरायेदारों की समिति करती है। मकान को दुरुस्त रखने की जिम्मेदारियाँ काफी हैं और बिना श्रम के सम्पत्ति से होने वाली आमदनी पर कर का बोझ मकान मालिक होने की महत्वाकांक्षा की समाप्ति कर चुका है।

लेखकों की कांग्रेस

एस्प्लेनेड होटल, प्राहा
२४ अप्रैल ५६

लेखकों की कांग्रेस का आयोजन पार्लियामेंट के हाल में किया गया था। पार्लियामेंट के सामने सड़क के साथ बनी फुलवाड़ी के पार एस्प्लेनेड होटल है। विदेशों से आमंत्रित सब लेखकों को एस्प्लेनेड में ही ठहराया गया था इसलिये आपसी बातचीत और विचार विनिमय की काफी सुविधा थी।

पार्लियामेंट का हाल देख कर विस्मय हुआ। उसे किसी भी अच्छे बड़े कालिज का हाल समझा जा सकता है। बेंच और डेस्क भी उसी ढंग के हैं। दर्शकों के लिए छोटी गैलरी है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए माइक्रोफोन लगा है। मेम्बर अपने स्थान से ही अपनी बात कह सकते हैं। उपयोगिता और आवश्यकता की दृष्टि से न्यूनता कहीं नहीं है परन्तु शाही रोब या तड़क-भड़क जैसी भी कोई चीज नहीं है। यह नहीं कि प्राहा में सुन्दर या बड़े हाल न हों। 'स्पेनिश हाल' बहुत बड़ा है और सजावट के विचार से बहुत भव्य भी। 'स्पेनिश हाल' नाम इसलिये पड़ा है कि हाल की सज-धज पुराने स्पेनिशशाही ढंग पर की गयी थी। बड़े-बड़े समारोह प्रायः वहां ही होते हैं। लेखकों की कांग्रेस के लिए शायद विचार और गम्भीरता का आडम्बरहीन वातावरण रखने के लिए पार्लियामेंट हाल ही चुना गया है। कांग्रेस में प्रायः तीन सौ चेक और स्लोवाक लेखक भाग ले रहे हैं। पचास के लगभग अतिथि लेखक हैं। सभी देशों से एक या दो लेखकों को ही आमन्त्रित किया गया है।

चेकोस्लोवाकिया स्लोवाकिया, बोहेमिया और मोराविया के प्रदेशों का संयुक्त गणतंत्र है। बोहेमिया और मोराविया की भाषा चेक है और स्लोवाकिया की भाषा स्लोवाक है। गणतंत्र की भाषा चेक है परन्तु स्लोवाक भाषा में भी साहित्य लिखा और प्रकाशित किया जाता है। चेकोस्लोवाक लेखक संघ के सदस्यों की संख्या छः सौ के लगभग है। देश की जनसंख्या केवल ढाई करोड़ है। उसे देखते यह संख्या बहुत कम नहीं है।

लेखक की परिभाषा के सम्बन्ध में भी उत्सुकता हो सकती है। हमारे यहां लेखकों और पत्रकारों के संघ अलग-अलग हैं। यहीं सब चेकोस्लोवाकिया

में भी है। लेखकों से अभिप्राय साहित्यिक रचना और उस का विश्लेषण और मूल्यांकन करने वालों से है। चेकोस्लोवाकिया में एक या दो पुस्तकें प्रकाशित हो जाने या कुछ रचनायें पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हो जाने पर लेखक, संघ का सदस्य बनने का अधिकारी हो जाता है।

कांग्रेस में दिये जाने वाले भाषणों का लिखा होना आवश्यक है। टीका-टिप्पणी और वाद-विवाद की बात दूसरी है। भाषण चेक भाषा में ही हो रहे हैं। 'गत वर्षों में चेकोस्लोवाक साहित्य का मूल्यांकन' कांग्रेस का विशेष कार्यक्रम है और इस पर वाद-विवाद भी खूब हो रहा है। प्रत्येक आमन्त्रित विदेशी लेखक के साथ एक अनुवादक है। आमन्त्रितों में चीनी, जापानी, कोरियन, मैक्सीकन, जर्मन, फ्रेंच, इटालियन, रूमानियन, युगोस्लाव और रूसी सभी लेखक हैं। चेकोस्लोवाक अनुवादक इन लेखकों को उन की भाषा में ही भाषणों का अनुवाद समझाते हैं और लेखकों से उन की ही भाषा में बातचीत करते हैं। मैं तो अंग्रेजी भी बोल लेता हूं परन्तु मिलाना का प्रयत्न प्रायः हिन्दी में ही बातचीत करने का रहता है। उसे जब हिन्दी में शब्द नहीं सूझता तो मस्तिष्क पर जोर देने के लिए पलक झपक और चुटकी बजा कर कहती है, "क्या, कैसे कहते हैं ?" या तो मैं सुझा देता हूं या उसे शब्द याद आ जाता है। उसे कठिनाई जरूर होती है परन्तु वह अपनी बात कह लेती है। चीनी लेखक गांग हुई अंग्रेजी पढ़ लेते हैं परन्तु बोल नहीं पाते। यही बात जापानी और कोरियन लेखकों की है। उन के अनुवादक उन से निरन्तर उन की भाषा में ही बात करते हैं। हमारे यहां एक एशियन लेखक कांग्रेस की बातचीत चल रही है। क्या हम लोग अतिथियों के लिए ऐसी व्यवस्था कर सकेंगे ? अन्य भाषाओं के ज्ञान का लाभ केवल विदेश भ्रमण अथवा विदेशियों के आतिथ्य की सुविधा ही नहीं है। मिलाना अपनी चेक भाषा, अंग्रेजी, हिन्दी-उर्दू, कुछ बंगला के अतिरिक्त फ्रेंच, जर्मन और रूसी भी बोल लेती है और उस ने जिप्सी लोगों की भाषा का भी अध्ययन किया है।

आजकल सभी चेकोस्लोवाक स्कूलों में रूसी भी अनिवार्य है। इसे वे समाजवादी जगत की साझी भाषा मानते हैं। इसके अतिरिक्त एक योरुपियन भाषा तो और सीखते ही हैं। विशेष यत्न करने वाले किसी एशियाई भाषा का भी अध्ययन करते हैं। इन लोगों का कहना है कि हम लोगों का देश और राष्ट्र छोटा सा है। हमें संसार से सम्पर्क रखना है, संसार की संस्कृति और

साहित्य से लाभ उठाना है तो हमारे यहां सभी देशों की भाषा का ज्ञान होना चाहिये। यह बात किसी से छिपी नहीं कि संस्कृति और कला-कौशल में चेकोस्लोवाकिया खूब उन्नत देशों में से एक है। यहां के लोग यह न जानते हों सो बात नहीं परन्तु उन की प्रवृत्ति ग्रहण की ओर है, बुद्धि मिथ्याभिमान से मुक्त है।

२६ अप्रैल दोपहर बाद की बैठक में चेकोस्लोवाक गणतन्त्र के राष्ट्रपति जापोतोत्स्की भी पधारे थे। कांग्रेस के हाल के बाहर मार्ग में तो उन के पद के सम्मान के लिये सवारी के साथ आगे मार्ग-दर्शक और साथ अंग-रक्षक भी थे; परन्तु सम्मान के यह सब उपकरण हाल के बाहर ही रह गये। भीतर वे द्वार पर उन का स्वागत करने वाले कांग्रेस के प्रधान और मन्त्री के साथ ही आये। प्रत्येक अतिथि से हाथ मिला कर उन्होंने पूछा—"आप आराम से तो हैं ? कोई असुविधा तो नहीं ? यहां का जलवायु आप के प्रतिकूल तो नहीं ? आप कवि हैं, कहानी लेखक अथवा उपन्यासकार ? आप की कुछ रचनाओं का अनुवाद अन्य भाषाओं में भी हुआ होगा। आशा है, शीघ्र ही आप की रचनाएं चेक भाषा में भी उपलब्ध हो सकेंगी ? आप के देश की संस्कृति और साहित्य में हम लोगों की विशेष रुचि है। आशा है कि कांग्रेस के बाद भी आप कुछ दिन चेकोस्लोवाकिया में रहेंगे और फिर मेल का अवसर भी आयगा······।"

चेकोस्लोवाकिया के राष्ट्रपति के इस शिष्टाचार और सौहार्द प्रदर्शन से संकोच ही अनुभव हुआ। दूसरे अतिथि लेखक चाहे जितने बड़े रहे हों परन्तु सुना है जब उत्तर प्रदेश के 'साहित्यिक' राज्यपाल से मेरे अभिनन्दन ग्रन्थ के लिए सन्देश मांगा गया तो उन्होंने विस्मय प्रकट किया कि वे तो लखनऊ में यशपाल नाम के किसी व्यक्ति को नहीं जानते ·····। भारत के दूसरे राज्यों के प्रधान मन्त्रियों और राज-प्रमुखों ने ऐसा विस्मय प्रकट नहीं किया। इस से मन नहीं टूटा।

यद्यपि अनुवादक चेक साहित्य की समस्याओं पर होने वाले विवेचन और वाद-विवाद होते समय अतिथियों को कुछ समझा देने के लिये तैयार रहते हैं; परन्तु उस में सभी लोगों के लिये रस लेते रहना सम्भव नहीं होता। अतिथि लोग ऐसे समय नगर भ्रमण के लिये चल देते हैं अथवा नगर के समीप तीस-चालीस मील तक भी घूम आते हैं। संध्या समय अतिथि अपनी रुचि के अनुकूल नाटक, संगीत नाट्य (ओपेरा), नृत्य नाट्य (बैले), अथवा बाल-डांस के

लिये किसी रेस्तोरां में जा सकते हैं। यहां सिनेमा की विशेष कद्र नहीं है। रूस की ही भांति यहां पुतलियों के नाटक की कला का, बल्कि रूस की अपेक्षा भी अधिक विकास हुआ है।

पुतलियों के नाटक के लिये पुतलियां बनाने और नचाने की कला को यहां विज्ञान के स्तर तक पहुंचा दिया गया है। इस के लिये विशेष स्कूल हैं। पुतलियां ऐसी बनायी जाती हैं जिन का अंग-अंग, उंगलियां, आंख और होंठ तक गति और भाव-भंगी प्रदर्शित कर सकते हैं। उन के अंग-अंग से ऐसे महीन तार बंधे रहते हैं जो दर्शकों के लिये अदृश्य रहते हैं। पुतलियों के नीचे पुर्जे और तार लगा कर भी उन की गति और भाव-भंगी दिखाई जाती है। पुतलियों के नाटक के समय संगीत भी चलता है। संगीत, नाटक और कला तीनों की दृष्टि से उपयुक्त उपस्थित किया जाता है। प्राहा में एक खूब बड़ा स्टूडियो है जहां पुतलियों के नाटक के फिल्म तैयार किये जाते हैं। इन फिल्मों का स्तर 'मिकि-माइस' की अपेक्षा बहुत ऊंचा और सोद्देश्य होता है। यह फिल्में बच्चों की शिक्षा के लिये ही नहीं, वयस्कों के ज्ञान वर्धन और विनोद के लिये भी सफल हैं। मध्य युग में बोहेमिया, मोराविया और स्लोवाकिया की भूमि पर बस्तियां बसने की ऐतिहासिक कहानी पुतलियों के फिल्म में बहुत सफल, अत्यन्त रोचक भी बनी है।

प्राहा की रंगशालाएं या थियेटर हाल आकार में बहुत बड़े न होने पर भी भव्य हैं। चार-चार मंजिल तक गैलरियां बनी हुई हैं। ज्यों-ज्यों ऊपर जाइये टिकट सस्ता होता जाता है। खम्भे सुन्दर मूर्तियों से ढके हुये हैं और साज-सज्जायों से श्वेत और सुनहरी के मिश्रण की पूर्वी शान-शौकत झलकती है। नाटकों को समझने में मेरे लिये भाषा का व्यवधान है परन्तु अभिनय में स्वाभाविकता स्पष्ट दिखायी देती है। पश्चिमी संगीत के ताल-सुर के अज्ञान के कारण संगीत नाट्य में मुझे अभिनय मात्र देख कर ही संतुष्ट हो जाना पड़ता है इसलिये आधा देख कर ही संतोष कर लेता हूं।

नाटकों के विषय आधुनिक भी हैं। पहले दिन ही जो नाटक देखा वह विज्ञान की शक्ति को विध्वंस के कार्य के लिये प्रयोग में लाने के विरोध में था। नृत्य-नाट्य में भाषा की असुविधा नहीं जान पड़ती क्योंकि उस में भाव प्रकट करने के लिये शब्दों का माध्यम नहीं बल्कि नृत्य और अभिनय की भाव भंगी ही का सहारा लिया जाता है। जाने क्यों, सोवियत में और चेकोस्लोवाकिया

में भी संगीत नाट्य और नृत्य-नाट्य में प्राय: पौराणिक और परियों की कहानियों का उपयोग किया जाता है। सम्भव है उन्हें इस माध्यम के योग्य आधुनिक विषय नहीं मिलते। एक नृत्य-नाट्य 'यानोशी' की कहानी को भी देखा है। यानोशी का चेकोस्लोवाक लोक कथा में वही स्थान है जो इंगलैण्ड में राबिनहुड का और हमारे यहां सुल्ताना और नान्या डाकू का है। उसे सामन्तों के अन्याय का विरोधी और दीन-बंधु माना जाता है। राष्ट्रीय वीरों में उस की भी गणना है। चेकोस्लोवाकिया में साहित्य के प्रति उदार दृष्टि-कोण है। किसी भी सुन्दर रचना के सामन्तवादी अथवा पूंजीवादी काल की होने के कारण उस की उपेक्षा नहीं की जाती।

कांग्रेस में साहित्यिक नीति और सैद्धान्तिक चर्चा के सम्बन्ध में मुख्य प्रस्ताव का उल्लेख पर्याप्त होगा। प्रस्ताव का संक्षिप्त मसविदा तीन फुलस्केप पृष्ठों का है। कम्युनिस्टों के मूल प्रस्ताव और व्याख्या पृथक्-पृथक नहीं होते, ताकि व्याख्या और अभिप्राय के सम्बन्ध में मतभेद का अवकाश न रहे। स्थानाभाव के कारण और भी संक्षेप में यों कहा जा सकता है :—

यह कांग्रेस सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की बीसवीं कांग्रेस द्वारा उत्पन्न वाता-वरण से प्रभावित है। हम सभी राष्ट्रों और मानव मात्र के लिये नई आशायें अनुभव कर रहे हैं। समाजवादी राष्ट्रों की आपसी मित्रता और सहयोग से हम संतुष्ट हैं। सोवियत और भारत तथा दूसरे एशियायी राष्ट्रों की मित्रता से हम उत्साहित हैं। आज मास्को से देहली और सांटियागो से पेरिस और पीकिंग तक सभी साहित्यिक और वैज्ञानिक शांति की भावना से अनुप्राणित हैं। हमें विश्वास है कि पूंजीवादी स्वार्थ की जो भावनायें अभी तक शांति के प्रयत्नों में सहयोग देने से आशंकित है वे भी शीघ्र ही इस सत्कार्य में सहयोग देंगी।

हमारी विचारधारा का आधार लेनिनवाद के रचनात्मक सिद्धांत हैं। हम अपने उत्तरदायित्व के प्रति सतर्क होकर इन सिद्धांतों के आधार पर आत्मा-लोचना द्वारा अपने गत कार्य का मूल्यांकन करना चाहते हैं। हमारा विश्वास है कि हम लोगों के जीवन में और हमारे साहित्य में जो भूलें हुई हैं उन का कारण जन और जीवन के निकट सम्पर्क में न रहना ही था। समाजवादी सत्य को जनजीवन में सम्मिलित होकर ही प्राप्त किया जा सकता है। हमारी भूलों का कारण जनजीवन के द्वन्द्वों और वास्तविक तथ्यों से आंख मूंद कर सिद्धान्तों को स्वप्न जगत में प्राप्त करने की इच्छा रही है।

आज साहित्य और जनजीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण को उदार बनाना आवश्यक है। समाज के गत जीवन में महान साहित्यिकों की सफलता का आधार उन की समाज को बदलने की भावना थी। आज साहित्यिक की महानता समाज के निर्माण में है परन्तु सचेत कलाकार से अंध अनुमोदन की आशा नहीं की जा सकती। हमारे वर्तमान जीवन की न्यूनताओं और दोषों पर प्रकाश डालना भी साहित्यिक का कर्त्तव्य है। निर्बलता से असन्तोष ही सतत प्रगति की भावना है। स्थायी मूल्य का साहित्य निर्माण न कर सकने का कारण यह है कि हमने समाजवादी सिद्धान्तों की भावना और आत्मा की चिंता न कर उनके शब्दों को ही अपना लिया है। निर्देशों द्वारा साहित्य रचना के प्रयत्न ने विचारों और रचनात्मक स्वतंत्रता का गला घोंट दिया है। व्यक्तिवाद ने विचारों के विकास और आलोचना का मार्ग रोक दिया है। हमारा विश्वास है कि साहित्य की प्रेरणा का स्रोत जन-जीवन और जन के विचारों से व्यक्तिगत सम्पर्क है।

रचनात्मक स्वतंत्रता का लक्ष्य समाजवादी सिद्धान्तों की समीक्षा द्वारा उन का विकास करना और मानवी सम्बन्धों में समता और पूर्णता लाना है। यही हम लेखकों का उद्देश्य है। साहित्य का क्षेत्र मानव समाज को बांटने वाली सीमाओं को स्वीकार नहीं करता। सम्पूर्ण मानव समाज के साहित्यिक एक ही बिरादरी के सदस्य हैं और उन सब का एक ही लक्ष्य मानवता के विकास द्वारा उस की मुक्ति और पूर्णता है।

हमारे देश में इस बात पर प्रायः ही विवेचना होती रहती है कि समाजवादी देशों में लेखकों को पूर्ण स्वतंत्रता है या नहीं। चेकोस्लोवाक लेखक कांग्रेस के प्रस्ताव में रचनात्मक स्वतंत्रता की मांग को इस बात का प्रमाण बता दिया जा सकता है कि वहां लेखकों पर नियंत्रण और बंधन है। परन्तु इस प्रस्ताव में जिस प्रकार अपनी स्थिति के प्रति असंतोष प्रकट किया गया है, दमन की अवस्था में ऐसी बात सार्वजनिक रूप से कही नहीं जा सकती। इस प्रस्ताव में की गयी रचनात्मक स्वतंत्रता की मांग को अपना क्षेत्र व्यापक करने की मांग ही कहा जा सकता है। इस देश के लेखकों की स्वतंत्रता का आधार उन का आर्थिक रूप से स्वतंत्र होना है। प्रकाशन का कार्य वहां सरकार या मुनाफाखोर प्रकाशकों या पत्र-स्वामियों के हाथ में नहीं, स्वयं लेखक संघों के हाथ में है।

हम समाजवादी या दूसरे देशों के लेखकों की स्वतंत्रता की चिंता करने की अपेक्षा अपने देश के लेखकों की स्थिति के विषय में क्यों न सोचें। हमारे

देश के लेखकों में से आज कितने स्वतंत्र हैं ? लेखक की स्वतंत्रता का अभिप्राय है कि वह अपने विचारों की अभिव्यक्ति स्वतंत्रता से कर सके । लिखते समय उसे यह चिंता न हो कि उस के विचारों की अभिव्यक्ति के कारण उसे दंड भोगना पड़ेगा । यह भी याद रहे कि सब से बड़ा दंड व्यक्ति के और उस के आश्रितों के पेट पर पड़ने वाली चोट होती है । कुछ बरस पहले तक हमारे लेखक आर्थिक रूप से असुविधा में होते हुये भी अपने विचार प्रकट करने में किसी सीमा तक स्वतंत्र थे, कारण यह था कि हमारे लेखक जीविका के लिये दूसरा व्यवसाय करते थे । लिखना अपनी भावनाओं की तुष्टि के लिये होता था । आज अधिकांश बड़े लेखक साहित्यिक सरकारी नौकरियों पर हैं । बचे-खुचे पत्र जगत में नौकरियां कर रहे है । कलम की कमाई पर निर्भर लेखकों की संख्या आधा दर्जन भी नहीं है । सरकार चाहे जितनी भी प्रजा-वत्सल हो, अपने कर्मचारी वर्ग को अपनी नीति का विरोध या उस की आलोचना करने की स्वतंत्रता नहीं दे सकती । पत्रों का भी वही ढंग है । यह पत्र एक विशेष नीति की रक्षा और समर्थन के लिये चल रहे हैं । प्रकट तथ्य यह है कि हमारे सफल लेखक सरकारी नौकरियां पाकर अच्छा खाने-पहरने लगे हैं परन्तु उन की साहित्यिक गतिविधि समाप्त हो गयी है । वे सरकारी मशीन के पहिये पर चलने वाले पट्टों की तरह चल रहे हैं, उन की अपनी अभिव्यक्ति का प्रश्न ही नहीं रहा ।

जिस समय कांग्रेस में इस प्रस्ताव पर बहस चल रही थी एक दोपहर बाद दोबलिश जाने का अवसर मिला । दोबलिश प्राहा के समीप लेखकों का भवन या क्लब है । भवन क्या; किसी पुराने सामन्त का बड़ा महल है । चारों ओर खूब दूर तक फैले हुये बाग और उपवन हैं । एक झील भी बीच में है । भवन में बहुत बड़ा पुस्तकालय, बैठक खाना और भोजन का हाल है । एक-एक, दो-दो कमरे और गुसलखाने इस प्रकार बने हुये हैं कि कई लोग अकेले या सपत्नीक निर्विघ्न रह सकते हैं । सब फर्श कालीनों से और छतें झाड़-फानूसों से ढकी हुई हैं । हम कई लेखक यहां एक साथ आये थे । खान-पान भी जो हुआ, वह शाही तकल्लुफ से किसी प्रकार कम न था । कुछ लेखक यहां अपना काम निर्विघ्न कर सकने के लिये आते हैं, कुछ काम समाप्त कर विश्राम के लिये आते हैं । कुछ अपने स्त्री-सन्तान को यहां विश्राम के लिये भेज देते हैं । यह भवन और ऐसे कई भवन यहां के लेखक संघ की सम्पत्ति हैं । भवन सरकार

ने संघ को दे दिया है, परन्तु खर्चा संघ को लेखकों की रचनाओं से होने वाली आय से चलाना पड़ता है। इस से यहां के लेखकों की आय का जो अनुमान करना पड़ा, वह भारतीय लेखकों के मन में सन्देह उत्पन्न कर सकता है।

अतिथि लेखकों में से भी कुछ एक से कांग्रेस में बोलने का अनुरोध किया गया। मुझ से यह अनुरोध किया जाने पर पूछा—'मैं अंग्रेजी में बोलूं या हिन्दी में ?' उत्तर मिला, 'निश्चित रूप से हिन्दी में।'

उपाय यही था कि मैंने अपनी बात हिन्दी में लिख ली और मिलाना ने अनुवाद कर लिया। मैं हिन्दी में ही बोला। यह जानते हुये कि मेरी बात कोई नहीं समझ रहा है, मुझे ऐसा जान पड़ रहा था निर्जन स्थान में मैं निरर्थक बोल रहा हूं। मेरे बोल लेने पर मिलाना ने पूरा अनुवाद पढ़ कर सुना दिया। संक्षेप में मैंने यों कहा था—"दूरी की चिन्ता न कर अपने सम्मेलन में एक भारतीय लेखक को आमंत्रित कर आप ने भारतीय लेखकों से विचारों और स्नेह का जो सम्पर्क स्थापित किया है, उस के लिये मैं भारतीय लेखकों की ओर से आप का धन्यवाद और अभिनन्दन करता हूं। संसार के राष्ट्रों के परिवार के कल्याण के लिये आज राष्ट्रों के राजनैतिक नेताओं का ही परस्पर एक दूसरे को समझ लेना पर्याप्त नहीं है। आज का संसार सिकन्दर, हनिबाल, नादिरशाह और हिटलर जैसे नेताओं का संसार नहीं रहा है। आज का संसार जनवाद और प्रजातंत्र का संसार है। आज संसार का कल्याण और विश्वव्यापी शान्ति संसार के भिन्न-भिन्न राष्ट्रों की जनता के अपने हाथ की बात बन चुकी है। ऐसी अवस्था में राष्ट्रों की जनता की भावनाओं और हृदयों के इंजीनियरों और डाक्टरों—सभी राष्ट्रों के लेखकों का आपस में एक दूसरे को समझना और भी आवश्यक है। इस युग में मानवता के लिये कल्याणकारी भावनाओं को उत्पन्न करना और उन्हें सबल बनाना सभी राष्ट्रों के लेखकों का साझा कर्तव्य और उत्तरदायित्व है।

"इस सम्मेलन में कुछ ही समय सम्मिलित होकर और भाषा की रुकावट के बावजूद मैं यह समझ सका हूं कि सभी राष्ट्रों के लेखकों की समस्याएं एक ही हैं। सभी देशों के लेखक दमन से पूर्ण मुक्ति और कला के माध्यम को अधिक सबल बनाने और ऊंचा उठाने की चिन्ता कर रहे हैं। दस बरस पहले तक हमारे देश के लेखकों के सामने अपने देश की राजनैतिक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष का काम मुख्य था। आज हमारे लेखकों के सामने जहां राष्ट्रीय निर्माण

और मानव हृदय के विकास का लक्ष है वहां यह समस्या भी है कि वह अपनी कला को पूंजी के बाजार में मुनाफा कमाने का सौदा ही न बना रहने दे।"

"मनुष्य के पूर्ण विकास और मुक्ति के लिए संघर्ष करना ही लेखक की सार्थकता है। जब लेखक अपनी कला के माध्यम से मनुष्य की मुक्ति के लिए पुरानी व्यवस्था और विचारों में अन्तर्विरोध दिखाता है और नये आदर्श सामने रखता है तो उस पर आदर्शहीन और भौतिकवादी होने का लाछन लगाया जाता है। आज के लेखक की जड़ें वास्तविकता में हैं इसलिए वह भौतिकवादी तो है ही परन्तु वह आदर्शहीन भी नहीं है। उस के आदर्श अधिक यथार्थ हैं। आज का लेखक जब अपनी कला द्वारा नये आदर्शों का समर्थन करता है तो उस पर प्रचारक होने का लांछन लगाया जाता है। लेखक सदा ही अपनी कला से किसी विचार या आदर्श के प्रति सहानुभूति या विरोध पैदा करता है। साहित्य विचारपूर्ण होगा। हमारा विश्वास है कि विचारहीन साहित्य की सृष्टि करने की अपेक्षा प्रचार का लांछन स्वीकार कर लेना ही बेहतर है।

"लेखक सदा ही मानव की मुक्ति और विकास का समर्थक रहा है। जिस समय कलाकार ने 'कला के लिए कला' का नारा दिया था उस का अभिप्राय कला को राजाओं और देवताओं की सेवा से मुक्त कर जन-साधारण के संतोष के लिए उपयोग में लाना था। आज कला के लिए कला की भावना को कुचल देना है। साहित्यिक कलाकार अपनी कला के साधन के विकास की उपेक्षा कभी नहीं कर सकता। कला के साधन की उपेक्षा करना ऐसा ही है जैसे टूटा हुआ हथियार लेकर युद्ध में जाना। संसार के साहित्यिकों की इन समस्याओं पर विचार करने के लिए यह सम्मेलन कर आप संसार भर के साहित्यिकों की कृतज्ञता के पात्र हैं। इस के लिए मैं भारत के लेखकों की ओर से आप को बधाई और धन्यवाद देता हूं।"

कांग्रेस के प्रधान ने शायद भारत के प्रति सौजन्यता के नाते मेरे संक्षिप्त भाषण पर कुछ शब्द कहे और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिए भारत के पंचशील के सुझाव का विशेष अभिनन्दन किया।

प्राहा के लेखकों ने कल अतिथियों को नगर से पच्चीस-छब्बीस मील पिकनिक में संध्या भोजन का निमंत्रण दिया था। मार्ग में हल्की-हल्की चढ़ाई चढ़ते कछुए की पीठ की तरह फैली पहाड़ी पर बसे नगर में पहुंचे। संध्या समय बाजार बन्द हो चुके थे। हमारी गाड़ियां एक प्रकांड और खूब पुरानी

इमारत के फाटक के सामने रुकी ।

फाटक पर लिखा था, 'मधुशाला' । पूछने पर मालूम हुआ यह मध्य योरुप को एक साम्राज्य में बांधने वाले सम्राट चार्ल्स चौथे का महल था । महल पहाड़ी की अन्तिम सीमा पर है । महल के पिछवाड़े के शीशा मढ़े बरामदे में खड़े होने पर नीचे उतरते जाते अंगूरों के बाग और दो नदियों का संगम दिखाई देता है और उस पार हरे-भरे खेत और वनराशि, फिर खेत और दूर नीली-नीली पहाड़ियां । सम्राट चार्ल्स ने इस स्थान के प्राकृतिक सौन्दर्य से मोहित होकर यहां अपना महल बनाया था । शायद यह लाभ भी था कि चारों ओर मीलों दूर तक का देश यहां से दिखाई देता है । चार्ल्स ने ही मध्य योरुप में अंगूर की खेती आरम्भ करवाई थी ।

स्थलनिक का खास व्यवसाय अंगूर की शराब बनाना है । उन्हें अपनी शराब 'लुडमिला' पर विशेष गर्व है । महल के नीचे बहुत बड़े-बड़े तहखानों में अनेक प्रकार की मदिराओं के गोदाम हैं । स्थानीय प्रबन्धकर्ता ने लेखकों को अनेक नमूने चखा-चखा कर उन की मदिरा की परख की परीक्षा ली । चाय को भी नशा समझने वाले भारतीय लेखक ऐसी प्रतियोगिता में क्या भाग लेते ? चार्ल्स के प्रति चेकोस्लोवाक लोगों में बहुत श्रद्धा है । वह जागृत मस्तिष्क, विकासशील प्रकृति का शासक था । मध्य योरुप में सब से पहला विश्व विद्यालय सन् १३४८ में उस ने ही प्राहा में स्थापित किया था । यह महल अब मधुशाला के रूप में सार्वजनिक विश्रान्ति गृह है । भोजन के लिए कई बड़े बड़े हाल हैं । शौकीन लोग कांच मढ़े बरामदे में बैठ कर नीचे का दृश्य देखते आधी रात तक खाते-पीते, नाचते रहते हैं ।

अवसरवश युगोस्लाव लेखक आंतोन एंगोलिच और मैं साथ-साथ बैठे थे । एंगोलिच से होटल में और कांग्रेस में आमना-सामना प्रायः ही होता रहता था । बात दोनों ही करना चाहते थे परन्तु उसके अंग्रेजी न जानने के कारण बात बन न पाती थी । भारतीय लेखक के प्रति उसे भी कौतूहल था । मिलाना फ्रेंच बोल लेती है और एंगोलिच भी । पहला प्रश्न उसी ने किया—"भारत में बुल्गानिन और क्रुश्चेव की यात्रा का क्या प्रभाव पड़ा ?" उसे बताया कि भारत में रूसी नेताओं का अपूर्व स्वागत हुआ था । परिणाम में दोनों में पारस्परिक सहानुभूति बहुत बढ़ी है । उस समय टीटो मास्को की ओर जा रहे थे । हम लोग इस यात्रा के परिणामों का अनुमान करने लगे ।

मैंने पूछा—"युगोस्लाविया साम्राज्यवादी प्रणाली में विश्वास नहीं रखता। इतने दिन तक युगोस्लाविया और सोवियत के पारस्परिक सम्बन्ध अच्छे क्यों नहीं रहे ?"

एंगोलिच ने बहुत ब्योरे से समझाना शुरू किया। उसके विचार से सब दोष सोवियत नेताओं का ही था। उस का विचार था कि युगोस्लाविया कृषि के क्षेत्र में अपने श्रम से उत्पादन करने वाले किसानों को स्वतंत्र व्यक्तिगत रूप से खेती करने का अवसर देकर अपने देश की परिस्थितियों के अनुसार आर्थिक व्यवस्था का राष्ट्रीयकरण कर रहा था। सोवियत अपनी सामूहिक प्रणाली उन पर लागू करना चाहता था। इसे युगोस्लाविया सहने के लिये तैयार न था। एंगोलिच का विचार है कि समाजीकरण की नीति में युगोस्लाविया सोवियत की अपेक्षा भी आगे है।

बात को संक्षेप में समझने के लिये मैंने पूछा—"यह बताइये, युगोस्लाव जनता पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था और जीवन दर्शन की समर्थक है या मार्क्सवाद की ?"

आंतोन ने मेज पर हाथ मार कर कहा—"मार्क्सवाद ! ....इसमें सन्देह की गुंजाइश क्या है ?"

"तो फिर युगोस्लाविया के प्रति अमेरिका की सद्भावना और सहायता का क्या कारण रहा ? उन का तो एक ही निश्चित लक्ष्य है, मार्क्सवाद का विरोध !"

"उन की भावना का जो भी कारण रहा हो !" एंगोलिच ने उत्तर दिया, "हमारी आंतरिक व्यवस्था में दखल दिये बिना यदि कोई सहयोग और सहायता देता है तो उसका स्वागत है। अपनी व्यवस्था और विचारधारा में दखल हम किसी मूल्य पर सहने को तैयार नहीं। अमेरिका ने कोई ऐसी सहायता भी हमें क्या दी है ?"

अगले दिन दोपहर बाद क्लादनो घूमने चले गये।

क्लादनो की राह में कुछ समय के लिये लेगित्सा में भी ठहरे। लेगित्सा की बस्ती बिल्कुल नयी जान पड़ती है, जैसे खेतों में एक नया पक्का कैम्प बना दिया गया हो। एक छोटा सा मकान बिलकुल अलग बना था। वहां आकर जाना कि वह लेगित्सा का स्मारक संग्रहालय है। लेगित्सा ग्राम पीढ़ियों पुराना है परन्तु नई बस्ती सात आठ बरस की ही है। नाजी शासनकाल में इस स्थान

का जर्मन शासक बहुत क्रूर था और यहां नाजी शासन से मुक्ति के लिये गुप्त आन्दोलन और संगठन भी चल रहा था। अवसर देख कर दो नौजवानों ने जर्मन कमांडर को गोली मार दी। नाजियों के क्रोध और प्रतिकार का ज्वालामुखी भड़क उठा। पूरा गांव जला दिया गया और मकानों की दीवारें तक गिरा दी गयीं। एक सौ सत्तर नर-नारी गोली से उड़ा दिये गये। वही दो चार लोग बच सके जो भाग जाने में सफल हो गये। गांव में छियानवे बच्चे थे। उन में से अस्सी को विषैली गैस सुंघा कर मार दिया गया। सोलह जो अधिक सुन्दर या जर्मन नस्ल के मान लिये जाने योग्य थे, निस्सन्तान जर्मन परिवारों को सौंप दिये गये। ऐसे शासन और व्यवस्था के प्रति आस पड़ोस के लोगों में क्यों सहानुभूति होती। संग्रहालय में पुरानी लेदित्सा की स्मारक वस्तुएं और नाजी शासन के गुप्त विद्रोह से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुएं आदर से संग्रहीत हैं। उस के साथ ही लेदित्सा को नाजी शासन से मुक्त कराने वाली कम्युनिस्ट लाल सेना की स्मारक वस्तुएं भी रखी गयी हैं।

क्लाद्नों में लोहे-फौलाद के कारखाने बनाये जाने का कारण यहां कोयले की खानों का होना है। बस्ती खानों और फौलाद की मिल में काम करने वाले मजदूरों की है। इस कारखाने में लोहे के पचासों मन बोझ के बड़े-बड़े टुकड़ों को यंत्रों द्वारा भट्टियों से निकाल कर दूसरी मशीनों में दे कर कुछ ही मिनिटों में उन के शहतीर और सलाखें बन जाते देखना बहुत रोमांचक जान पड़ता था। कई स्थानों पर पिघले हुए लोहे के झरने बह रहे थे। विज्ञान और यंत्रों की शक्ति को देख कर विस्मय हो रहा था। कारखाना मीलों दूर तक फैला हुआ है। अपने देश में भी टाटा का लोहा-फौलाद बनाने का बहुत बड़ा कारखाना है। उसे कभी देखा नहीं, इसलिये तुलना नहीं कर सकता। यह कारखाना चेकोस्लोवाकिया में आर्थिक व्यवस्था के समाजीकरण से पहले भी था। मार्गरोवा के उपन्यास के अनुसार उस समय यह 'प्राहा स्टील कम्पनी' की सम्पत्ति था। सुना कि पिछले दस वर्ष में इस कारखाने का फैलाव और पैदावार दूनी से अधिक हो गई है। उसी के अनुकूल क्लाद्नो की बस्ती और मकानों की संख्या भी बढ़ गई है। इन लोगों का कहना है कि समाजवादी व्यवस्था के दस वर्ष में यहां इतने मकान बने हैं जितने उस से पहले नब्बे वर्ष में भी नहीं बने थे।

बस्ती नये ढंग की साफ सुथरी है। नयी बस्ती में बंगलेनुमा दो-तीन मंजिले मकान भी हैं और तेरह मंजिली आधुनिक हवेलियां भी। यहां कोस (सामूहिक

पलने) भी है जहां कारखानों और दफ्तरों में काम करने वाली मातायें अपने बच्चों को दिन भर के लिये छोड़ जाती हैं। पलने की दाइयां बच्चों को खिलाने-पिलाने और नहलाने-धुलाने का भी काम करती ही हैं। नौ-दस महीने तक की आयु के बच्चे तो दूध पीने के समय के अतिरिक्त दिन भर सोया ही करते हैं। उठ कर खड़े हो जाते हैं तो अपने पलने का जंगला पकड़े कूदते या पलने की परिक्रमा करते रहते हैं। शेष बच्चों के लिए उन की आयु और कद के हिसाब से हाथ मुंह धोने, खाना खाने और खेलने की जगहें हैं। बच्चे अपनी ही चीजें तौलिया, बर्तन, साबुन वगैरा ही व्यवहार करें, इसका यह उपाय किया गया है कि सब बच्चों के लिए एक-एक चिन्ह निश्चित है। किसी के लिए खरगोश किसी के लिए कुत्ता किसी के लिए गिलहरी, तितली, फूल आदि। बच्चे के पलने में, पहनने के कपड़ों, गिलास, तौलिये, दांत मांजने के ब्रुश सब चीजों पर वही चिन्ह बना रहता है। बच्चे अपनी चीजें स्वयं पहचान लेते हैं। खिलौने आयु के हिसाब से बनाई गई टोलियों के साझे होते हैं। खिलौने काफी और कीमती भी होते हैं। लड़कों और लड़कियों के शौक और स्वभाव का भी ध्यान रखा जाता है।

ऐसे पलने और शिशुशालायें प्राहा के मुहल्लों में और कुछ बाजारों में भी हैं। बाजार के लिए घर से निकली या पड़ोस के गांवों से आयी मातायें अपने बच्चों को यहां कई-कई घण्टे के लिये छोड़ जाती हैं। बच्चों को शिशुशाला में आठ घण्टे तक रखने का खर्च नाममात्र दो तीन आने ही होता है। कारखानों या संस्थाओं के पलनों में बच्चों के लिए दूध या भोजन का दाम नहीं देना पड़ता परन्तु बाजारों में बनी शिशुशालाओं में यह खर्च अलग से ले लिया जाता है। गदबदे, फूले-फूले शरीर और सुथरे चेहरों के बच्चों की यह दुनियां बड़ी भली लगती है। बच्चे अपने में मस्त रहते हैं। दर्शकों की परवाह भी नहीं करते। दाइयां दर्शकों को कांच की बड़ी-बड़ी खिड़कियों से ही यह तमाशा देखने देती हैं। भीतर नहीं जाने देतीं। किसी भी प्रकार के रोग की छुआछूत का बड़ा भय माना जाता है। बच्चों के अपने घर से आने पर उन के घर के कपड़े बदला कर एक थैले में अलग कमरे में लटका दिये जाते हैं।

इस बस्ती के मकानों को भीतर से और लोगों के रहन-सहन का स्तर देखने की इच्छा तो थी। दूसरे लोग घरों में जाकर देख भी रहे थे। मिलाना ने साथ चलने के लिए कहा तो मैंने टाल दिया—"भीड़ में कौन जाये।"

हम दस-बारह अतिथि लेखक एक साथ ही आये थे। मुझे दस-बारह लोगों का किसी के घर पर धावा बोल देना अच्छा नहीं लग रहा था। यह भी सोचा कि दिखाने वाले लोग शायद चुन-चुन कर साफ-सुथरे और सम्पन्न मजदूरों के घर दिखा देंगे। सड़क पर कार के पहिये दौड़ाने और छोटी-छोटी साइकिलों पर रेस करते बच्चों को देखने लगा। मिलाना जिप्सी लोगों की बातें सुना रही थी।

अच्छे भरे शरीर की एक स्त्री सड़क पर से गुजरी। उस ने हम लोगों की ओर देख कर मुस्करा दिया—'दोब्रे देन' (शुभ दिन) ऐसा व्यवहार योरुप में शुभ और सौजन्यता सूचक समझा जाता है।

मिलाना ने सौजन्य के उत्तर के साथ ही बात की—"यहां समीप ही रहती हो क्या? यह भारतीय लेखक है। देखना चाहता है कि यहां नये मकान किस ढंग के बने हैं? भीतर कैसी व्यवस्था है।"

स्त्री हमें अपने साथ घर ले चली। उस के कमरे तीसरी मंजिल पर थे। इमारत में लिफ्ट की जगह तो थी परन्तु लिफ्ट अभी लगा नहीं था। उस के भाग में दो अच्छे बड़े और एक छोटा कमरा था। छोटी सी रसोई और गुसल-खाना अलग। छोटे कमरे में बच्चे का बिस्तर और खिलौने सजे थे। बिस्तर पर सुलाई हुई गुड़िया से अनुमान कर पूछा—"आपकी बेटी कितने बरस की है।"

स्त्री ने उत्तर दिया—"तीन बरस की है। किंडर गार्टन में गई हुई है। अब की चाहती हूं, उस का भाई हो।"

"भाई ही होगा" मैंने कह दिया। स्त्री की आंखों में प्रसन्नता छलक आयी। गदगद स्वर में धन्यवाद देकर उस ने हमें बैठक में सोफा पर बैठाया। एक बड़ी तश्तरी में सेब और टाफी सामने रख दिये। कमरों की साज-सज्जा अच्छी थी। फूल पत्ती की बिनाई के जालीदार पर्दे। फर्श पर अच्छा कालीन शीशे की आलमारी में कांच के कीमती फ्लास्क और गिलासों के दो से अधिक सेट। दो गमलों में गरम देशों के पेड़। शयनकक्ष में बिस्तर भी अच्छे जाजमों से ढंके हुए। केवल निर्वाह कर लेने की नहीं, शौक और चाव पूरा करने की हैसियत भी थी। मकान का किराया सवा सौ क्राउन है। पति कोयले की खान में दो हजार क्राउन मासिक पाता है और वह स्वयं छोटे बच्चों के स्कूल में एक हजार मासिक पाती है।

चेकोस्लोवाकिया में वेतन का ढंग अपने यहां से भिन्न है। कड़ी मेहनत या

कठिन काम करने वाले मजदूरों को किरानी बाबू लोगों से अधिक तनखाह मिलती है । न्यूनतम वेतन प्रायः सात सौ काउन होता है । विनिमय दर से तो एक काउन दस आने के बराबर होता है परन्तु काउन का वास्तविक मूल्य तीन आने के लगभग है । विनिमय का दर कृत्रिम तौर पर ऊंचा रखा गया है । सात सौ काउन को अपने यहां के डेढ़ सौ रुपये समझिये । प्राहा में भारतीय राजदूत डाक्टर खोसला ने बताया था कि उन्हें अपने चेक में माली को नौ सौ काउन देने पड़ते हैं । माली को टिकाये रखने के लिये उस की स्त्री को भी घरेलू काम की नौकरी देनी पड़ी है । स्त्री को सात सौ काउन देते हैं ।

समाजवादी व्यवस्था के देशों में तनखाह या मजदूरी की रकम से ही मजदूर या नौकर की वास्तविक स्थिति का अनुमान नहीं किया जा सकता । सभी उत्पादक संगठन और संस्थायें अपने उत्पादन का एक भाग चिकित्सा और दूसरी सामाजिक आवश्यकताओं के लिये अलग निकाल कर तनखाह या मजदूरी देते हैं । उन के यहां काम करने वालों की चिकित्सा, बच्चों की शिक्षा और वृद्धावस्था की पेंशन की जिम्मेदारी उन पर रहती है । बीमारी की अवस्था में निःशुल्क चिकित्सा और सवेतन छुट्टी निश्चित रहती है । किसी भी समय बेरोजगार या बेकार हो जाने की कोई सम्भावना नहीं समझी जाती । मतलब यह है कि मासिक आमदनी का अच्छा खासा भाग भविष्य की चिन्ता में बचाते रहने की आवश्यकता नहीं है । कुछ और भी विशेष सुविधायें विद्यार्थियों, मजदूरों और नौकरी पेशा लोगों के लिये हैं । प्रायः सभी विद्यार्थी ढाई तीन सौ काउन मासिक छात्रवृत्ति पाते हैं । विद्यालयों, कारखानों और दफ्तरों में अपने भोजनालय हैं । जहां बाजार में छः काउन में मिलने वाला भोजन, पढ़ाई या काम के समय में अढ़ाई काउन में दिया जाता है ।

दोपहर का भोजन हम लोगों ने फौलाद मिल के मजदूरों के क्लब में किया था । भोजन में कनाडा की वृद्धा लेखिका मायेरोवा भी सम्मिलित हुई थी । संध्या की चाय का आयोजन खान में काम करने वाले लोगों के हाईस्कूल में था । उस के लिये लगभग चार-पांच मील दूर जाना पड़ा । लड़के-लड़कियां बड़े उत्साह से गले में लाल रूमाल बांधे और चुस्त सुन्दर कपड़े पहने संध्या आठ बजे तक हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे । उन्होंने खूब बैंड बजा कर स्वागत किया, नाच दिखाया और गाना भी सुनाया । अतिथियों के हस्ताक्षरों की बहुत मांग थी । सभी अतिथियों को संदेश और आशीर्वाद देने के लिए भी विवश किया

गया। छोटे-छोटे बच्चे मन में अद्भुत जिज्ञासायें लिये हुए थे। एक ने पूछा—"हाथी कैसे पकड़ा जाता है?" दूसरे ने भारत के बाजारों के चित्र में गाय-बछिया को भीड़ में घूमते देखा था। उस ने पूछा, "गाय बाजार में आकर लोगों को मारती नहीं?"

दो-ढाई बरस पूर्व लखनऊ में मुझे प्राहा से हिन्दी में लिखा हुआ डाक्टर ओडोलियन स्मेकल का एक पत्र मिला था जिसमें मेरी कुछ पुस्तकें भेजने और हिन्दी उर्दू की अच्छी मासिक पत्रिकाओं के नाम सुझाने का अनुरोध था। मेरे प्राहा पहुंचने के दिन ही संध्या समय डाक्टर स्मेकल होटल में मिलने आये। उच्चारण में कुछ अंतर जरूर है परन्तु डाक्टर स्मेकल खूब हिन्दी बोलते हैं। उन की हिन्दी संस्कृतनिष्ठ और साहित्यिक ढंग की होती है। उन्होंने कार्ल्स विश्वविद्यालय के पूर्वी विभाग में संस्कृत, हिन्दी-उर्दू और कुछ बंगाली का भी अध्ययन किया है। इस समय वहां हिन्दी के अध्यापक हैं। विश्वविद्यालय के पूर्वी विभाग में चीनी, जापानी बर्मी आदि का भी अध्ययन होता है परन्तु संस्कृत, हिन्दी, बंगला के लिए भी कम रुचि नहीं है। डाक्टर स्मेकल बिलकुल नौजवान हैं। उन के अतिरिक्त दो प्रौढ़ प्रोफेसर डाक्टर फ्रीश और डाक्टर पुर्तीश्का भी संस्कृत और भारतीय भाषाओं का विशेष अध्ययन और अनुशीलन कर रहे हैं।

भारतीय संस्कृति और साहित्य में चेकोस्लोवाकिया के लोगों की कितनी रुचि है; इसका संकेत डाक्टर फ्रीश से बातचीत में मिला। उन्होंने बताया इसी वर्ष मार्च मास में 'बैताल पच्चीसी' का अनुवाद चेक भाषा में प्रकाशित किया गया है। यह सोच कर कि प्राचीन भारतीय साहित्य की पुस्तक है, इसकी अधिक खपत क्या होगी, केवल पांच हजार प्रतियां ही छपाई गई थीं। यहां लोगों में पढ़ने की रुचि बहुत जान पड़ती है। जगह-जगह पुस्तकों की दुकानें दिखाई देती हैं। एक साप्ताहिक पत्र तो इतना लोकप्रिय है कि उस के प्रकाशित होने के दिन दोपहर बाद 'वेसेस्लावस्की' नाम्यास्ती, चौक में पत्र के दफ्तर के नीचे पटरी पर लम्बी-लम्बी लाइनें लग जाती हैं। पुस्तक प्रकाशित होते ही पहले उसे खरीद लेने की होड़ भी काफी चलती है इसलिये पुस्तकों के प्रकाशित होने की तारीख, दुकानों पर पहुंचने के समय की सूचना पत्रों में दे दी जाती है। यह साधारण नियम 'बैतालपच्चीसी' के प्रकाशन के समय भी पूरा किया गया। पांचों हजार प्रतियां तीन ही घंटे में बिक गईं और बहुत से लोग हाथ मलते रह गये।

डाक्टर फ्रीश के बहुत गम्भीर व्यक्ति जान पड़ने पर भी मुझे यह बात कुछ अत्युक्तिपूर्ण लगी थी परन्तु भारतीय राज-दूतावास में राजदूत के प्रथम सचिव श्री वैंकटेश्वरम ने भी निजी बातचीत में इस प्रसंग का उल्लेख कर विस्मय प्रकट किया तो विश्वास करना ही पड़ा। यों अभी तक चेक भाषा में गुरु देव ठाकुर के अतिरिक्त प्रेमचंद की कुछ कहानियां और उन्हीं लेखकों के कुछ अनुवाद हो पाये हैं जो भारत में प्रायः अजाने होने पर भी विदेशों में अपना परिचय भारत के प्रमुख लेखकों के रूप में दे आये हैं।

१९५३-५४ में जब भारतीय पत्रों में उत्तर प्रदेश के लिये हिन्दी-उर्दू दो राजभाषाएं स्वीकार करने के पक्ष-विपक्ष में लेख निकल रहे थे, प्राहा में भी इस विषय पर विवाद चल रहा था कि हिन्दी-उर्दू दो भाषाएं हैं अथवा एक ही भाषा है और भारत में हिन्दी की संस्कृतनिष्ठ शैली जनप्रिय है या फारसी मिली शैली। एक विद्यार्थी ने तो डिग्री परीक्षा के लिये अपना निबंध ही इस प्रश्न पर लिखा था। यह प्रश्न चेकोस्लोवाकिया में ही नहीं रूस में भी विवाद का कारण था। उन लोगों के सामने परस्पर-विरोधी बातें थीं। एक ओर तो वे देख रहे थे कि भारत से अंग्रेजी सत्ता दूर होते ही यहां की लोकसभा ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया है। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यभारत, राजस्थान आदि में हिन्दी राजभाषा स्वीकार कर ली गई है। दूसरी ओर राजनैतिक विचारों की सहानुभूति के कारण जिन भारतीय लोगों को सोवियत और चेकोस्लोवाकिया आदि जाने का अवसर मिला, वे उर्दू ही जानते थे। भाषा की समस्या पर इन लोगों ने समझाया था कि हिन्दुस्तानी का अभिप्राय फारसी लिपि में लिखी जाने वाली फारसी मिली भाषा ही है। देवनागरी लिपि और संस्कृतनिष्ठ हिन्दी साम्प्रदायिक लोगों और कांग्रेसी पूंजीपति श्रेणी द्वारा जन-साधारण पर लादी गई चीज है। डाक्टर रघुवीर द्वारा बनाये गये बहुत से शब्दों के उदाहरण दे देकर बताया गया कि बोर्जुआ लोगों द्वारा लादी गई हिन्दी कृत्रिम भाषा है, इस का परिणाम लोक-भाषा और लोक-संस्कृति का दमन है परन्तु वहां के जिज्ञासु लोग इस सम्बंध में भाषा विज्ञान के आधार पर विचार करते रहे। भारत में जो लेख इस विषय में प्रकाशित होते थे उन का भी वे तुलनात्मक अध्ययन करते थे।

डाक्टर पुरीश्का ने बातचीत में 'नयापथ' में (१९५३ नवम्बर में) प्रकाशित मेरे लेख की भी चर्चा की। अब सोवियत में या चेकोस्लोवाकिया में भाषा शास्त्री लोगों में उर्दू को पृथक भाषा नहीं, हिन्दी की एक शैली और हिन्दी के अन्तर्गत

एक साहित्य मानने की ही धारणा है। सोवियत और चेकोस्लोवाकिया में लोग हिन्दी के अतिरिक्त, बंगला, मराठी, तामिल और पंजाबी सीखने का भी प्रयत्न करते हैं। भारतीय भाषाओं के सम्यक् ज्ञान के लिये वहां के विश्वविद्यालयों में संस्कृत का आधार आवश्यक रखा गया है। प्राहा में ऐसे भी लोग मिले जो फारसी को भारतीय भाषा न मान सकने की प्रतिक्रिया में नितान्त संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के पक्षपाती हैं। वे लोग 'सड़क पर औरत जाती है' वाक्य को शुद्ध हिन्दी न मान कर 'पथ पर नारी जाती है' बोलना ही पसन्द करेंगे। इस विषय पर मुझ से भी काफी बातचीत हुई। मेरा कहना था कि जो कुछ देवनागरी में लिखा जाता है, जिस भाषा में क्रियाएं सर्वनाम आदि हिन्दी के है, वह हिन्दी ही है। हम हिन्दी में संस्कृत और फारसी के शब्दों का समावेश इसी कसौटी पर करना चाहते हैं कि सर्वसाधारण के लिये क्या सुबोध है। हिन्दी-उर्दू के प्रश्न पर मेरा उत्तर था कि उर्दू बोलना सीखने से आता है और उत्तरी भारत की भाषा हिन्दी यहां जन्म लेने से अपने आप ही आ जाती है।

डा० स्मेकल को भारतीय संस्कृति और भाषा में विशेष रुचि है। वर्तमान हिन्दी लेखक और कवियों में वे राहुल सांकृत्यायन, मैथलीशरण गुप्त, पंत, जैनेन्द्र, अमृतराय, जाफरी, प्यारेलाल और नवतेज, गार्गी तक से परिचित हैं। उन्होंने अनेक हिन्दी कहानियां और कविताओं को चेक में अनुवाद किया है। इस समय वे चेक भाषा में हिन्दी की पाठ्य-पुस्तक तैयार कर रहे हैं। भारत के सम्बन्ध में प्रायः भाषण भी देते हैं। मिलतनेर अभी विद्यार्थी हैं परन्तु उन का भी हिन्दी ज्ञान बहुत अच्छा है। उन की चेक भाषा से हिन्दी में अनुवादित एक कहानी देहली 'प्रकाशन विभाग' की पत्रिका 'लोक भाषा' में प्रकाशित हुई है। मिलाना ने मेरे प्राहा से चलने से पूर्व मेरी दो कहानियों का चेक में अनुवाद कर प्राहा की एक साहित्यिक पत्रिका में दे दिया था।

२९ अप्रैल की सन्ध्या कांग्रेस समाप्त हो गई। उस रात अतिथियों में से उपन्यास लेखकों की टोली को प्राहा की एक बहुत पुरानी मधुशाला में भोजन का निमंत्रण था। भीतर जाने पर इमारत साफ-सुथरी होने पर भी ढाई तीन-सौ साल पुरानी जान पड़ती थी। मेज कुर्सियां और पीने सब जान बूझकर ही पुरातन शैली के रखे हुए हैं। खाने के कमरे में फर्श के बीचोंबीच एक कुएं के ढंग का मोटे कांच से ढका गवाक्ष है। नीचे मद्य के भण्डार की झलक मिलती रहती है। शायद किसी समय गाहकों के लिये मद्य के ढोल भर-भर के ऊपर

खींच लिये जाते होंगे। हम लोग रात दो बजे तक बातचीत करते रहे और पड़ोस के कमरों से लगातार गाने-बजाने और नाचने की धूम-धड़ाक सुनाई देती रही। बातचीत का विषय यही था कि कला और साहित्य लेखक के समाज की विचारधारा को प्रतिबिम्बित किये बिना नहीं रह सकते। बारबार मुझसे भी पूछा गया तो कहा—"मैं तो निश्चय ही समझता हूं कि कला कलाकार के समाज और श्रेणी के विचार को प्रतिबिम्बित करती है। उदाहरणतः एंग्लोइंडियन कवि रुडयार्ड किप्लिंग ने लिखा है "पूरब पूरब है पच्छिम पच्छिम, दोनों कभी न मिल सकेंगे, जैसे दिवा निशा। उस के साहित्य में पच्छिम की उत्कृष्टता और उस के लिये लूट के अधिकार का प्रतिपादन करने की विचारधारा स्पष्ट है। इसके विपरीत आप लोगों को अपनी शक्ति पूर्व और पश्चिम के सहयोग में दिखाई पड़ती है इसलिये आप की कांग्रेस में जापान और चीन उपस्थित हैं वहां अमरीका के पश्चिम तट के लेखक भी। यहां उत्तर-दक्षिण का भेद भी नहीं है क्योंकि आइसलैंड से लेकर आस्ट्रेलिया और मैक्सिको तक के लोग यहां हैं।

रात के दो बजे जाने पर उठना आवश्यक हो गया क्योंकि संध्या समय ही सूचना दे दी गयी थी कि बाहर से आये लेखकों को स्लोवाक लेखकों के संगठन ने ब्रातिस्लावा में आमंत्रित किया है। प्रातः आठ बजे ही विमान से ब्रातिस्लावा के लिये चलना निश्चित था।

ब्रातिस्लावा चेकोस्लोवाकिया के स्लोवाकिया प्रांत की राजधानी है। प्राहा से रेल से नौ-दस घण्टे की यात्रा है। विमान से चलने का प्रयोजन था कि दिन यात्रा में न खप जाये परन्तु आकाश तो विमुख था, प्राहा में भी घने बादल थे। विमान मेघों से ऊपर उड़कर ब्रातिस्लावा में उतरा तो वहां मेघ पहले ही पृथ्वी पर मूसलाधार बरस रहे थे और खूब सर्दी थी। ऐसी अवस्था में भी स्लोवाकिया के लेखक संघ के दो सदस्य विमान अड्डे पर मौजूद थे। नगर जाकर होटल 'देविन' में ठहरे।

ब्रातिस्लावा छोटा-सा नगर है। जनसंख्या सवा लाख से अधिक नहीं होगी परन्तु नया बना होटल साज-सज्जा और सुविधा के विचार से योरुप के किसी भी होटल से बुरा न था। वर्षा के कारण कहीं जाने का अवसर न था। होटल का रेस्तोरां खूब बड़ा है और वर्षा के कारण दूसरा विनोद न कर सकने वाले लोगों से खूब भरा हुआ था। अतिथियों की सुविधा के लिए एक बड़ा कमरा सुरक्षित कर दिया गया था जिसमें आतिथ्य करने वाले स्लोवाक और अतिथि

लेखक ढाई-तीन घण्टे बातचीत और खानपान करते रहे।

वर्षा नहीं थमी परन्तु सन्ध्या समय नगर से बाहर मील दूर लेखकों के भवन में जाना ही पड़ा। यहां भी प्राहा के समीप दोब्रिश की तरह ही पर उस से जरा छोटा प्रासाद लेखकों का भवन है। साज-सज्जा और सुविधा का सामान भी उसी ढंग का। लोहे और कांसे की बड़ी-बड़ी मूर्तियां विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करती थीं। स्लोवाक लोग स्वभाव से मौजी और उदार होते हैं वैसा ही उन का आतिथ्य था।

पहली मई प्रातः नींद खुली तो उत्सुकता से खिड़की के समीप आकर देखा। आकाश पर अब भी खूब घना बादल था। प्रबल वायु ऊंचे-ऊंचे वृक्षों को दोहरा किये दे रही थी। कोई-कोई बूंद भी टपक जाती थी। दैव की यह विमुखता खल रही थी। क्योंकि पहली मई यहां महोत्सव का दिन है। सुना था बाजार में जुलूस निकलेगा। अपने यहां भी पहली मई मजदूरों के उत्सव का दिन होता है। मजदूरों के राज में उस उत्सव को देख पाना और बात थी। सोचा, ऐसी ऋतु में क्या जुलूस निकलेगा।

नाश्ते के समय ही स्लोवाक साथियों ने चेतावनी दे दी—"आकाश को देख लीजिये। ऐसे समय में जुलूस देखने जाइयेगा ?"

ब्रातिस्लावा के लोग यदि मेघ और वायु के ताण्डव की उपेक्षा कर जुलूस निकाल रहे थे तो हमें एक ओर खड़े होकर देख लेने का साहस तो करना ही चाहिए था। जुलूस का समय प्रातः दस बजे का था। हम लोग पौने दस बजे चौक में पहुंचे। हम लोगों को मंच पर खड़े हो सकने के लिये टिकट दे दिये गये थे।

बाल-बच्चों सहित बरसातियां ओढ़े लोगों की भीड़ ऐसी ठस थी कि हमारे लिये राह बना देने की इच्छा होते हुये भीड़ के लिये हिल पाने का स्थान न था। जैसे, तैसे, दबते-पिसते मंच पर पहुंच ही गये। मुख्य बाजार में सड़क के दोनों ओर कायदे से अपने आप को पीछे दबाये भीड़ नदी के कगारों की तरह दृष्टि की पहुंच तक खड़ी थी। शायद कोई ही मकान या दुकान होगी जहां चेकोस्लोवाकिया के लाल-नीले और श्वेत झंडे, कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत के लाल झंडों से दीवारें और छतें ढंकी न हों। वैसे ही बड़े-बड़े लाल कपड़ों पर खूब बड़े अक्षरों में नारे और संदेश लगे हुये थे। नारे मई दिवस की जाग ! लेनिनवाद के पथ पर समाजवाद की विजय ! विश्व-शान्ति की जय ! के थे। स्थान-स्थान पर मार्क्स, लेनिन, जूलियस फूशिका और चेकोस्लोवाकिया के राष्ट्र-

पति जापोतोत्स्की के बड़े-बड़े चित्र भी थे । स्तालिन का चित्र कहीं न था और न स्तालिन की जय का नारा । खूब तीखी ठंडी हवा अब भी चल रही थी । दस बज कर एक या डेढ़ मिनिट पर मेरी घड़ी के अनुसार बैंड पर मजदूरों के अन्तरराष्ट्रीय गीत की धुन बजी । उस के बाद चेकोस्लोवाकिया का राष्ट्रीय गान बजा । मंच पर चेकोस्लोवाकिया कि कम्युनिस्ट पार्टी के मंत्री भाषण के लिये खड़े हुये । विराट जनसमूह ने जय ध्वनि की—'अशिये प्रविनी माई (पहली मई जिन्दाबाद)!'

अवसर के अनुकूल मन्त्री का भाषण संक्षिप्त ही था । उन्होंने संसार भर के मजदूरों के सामने त्योहार का और संसार भर की मजदूर बिरादरी का अभिनन्दन किया । संसार भर के उत्पादकों के कल्याण के लिये विश्व-शांति के प्रयत्नों की सफलता का विश्वास दिलाया । उन्होंने पिछले दस वर्ष में चेकोस्लोवाकिया के मजदूरों द्वारा प्राप्त सफलता की सराहना की और फिर स्वीकार किया कि हमने बहुत-सी भूलें भी की हैं जिन का मुख्य कारण व्यक्तियों की अन्ध-पूजा और सिद्धान्तों के बारे में कठमुल्लापन की नीति थी । इन भूलों से पार्टी के क्षेत्र में जनगण की स्वतन्त्रता का दमन हुआ है जिस ने पार्टी की विकास और निर्माण की शक्ति को निर्बल किया है । उन्होंने भविष्य में आत्मालोचना द्वारा ऐसी भूलों से बच कर मार्क्सवाद और लेनिनवाद के मार्ग से समाजवादी व्यवस्था और विश्वशांति की विजय प्राप्त करने के लिये प्रेरणा की ।

मिलाना समीप खड़ी दो-दो तीन-तीन वाक्यों का अर्थ बताती जा रही थी । मैं स्तालिन का नाम अथवा उस सम्बन्ध में कोई चर्चा सुन पाने के लिये कान लगाये था परन्तु यह सुनाई नहीं दिया । भाषण के पश्चात फिर मजदूर अन्तर्राष्ट्रीय की और चेकोस्लोवाकिया के राष्ट्रीय गान की धुन बजी और मार्ग पर मजदूरों की टोलियां सैकड़ों चेकोस्लोवाक और कम्युनिस्ट झंडे लेकर निकलने लगीं । उस के बाद स्कूलों के छोटे-छोटे बच्चों, लड़के-लड़कियों की सौ-सौ, डेढ़-सौ की टोलियां छोटे-छोटे झंडे और कागज के फूल लिये निकलीं । कुछ बड़ी आयु के बच्चों की टोलियां और फिर लड़के-लड़कियों की टोलियों ने आकर सैकड़ों शांति दूत कबूतर उड़ाये । इस के बाद झांकियां निकलनी आरम्भ हुई । रंग-मंच के कलाकारों की झांकी एक बहुत बड़े दोमंजिले मकान जितना ऊंचा एक चक्र थी । चक्र सड़क पर लुढ़कता जा रहा था । चक्र की किरणों में कला-कारों द्वारा उपस्थित नाटकों के नाम थे । विविध पेशों के कारखानों के और

मिलों की झांकियां उन के काम और कौशल का परिचय दे रही थीं। बीच-बीच में गाते-बजाते, नाच करते हुये पुरुषों, स्त्रियों और स्त्री-पुरुषों की टोलियां निकल रही थी। इन टोलियों में प्राय: ही लोगों ने स्लोवाकिया की प्राचीन वेश-भूषा धारण की हुई थी जो अब प्राय: संग्रहालयों में ही रखी जाती है।

ऐसा जान पड़ा कि पहली मई का उत्सव मनाने वालों के हठ के सम्मुख आंधी बादल को भी झेंप आने लगी थी। दो-तीन बार मिनिट डेढ़-मिनिट के लिये सूर्य चमक गया। ज्यों ही धूप की झलक आती, सैकड़ों कैमरे क्लिक-क्लिक करने लगते। स्पार्तक युवक-युवतियों के व्यायाम और खेलों के संगठनों की टोलियां अपने-अपने संगठनों की वर्दियों में थीं। बैंक में काम करने वालों डाक्टरों और नर्सों के दल और स्कूल-कालिजों के अध्यापकों के दल भी मजदूरों के इस जुलूस में उत्साह और गर्व से भाग ले रहे थे। हमारे यहां मजदूर का आदर करना हो तो उसे बाबू कह कर सम्बोधन किया जाता है। समाजवादी समाज में किसी प्रोफेसर या लेखक का परिचय देना हो तो उसे बौद्धिक मजदूर कहे जाने से प्रसन्नता होती है।

जुलूस और झांकियां रोचक तो थीं परन्तु मैं नियमित रूप से बहते खूब चौड़े उस जन प्रवाह को देख कर अनुमान करना चाहता था कि कितने लोग इस में भाग ले रहे होंगे। हमारे यहां जिन जुलूसों में लाख-डेढ़-लाख व्यक्तियों के सम्मिलित होने का दावा कर लिया जाता है, उन से यह जुलूस बहुत बड़ा था परन्तु पूरे ब्रातिस्लावा की जनसंख्या डेढ़ लाख से कम बतायी जाती है। निश्चय ही आसपास के गांवों से सांझी खेती के क्षेत्रों के लोग भी जुलूस में सम्मिलित होने आये थे परन्तु कुछ लोग दर्शक भी तो रहे होंगे।

आंधी और बादल मई दिवस के उत्सव को भंग करने में असफल रहे तो अपना फौज फाटा सम्भाल कर चल दिये और सूर्य मुस्कराने लगा। दुकानें त्योहार की छुट्टी के कारण बन्द थीं परन्तु कांच की बड़ी दीवारों के पीछे खूब सजी हुई दिखाई दे रही थीं और देखने में खुली हुई लग रही थीं।

मैं वस्तुओं पर लिखे मूल्य देख रहा था। प्राहा और ब्रातिस्लावा के मूल्यों में पाई-दमड़ी का भी अन्तर न था। साधारणत: उपयोग और शौक की वस्तुओं के मूल्य में बहुत अन्तर था। अच्छा काम चलाऊ जूता साठ क्राउन में मिल सकता है। न भीगने वाले तले और चमड़े का जूता एक सौ चालीस क्राउन में मिल जाता है; परन्तु हाथ से बने फैशनेबल जूते तीन सौ से लेकर पांच सौ

क्राउन तक में भी मिलते हैं। यह कीमतें निश्चय ही बहुत अधिक हैं परन्तु युनिवर्सिटी के विद्यार्थियों, लेखकों और अध्यापकों के अतिरिक्त बाजार में भी बहुत से लोगों के पांव में ऐसे जूते प्रायः दिखाई देते हैं। बना बनाया गरम कोट-पतलून नौ सौ या हजार क्राउन में मिल सकता है परन्तु शौकीन लोग केवल सिलाई के लिये ही नौ सौ क्राउन भी दे डालते हैं।

ब्रातिस्लावा योरुप की प्रसिद्ध नदी डैन्यूब के किनारे बसा है। डैन्यूब को यहां दनाओ कहते हैं। दनाओ जर्मनी से यहां आती है और आस्ट्रिया, हंगरी, युगोस्लाविया, रूमानिया से गुजरती हुई कृष्ण सागर में गिरती है। इस नदी द्वारा खूब व्यापार होता है। वियाना यहां से बहुत समीप है। यदि वातावरण साफ हो तो नगर के टीले पर पुराने किले के खंडहरों पर चढ़ कर देखने से वियाना दिखाई पड़ जाता है। यदि आस्ट्रिया और चेकोस्लोवाकिया में युद्ध हो तो इस टीले पर और वियाना के समीप कहलनबुर्ग के टीले पर तोपें चढ़ा देने से दोनों एक दूसरे को ध्वंस करने का प्रयत्न कर सकते हैं। आस्ट्रिया और चेकोस्लोवाकिया का कल्याण परस्पर एक दूसरे के अधिकार का सम्मान करने में ही है।

लोग यहां बजरों पर खूब नदी विहार करते हैं। सड़कों पर आधी रात तक संगीत और नृत्य चलते रहना मामूली बात है।

दूसरे दिन प्रातः ही मोटरों में ब्रातिस्लावा से तातरा पहाड़ की ओर चल दिये। स्लोवाकिया का प्रांत शताब्दियों से कृषि प्रधान रहा है। उद्योग-धंधे यहां कम ही थे। केवल खेती पर भरोसा होने के कारण यहां का पहाड़ी प्रदेश बहुत ही पिछड़ा हुआ और गरीब रहा है। अब स्थान-स्थान पर सीमेंट, लोहा और कपड़ा बनाने के कारखाने बनते जा रहे हैं। खेती यहां सामूहिक समाजवादी ढंग से भी होती है और बहुत सी भूमि व्यक्तिगत स्वामित्व में भी है। दोनों प्रणालियों का अनुपात एक तिहाई और दो तिहाई का है। सामाजिक स्वामित्व से होनेवाली खेती में सब कुछ यंत्रों द्वारा होता है। व्यक्तिगत स्वामित्व में की जाने वाली खेती में घोड़ों से चलने वाले हल काम में लाये जाते हैं। खेतों में गेहूं बोने की तैयारी हो रही थी। कई जगह सरसों भी फूल रही थी। इस देश में मई का महीना मधुमास होता है। सड़क किनारे दिखाई देने वाले सेवों और अलूचों के वृक्ष फूलों से लदे थे। मार्ग में आने वाले गांव-कस्बों की दुकानें मई दिवस के उपलक्ष में झंडे-झंडियों और चित्रों से खूब सजी थीं।

कई मकानों के दरवाजों और खिड़कियों के सामने साल या सरो जैसे किसी

वृक्ष की बिल्कुल सीधी और ऊंची लट्ठ झंडे के बांस की तरह गडी दिखाई दे जाती थी । लकड़ी के सिर पर हरे पत्तों का झुरमुट और उसमें कुछ कागज के फूल या झंडियां भी दिखाई देती थी । मिलाना ने बताया इसे अंग्रेजी में पोल कह सकते है । हिन्दी में 'मधुपताका' भी कहा जा सकेगा ।

गांव के प्रेमी जंगल से लम्बी-सीधी लकड़ी काट कर ले आते हैं और पहली मई के प्रभात में अपनी प्रेमिका के द्वार के या खिड़की के सामने यह झंडा गाड़ देते हैं । यह युवती के प्रति युवक का प्रणय निवेदन समझा जाता है । अपने द्वार की मधुपताका अधिक ऊंची होने पर लड़कियां गर्व करती हैं ।

मधुपताका का रहस्य जान लेने पर मैं कौतुक से उन्हें देखने लगा । ऐसी कोई ही अभागी बस्ती होगी जहां एक या दो मधुपताकायें न दिखाई दी हों । मालूम था कि मिलाना का भी वाग्दान हो चुका है । पूछा:—"सम्भव है आज प्राहा में तुम्हारी गली में भी मधुपताका फहरा रही हो । तुम घर लौट कर ही उसे देख पाओगी ।"

मिलाना ने मुस्कराकर दीर्घ निश्वास लेने का अभिनय कर उत्तर दिया—"ऐसा भाग्य कहां ? प्राहा में लकड़ी काटने के लिये जंगल कहां, पताका गाड़ने का स्थान कहां और मेरा सखा तो ड्यूटी पर प्राहा से बाहर गया हुआ है ।"

पूछा—"घर के सामने मधुपताका गाड़ दी जाने पर लड़की के भाई या माता-पिता लड़के की कुछ मरम्मत या सेवा नहीं करते ?"

"वाह, माता-पिता को संतोष होता है कि लड़की को जीवन साथी मिल गया ।" मिलाना ने समाधान किया और बताया, "अब प्रायः रीति नहीं रही । पहले तो लड़की के प्रणय योग्य जवान हो जाने पर माता-पिता उस के कमरे की खिड़की की मेहराब को पीला रंग देते थे । जब लड़की का वाग्दान हो जाता तो मेहराब को लाल रंग दिया जाता था ।"

सड़क शनैः-शनैः समुद्री धरातल से ऊपर उठती जा रही थी । सड़क के बायें-दायें नीची पर्वत श्रेणियां और शिखिर दिखाई दे जाते थे । पर्वत शिखिरों पर छोटे-बड़े किलों के ध्वंसावशेष दिखाई दे रहे थे । यह ध्वंसावशेष मध्य युग की याद थे जब स्लोवाकिया की उपजाऊ धरती पर आस्ट्रियन और हंगेरियन सरदारों के दांत लगे ही रहते थे ।

मध्यान्ह का भोजन एक छोटे से पहाड़ी कस्बे में किया । होटल की पीठ पहाड़ी की चट्टान से सटी थी । होटल के लोगों ने पीछे की खिड़की से चट्टान

पर खुदे बहुत बड़े-बड़े अक्षर दिखाये। यह लेख लगभग बारह सौ वर्ष पुराना था। रोम के किसी सेनापति ने इस स्थान को विजय कर अपना नाम और अपनी विजय की तिथि उस चट्टान पर खुदवा दी थी। मुझे ऐसा लगा जैसे कोई डाकू किसी का घर लूट कर निर्लज्जता से अपनी करतूत की घोषणा दीवारों पर कर गया हो परन्तु नैतिकता समय और परिस्थितियों के अनुकूल होती है। तब यह बात विशेष गर्व की थी। उस समय हल चला कर भोजन और करघा चला कर कपड़ा उत्पन्न करना निरादर की बात और तलवार के जोर से यह वस्तुएं छीन लेना गर्व की बात थी। आज बहुत-सा धन हथिया लेने के लिए तलवार का प्रयोग बर्बरता माना जायगा, परन्तु सौदे, सट्टे और सूद के फंदे से दूसरों का सब कुछ समेट लेना नीति संगत ही है।

ज्यों-ज्यों पहाड़ी आंचल में भीतर जा रहे थे, त्यों-त्यों सड़क किनारे के मकानों से अपेक्षाकृत अविकसित अवस्था और गरीबी का आभास मिल रहा था। वैसी ही अवस्था पोशाक की भी थी। पिछले कुछ बरसों में आये परिवर्तन के प्रमाण भी साथ ही मौजूद थे। उदाहरणतः कांगड़ा, अलमोड़ा, गढ़वाल के पहाड़ी प्रदेशों में पाये जाने वाले मकानों जैसे घर जिन में धुंआ निकलने के लिये चिमनी भी न थी दिखाई दे रहे थे। अब इन मकानों में केवल पशु बांधे जाते हैं। अपने रहने के लिये किसानों ने दूसरे मकान बना लिये हैं। गांवों में स्त्रियों को सड़क के साथ बहती पानी की चौड़ी नाली में कपड़े धोते भी देखा। तीन-चार वर्ष पहले तक पीने के लिये भी यह पानी था, परन्तु अब हाथ से चलाये जाने वाले पम्प सब जगह दिखाई पड़ रहे थे। सड़क तो सभी जगह पक्की और सुथरी थी।

हम तो समय बचाने और देहात का परिचय पा सकने के प्रयोजन से मोटर में ही चल रहे थे, परन्तु स्थान-स्थान पर ब्रातिस्लावा से आती रेल की पटरी मिल जाती थी। अब शायद ही कोई स्थान होगा जो रेल-स्टेशन से पांच-सात मील की परिधि में न हो। सड़कों पर भी मुसाफिरों के लिये बसें नियमित रूप से चल रही थीं। यहां खेती की भूमि छोटे-छोटे टुकड़ों में है और प्रायः व्यक्तिगत सम्पत्ति है। कई लोगों को हल में गाय जोते भी देखा। गाड़ी में भी गाय जुती देखी। साधारणतः खेती घोड़ों से हल जोत कर होती है। खेती के लिये बैल कम ही पाले जाते हैं। मजबूरी में गाय को ही जोत लिया जाता है। दूध देती गाय को हल या गाड़ी में नहीं जोता जाता। उस से दूध की हानि होती

है। हल या गाड़ी में जुती गऊएं काफी हृष्ट-पुष्ट थीं। यह लोग पशु को जब तक जीवित रखते हैं, उसे तन्दुरस्त रखते हैं। कारण यह कि गाय को यहां पूजा के पुण्य के लिये नहीं केवल उपयोग के लिये रखा जाता है। उस के तन्दुरस्त न होने पर उस का उपयोग क्या ?

चेकोस्लोवाकिया की समाजवादी व्यवस्था में अन्न, मांस और दूध की कमी खटकती तो नहीं परन्तु उन लोगों के विचार में यह वस्तुएं अभी पर्याप्त नहीं हैं। बहुत कुछ सामान दिसावर से भी मंगवाना पड़ता है। इस का कारण यह लोग व्यक्तिगत स्वामित्व में होने वाली कृषि को समझते हैं। उन का विचार है कि व्यक्तिगत साधनों से उपज को उतना नहीं बढ़ाया जा सकता जितना कि सामाजिक और सामूहिक साधनों से। वे प्रतीक्षा में हैं कि किसान अपने अनुभव से स्वयं सहयोग और सामूहिक पद्धति को अपनायें। किसानों को नयी दिशा की ओर प्रेरित करने का उपाय उन के सामने संयुक्त कृषि क्षेत्रों की उपज के और ऐसे किसानों की समृद्धि के उदाहरण रखना ही है। यह लोग बलात् व्यवस्था में परिवर्तन कर डालने की अपेक्षा वैधानिक ढंग का ही भरोसा करते दिखायी पड़ते हैं।

इस प्रदेश में सड़क के किनारे कुछ-कुछ दूरी पर भगवान ईसा की माता मरियम की मूर्तियों के चौतरे काफी संख्या में दिखाई पड़ रहे थे। कोई ही मूर्ति भग्नावस्था में होगी। अधिकांश मूर्तियों पर ताजे या कुछ दिन पूर्व के फूल चढ़ाये हुए थे। कई मूर्तियों पर तो कम्यूनिस्टों का चिन्ह हंसिया हथौड़ा भी बना था और मई दिवस जिन्दाबाद का नारा तो बहुत सी मूर्तियों के साथ दिखाई दिया। यहां शताब्दियों से प्राचीन रोमन कैथालिक या ईसाइयत के सनातन धर्म की परम्परा चली आ रही है। कई जगह मकान अच्छे न दिखाई देने पर भी गिर्जे अच्छे और पत्थर के बने दिखाई देते थे। प्राचीन ढंग से कृषि पर निर्भर लोगों को भगवान अथवा अदृश्य दैवी शक्तियों का भरोसा करना ही पड़ता है। जो भी हो, साधारणतः कम्यूनिज्म और धर्म में आग पानी का बैर समझा जाता है इस-लिये स्लोवाकिया के इस भाग में इन दोनों का यह अस्तित्व देखकर विस्मय होता है। स्थानीय लोगों को दोनों ही आवश्यक जान पड़ते हैं।

संध्या समय जाब्लिना पहुंचे। छोटा सा गांव ऊंचे पहाड़ की तलहटी में छोटी परन्तु तेज बहती हुई बर्फानी नदी के किनारे बसा है। आसपास के घाटों पर दरारों और गढ़ों में अब भी बरफ भरी हुई थी। हवा कनपटियों को छेद

दे रही थी। चारों ओर का दृश्य कश्मीर के पहलगांव जैसा ही था परन्तु वृक्षों की कमी थी।

गांव से एक फर्लांग के अन्तर पर काठ के बने दोमंजिले बंगलानुमा मकान में हम लोगों के लिये ठहरने की व्यवस्था थी। मकान के सभी कमरे बीचोंबीच जलती अंगीठी से पहुंचती गरमी से गरम थे। गरम चाय और काफी बहुत सुखद लगी। यह मकान भी स्लोवाकिया के लेखक संघ की सम्पत्ति है। एक मैनेजर, बावर्चिन और एक परिचारिका यहां सदा बनी रहती है। लेखकों को जब एकान्त की आवश्यकता होती है या ब्रातिस्लावा में गरमी सताती है, वे यहां आकर रह सकते हैं।

सूर्यास्त हो रहा था और बाहर सर्दी भी खूब थी फिर भी बरसाती कोटों में लिपट कर गांव की ओर चल दिए। गांव का रहन-सहन ऐसा ही लगा मानों योरुप में कोई भोटियों का गांव देख रहे हों। एक वृद्धा अपने आंगन में कांटा लिये सूखा घास समेट रही थी। किसी भी अपरिचित से यों ही औचक बात करने में झिझक स्वाभाविक है परन्तु मिलाना को क्या झिझक। उस ने बुढ़िया को सम्बोधन किया—"मौसी, यह दूर देश से आये लेखक तुम्हें सलाम कह रहे हैं।"

बुढ़िया ने अपने रूखे, मैले, खुरदरे हाथ कम्बल के लहंगे पर बंधे आंचल (एप्रिन) पर पोंछे और हाथ मिलाने के लिये बढ़ आई। बूढ़ों से तो बात छेड़ देना भर काफी होता है। वे बात करने लगते हैं तो बात समाप्त होने की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। बुढ़िया घर में अकेली ही थी। बेचारी के पति-पुत्र प्रौढ़ावस्था में मर गये थे। पति के भाई रोजी की तलाश में बीस वर्ष पहले अमरीका चले गये थे और लौटे नहीं। मामूली सी जमीन है जिसे वह कुछ दे-दिला कर जुतवा कर आलू बो लेती हैं। दो सुअर हैं।

यहां कोई उद्योग-धंधा तो पहले भी न था। तब यहां न डाकखाना था न तार घर। रेल का स्टेशन भी दूर था। मोटर बस भी नहीं आती थी। जीविका की खोज में लोग जर्मनी या अमरीका चले जाते थे, जैसे अपने यहां गोरखपुर बस्ती के लोग रोजगार के लिये कलकत्ता, बम्बई जाने के लिये बाध्य हो जाते हैं। अब वह बात नहीं है। छः-सात मील पर एक स्टेशन तातरा पहाड़ जाने वाली रेल लाइन पर बन गया है। नियमित रूप से सुबह शाम बस भी आती जाती है। मकानों की नीचे की मंजिलें प्रायः पत्थर की और ऊपर की लकड़ी

की हैं। छप्परनुमा छतें लकड़ी के तख्तों की या टीन की हैं। माता मेरी की मूर्ति, हंसिये हथौड़े के लाल झंडे सहित प्राय: ही छत की कोरनिस के नीचे दिखाई दे जाती है। बस्ती में सौ से कम ही घर होंगे।

× × ×

एक उत्साही प्रौढ़ विदेशी अतिथियों को देख कर साथ हो लिया। उस ने सुझाया—"यहां का गिरजाघर देखो।"

ऐसी जगह में इतना बड़ा गिर्जा देख कर विस्मय ही हुआ। संध्या समय की प्रार्थना के लिये बहुत सी स्त्रियां गिर्जे में आ रही थीं। मोम बत्तियां जल रही थीं। प्रौढ़ ने पूछा—"पादरी साहब से मिलियेगा ?"

पादरी साहब ने स्पष्ट ही पूछा—"इस गांव के विषय में कुछ पूछ-ताछ करना चाहते हैं ?···गिरजा तो आपने देख लिया।" पादरी साहब की आंखों की मुस्कान से स्पष्ट था कि उन्हें हमारी धार्मिक श्रद्धा के प्रति संदेह था। वे हम से नितांत लौकिक दृष्टिकोण की आशा करते थे।

मैंने प्रश्न किया—"यहां के जन-साधारण की आर्थिक अवस्था और बस्ती देखते इतना बड़ा गिरजा आश्चर्य की बात है।"

"यह गिरजा प्राहा की रोमन कैथोलिक काउन्सिल ने प्राय: बीस वर्ष पूर्व बनवा दिया था।" पादरी ने उत्तर दिया।

"गिरजा यहां की बस्ती के लिए अधिक बड़ा जान पड़ता है। इतने भक्त आ जाते होंगे ?"

"रविवार और त्योहारों के अवसर पर पास-पड़ोस के गांवों से भी लोग आ जाते हैं।"

"इस समाजवादी व्यवस्था का प्रभाव यहां कैसा पड़ा है ?"

जीवन की अवस्था सुधरी है। यहाँ डाकखाना और तार घर बन गए हैं। स्कूल की नई इमारत बन गई है। सुबह-शाम बस आती है। नित्य समाचार पत्र मिलता है। कुछ लोग रेडियो भी ले आये हैं।"

"परन्तु रेडियो और समाचार पत्रों से लोगों का दृष्टिकोण भी भौतिक हो गया होगा ?"

"रेडियो और समाचार पत्रों से तो नहीं परन्तु छोकरों के व्याख्यानों से ऐसी बात होती है। तब भी लोग गिरजे में आते हैं।"

पादरी साहब हमें साथ ले चले। गांव की गलियां कच्ची थीं। उन्होंने बताया हमारा प्रदेश चेकोस्लोवाकिया भर में सब से पिछड़ा और गरीब स्थान रहा है। स्कूल की लकड़ी की इमारत में पहुंच कर वे बोले—"परन्तु हमारा यह स्कूल तीस वर्ष पुराना है। मैं तीस वर्ष पूर्व यहां आया था, तब से यहीं ही हूं।" स्कूल से वे हमें अपने घर की ओर ले चले। स्कूल की इमारत लकड़ी की थी परन्तु उसे गरम रखने का प्रबन्ध था।

पादरी के घर की बाहर से पुरानी दीखती इमारत के भीतर अच्छे-खासे कमरे थे। फर्नीचर भी था। हम सब मिल कर पांच आदमी थे। आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत रख पादरी के यहां एक प्रौढ़ा और उस की खूब सुन्दर युवती बेटी घर-बार सम्भाल रही थी। पादरी ने छः छोटे गिलास और घड़े के परिमाण की लाल मदिरा भरी बोतल मेज पर रख कर कहा—"यह घर की बनी करौंदे की सात्विक मदिरा है।"

मैंने पूछा—"समाजवादी सरकार धर्म भावना को तो क्या प्रोत्साहन देती होगी?"

"प्रोत्साहन नहीं देती परन्तु प्रकट में कोई विरोध भी नहीं है।" पादरी ने बताया, "इस सरकार से पहले पादरी धर्मोपदेश के कार्य के लिए वेतन पाते थे। अब शिक्षा अथवा दूसरे कामों के लिए पाते हैं। मैं यहां के प्राइमरी स्कूल में पढ़ाता हूं। धर्मोपदेश अपने संतोष के लिए करता हूं। सरकार गिरजे की मरम्मत और पूजा-अर्चना चालू रख सकने के लिए कुछ नियमित धन भी देती ही है। जो पादरी पहले सरकारी तनख्वाह पाते थे, वे अब भी पाते हैं।"

"विवाह आजकल गिरजों में होते हैं अथवा अदालत में रजिस्ट्री द्वारा?" मैंने पूछा।

"नगरों में विवाह अदालतों में और देहात में प्रायः गिरजों में ही होते हैं। इस का कारण यह भी है कि गिरजे में पुरानी परिपाटी से किये जाने वाले विवाह मनोरंजक होते हैं।" पादरी ने मुस्कराकर कहा और प्रमाण स्वरूप गिरजे में कुछ दिन पूर्व हुए विवाह का एक फोटो भेंट करते हुए कनखियों से मुस्कराते हुए कहा, "यह मेरी ओर से प्रोपेगैण्डा है!"

पादरी हंसमुख थे और चुटकी लेकर बात करते थे। उठने के लिये मन नहीं चाह रहा था परन्तु ख्याल था कि दूसरे लोग भोजन के लिये प्रतीक्षा कर रहे होंगे। पादरी साहब हमें कुछ दूर तक छोड़ने भी आये। मुख्य गली में एक

मकान दिखाकर बोले—सन् '४५ में जब देहात में नाजियों के विरुद्ध संघर्ष चल रहा था जाब्रिवा में मुक्ति के लिये लड़ने वालों का अड्डा इसी मकान में था। प्रकट में मकान को गाव की मधुशाला का रूप दिया हुआ था कि यहां बहुत से लोगों का आना-जाना न खटके। नाजियों को यह बात मालूम हो गई। एक दिन ऐसे ही संध्या समय नाजी फौज की टुकड़ी, मशीन गनें लेकर यहां आ पहुंची। स्वतंत्रता के लिये लड़ने वाले उस समय भी घर के भीतर मौजूद थे। घर की मालकिन बुढ़िया ने तुरंत मेज़ पर रखे फूल दान में से फूल उठा लिये और सड़क पर नाज़ी सिपाहियों के सामने फूल भेंट कर बहुत आग्रह से बोली—"अतिथियो, एक गिलास पिलाये बिना तो आगे बढ़ने नही दूंगी।"

बुढ़िया नाजियों को घर के ऊपर के कमरे में ले गई। नाजी सिपाही अभी बियर का पहला गिलास भी समाप्त नहीं कर पाये थे कि नीचे तहखाने में सोये और बैठे लोग मकान के पीछे के द्वार से चम्पत हो गये।

लेखकों के विश्राम भवन के मैनेजर ने जाब्रिवा के कुछ देहातियों को भी भोजन के लिये आमंत्रित कर लिया था। यह लोग अपनी 'राष्ट्रीय' पोशाक में आये थे। पुरुषों के सिर पर हमारे यहां के पहाड़ियों जैसे कनटोप थे। गाल ढकने का भाग ऊपर को उल्टा हुआ। घर के बने खद्दर जैसे कोरे सफेद कपड़े के कढ़े हुये बिना कालर और कफ के कमीज। रोएं भीतर किये भेड़ की खाल की जाकटों पर खूब कढ़ाई की हुई थी। पतलून चूड़ीदार पायजामे जैसी तंग। सीवनों पर लाल, हरे धागे से बेलें काढ़ी हुई और हाथों में कुल्हाड़ियां। स्त्रियां भी खूब फुलावदार लहंगे; फुलाव बढ़ाने के लिये लहंगे पर लहंगा पहने थीं। खूब फूली हुई आस्तीनों की कुर्तियां पहने और सिर पर कढ़े हुये रुमाल बांधे थीं। सामने कमर पर कढ़े हुये एप्रिन-आंचल बंधे थे।

विदेशी अतिथियों के साथ बैठ कर खाने पीने में तो इन देहातियों को कोई संकोच नहीं था परन्तु जब उन से स्थानीय गीत सुनाने का और नाच दिखाने का प्रस्ताव किया गया तो स्त्रियों के चेहरे लाज से लाल होने लगे। वह नाक पर हाथ रख कर लजाने लगीं। उन्हें विदेशी अतिथियों के सामने गाते-नाचते संकोच हो रहा था। बहुत अनुरोध करने और उत्साह बढ़ाने पर वे हमारे यहां के देहात की स्त्रियों की तरह एक दूसरी की ओर मुख कर और हम लोगों से अपने हाथों की ओट कर धीमे-धीमे गाने लगीं। एक जवान आर्गन भी ले आया था। कुछ देर में संकोच जाता रहा और स्त्री,पुरुष कभी एक दूसरे के कंधे पकड़े

और कभी ताली बजा धमाधम नाचने लगे। नाच में पंजाबी 'गिद्दा' नाच और 'भंगड़े' नाच से बहुत कुछ साम्य था। गीत का विषय हास्य का था—मिलाप की पहली रात प्रेमी चूहे से डर गया था। वह कांपता हुआ कभी खाट के नीचे दुबकता कभी ओटने की आड़ में जा बैठता। प्रेमिका उसे बहुत ढाढ़स बंधाती रही परन्तु उस के जवान का हृदय धड़कता ही रहा। आखिर प्रेमी को खिड़की की राह बाहर धकेल कर प्रेमिका ने खेतों की राह ली।

नाचने गाने वालों का उत्साह बढ़ता जा रहा था। अब वे हमारे अनुरोध की अपेक्षा न कर अपनी मौज से ही गा रहे थे। उन्होंने लम्बी-लम्बी टेरों के सुरों में एक गीत गाया। मैंने मिलाना से पूछा—"यह क्या विरह गीत है?"

"क्यों, कैसे अनुमान किया?" मिलाना ने विस्मय से चमकती आंखों से पूछा।

"इस का सुर विरह गीत का है। हमारे यहां के विरह गीतों के सुर प्रायः इसी प्रकार के होते है।"

"हां, विरह गीत ही है। परन्तु यह आश्चर्य की बात है कि विरह के गीतों के स्वर भिन्न सभ्यताओं और संस्कृतियों में भी एक ही से है।" मिलाना ने फिर कहा।

"विस्मय क्या है? विरह का दुख भी तो सभी जगह एक-सा ही होता है। विरह एक विशेष प्रकार की मानसिक अवस्था उत्पन्न कर देता है। उस मानसिक अवस्था में एक विशेष प्रकार का ही स्वर निकल सकता होगा। मैंने कहा—और फिर उसे बताया कि मैं पश्चिमीय शास्त्रीय संगीत से बिलकुल कोरा हूं। मोजार्ट, बीट ओवन, बाखको समझने की क्षमता मुझ में नहीं है। उन के स्वर्गीय संगीत का मुझ पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता परन्तु यहां के लोकगीतों की धुन स्वतः मन को छू जाती है।"

दूसरे दिन प्रातः नाश्ता करके आगे चल दिये। सड़क शनैः-शनैः समुद्री धरातल से ऊंची उठती जा रही थी। प्रदेश और अधिक पहाड़ी जान पड़ रहा था। सड़क किनारे के गढ़ों और चट्टानों में बरफ दिखाई दे जाती थी। कुछ दूर जाकर सड़क के दोनों ओर बरफ के बड़े-बड़े खित्ते दिखाई देने लगे। हम लोग ऊपर चढ़ते जा रहे थे। मोटरें दो-तीन नये ढंग के बने मकानों के सामने आकर रुक गईं। चारों ओर बरफ से छितराई हुई पहाड़ियां थीं और सामने बरफ से बिलकुल ढका छोटा-सा मैदान था। मैदान के किनारे तीन-चार छोटी-

छोटी डोंगियां बंधी हुई थी। बरफ का मैदान जान पड़ने वाला स्थान 'शिवरबके' छोटी-सी झील मई की तीन तारीख को भी बिलकुल जमी हुई थी। मई के अन्त में बरफ पिघल जाती है और अक्तूबर में फिर जमने लगती है। उस समय जल खूब स्वच्छ और नीला रहता है। समीप दीवार की तरह खड़ा पहाड़ तब भी बरफ से ढका रहता है।

समुद्रतल से इस स्थान की ऊंचाई साढ़े चार हजार फुट से अधिक नहीं है। हमारे देश में श्रीनगर को छोड़ कर इतनी ऊंचाई पर बरफ नहीं गिरती; परन्तु उत्तर में होने के कारण यहां वर्ष के अधिकांश भाग में बरफ जमी रहती है। दृश्य प्रायः गुलमर्ग से कुछ ऊपर अलगत्तर जैसा है। बिलकुल सामने तातरा पहाड़ का सदा हिमावृत्त रहने वाला शिखर दिखाई देता है। इस शिखर का पुराना नाम गर्लाख है परन्तु १९४६ में समाजवादी व्यवस्था कायम होने के समय से इसे स्तालिन शिखर नाम दे दिया गया है।

साथ आये स्लोवाक लेखक से यों ही पूछ बैठा शिखर का नाम निकट भविष्य में बदला जाने की सम्भावना है या नहीं? उस ने उत्तर दिया—"आये दिन नाम नहीं बदले जाते। इतिहास में स्तालिन का नाम इस पर्वत शिखर से कम ऊंचा नहीं रहेगा।" बात बदल कर उसने कहा, "आपके हिमालय के सामने तो यह पहाड़ बच्चे ही है। इसकी ऊंचाई सात हजार फुट ही है।"

मैंने उत्तर दिया—"गौरीशंकर, कंचनचंगा और नागा पर्वत की बात दूसरी है परन्तु हिम का जो वैभव सामने है वैसे हमारे यहां सात आठ हजार फुट क्या, पन्द्रह हजार पर भी कठिनता से हो सकता है। हमारे यहां सात हजार फुट की ऊंचाई पर शिमले मंसूरी में तो लोग बाइसिकलें दौड़ाते फिरते हैं।"

शिवस्त्रके झील से हम दूसरी ओर मुड़ गये। कुछ नीचे चेकोस्लावाकिया का सब से बड़ा, क्षयरोग की चिकित्सा का हस्पताल है। रेल स्टेशन तीन चार मील और नीचे है। स्टेशन से हस्पताल तक बिजली की ट्राम निरंतर चलती रहती है। हम कुछ और नीचे उतर कर ग्रांड होटल में ठहरे। होटल नया बना है। सात मंजिल की इमारत है। साज-सज्जा और सुविधा में प्राहा के सब से अच्छे होटलों से भी बेहतर है। प्राहा के बड़े होटल समाजवादी व्यवस्था से पहले के बने हुये हैं। यह होटल नया है और सम्पूर्ण नवीन साधनों का बनाया गया है। प्रत्येक कमरे में रेडियो और टेलीफोन हैं, ठंडा और गरम पानी चौबीसों घंटे चालू रहता है। छटी मंजिल में कमरे के सामने आगे बढ़ी सीमेंट की सिल

पर बने छज्जे पर बैठने से दूर-दूर तक फैली हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियों का और नीचे देवदार जैसे घने जंगलों का दृश्य बहुत मनोरम लग रहा था परन्तु नीचे देखने से आतंक भी अनुभव होता था। होटल भरा हुआ था। शहरों के बहुत लोग अपनी छुट्टियां मनाने यहां आते रहते है।

चार मई प्रातः नाश्ते के पश्चात् सामने दिखाई देते हिम-शिखर पर जाने की बात थी। होटल से कुछ ही कदम नीचे की ओर गये। यहां हिम-शिखर पर जाने वाले बिजली के खटोले का स्टेशन है। बहुत ऊंचे-ऊंचे फौलादी शहतीरों के बने खम्भे, प्रायः दो दो सौ गज और कई स्थानों पर उस से भी अधिक अंतर पर हिम-शिखर की ओर ऊंचे से ऊंचे स्थानों पर चढ़ते चले गये है। शहतीरों के शिखरों पर दो मोटे फौलादी रस्से बंधे हैं। हम आठ-दस लोग इस रस्से से लटकते खटोले में खड़े हो गये और खटोला ऊपर की ओर सरकने लगा।

पहाड़ की ढलवान पर देवदार जैसे खूब ऊंचे और महाकाय वृक्षों का जंगल था। खटोला वृक्षों की चोटियों से भी बहुत ऊंचा चला जा रहा था। नीचे देखने पर लगता था हरे रंग के महकाय स्तूपों से पटा हुआ मैदान है। ज्यों-ज्यों पहाड़ की ऊंचाई बढ़ती थी, फौलादी खम्भे ऊपर चढ़ते जा रहे थे। कुछ ही मिनिट में एक पहाड़ी के शिखर पर पहुंच गये। यहां अधमार्ग का स्टेशन है। अधमार्ग के शिखिर पर एक वेधशाला (observatory) बनी हुई है। एक भीमकाय दूरबीन है जो मशीन पर रखी हुई है। वेधशाला की छत दूरबीन की गति के साथ घूमती है अर्थात् छत पर दूरबीन के सामने खुला भाग आ जाता है। यहां वायु की गति-विधि आदि से ऋतु का अनुमान किया जाता है और नक्षत्रो का अध्ययन भी। नक्षत्रों के अध्ययन के लिये आकाश का स्वच्छ होना आवश्यक है। योरुप में स्वच्छ आकाश बहुत कम मिलता है। इसकी जितनी सुविधा हमारे देश में है उतनी यहां नहीं। अधमार्ग पर बड़ा खटोला छोड़ कर छोटे खटोले में हो गये। अधमार्ग के आगे बीच में फौलादी खम्भे नहीं हैं। सामने हिम-शिखर बादलों में छिपा हुआ था। अधमार्ग से आगे फौलादी रस्से सीधे बिना खम्भों की सहायता के एक दम हिम-शिखर की ओर चले गये हैं। रस्से से ऊपर चढ़ता खटोला ऐसे जान पड़ रहा था मानों बादलों में छिपे दैत्य उसे तार से बांध कर डोल की तरह ऊपर खींचे ले रहे हैं। नीचे ढलवान पर बरफ़ ही बरफ़ थी। कुछ लोग हाथ में बल्लम लिये बर्फानी ढलवानों पर पैदल चढ़ने का शौक पूरा कर रहे थे। सामने ऊपर की ओर दृष्टि की पहुंच तक अछूती बरफ़ की श्वेत

दीवार, जान पड़ता था खटोला अभी बरफ़ की दीवार से टकरा जायगा परन्तु खटोला बरफ की दीवार से टकराने के बजाय आकाश की ओर उठता जा रहा था।

खटोला बादलों के भी ऊपर चला गया। अब नीचे बादलों के अतिरिक्त कुछ दिखाई न देता था। जान पड़ा दूसरे लोक में पहुंच गये हों। विमान तो इस से कहीं अधिक ऊंचाई पर उड़ता है परन्तु उस में इंजन का शब्द और पृथ्वी से समानान्तर गति होने के कारण स्मृति मे पृथ्वी से सम्बंध का विश्वास बना रहता है। खटोले में कोई शब्द न था और उसकी गति पृथ्वी से समानान्तर नहीं आकाशोन्मुख थी। मेघों से ऊपर उठकर फिर खटोले के तीन ओर हिम की दीवारें दिखाई देने लगी और हम ऊपर स्वर्ग की ओर खिंचते जा रहे थे। खटोला बरफ़ से ढकी खूब बड़ी गुफा के द्वार पर पहुंच कर ठहर गया। बरफ़ से ढकी गुफ़ा के भीतर पत्थर की इमारत बिजली की अंगीठियों से खूब गरम थी परन्तु दोहरी कांचमढ़ी खिड़कियों से बाहर सब ओर दानेदार चीनी जैसी ताज़ी बरफ से ढकी अगम भूमि थी। आस पास दूसरे हिम-शिखर भी दिखाई दे रहे थे। बाहर वायु तेज थी और बरफ़ गिर रही थी। भीतर खान-पान का प्रबंध था और दिल बहलाने के लिये ताश, शतरंज भी रखे हुये थे।'

ग्राण्ड होटल से कुछ बारह मील दूर एक मैदान में इस क्षेत्र के लिये विमान-अड्डा है। चेकोस्लोवाकिया के प्रायः सभी भागों के विमानों की यातायात नियमित रूप से जारी है। कुछ लेखक अभी तातरा में और स्लोवाकिया के दूसरे भागों में घूमना चाहते थे कुछ प्राहा लौट कर घर जाने के लिये उतावले थे। मैं भी इनके साथ तातरा से विमान पर प्राहा लौट आया।

कांग्रेस के समय ही सांस्कृतिक विभाग के मंत्री डा० आसा से भेंट हुई। उन्होंने अनुरोध किया था कि कांग्रेस का कार्यक्रम समाप्त हो जाने पर भी मैं कुछ सप्ताह इस देश में रहूं। दो-तीन सप्ताह और रहने का वचन दिया था। कांग्रेस समाप्त हो चुकी थी। तातरा से लौटने पर सांस्कृतिक विभाग के मि० बोरिस ने कहा,—अब आप हमारे अतिथि हैं। बताइये किन विषयों और दिशाओं में आपकी रुचि है, कम समय में सब कुछ देखना-दिखाना सम्भव नहीं। आपकी रुचि की चीजें ही दिखाने का प्रबन्ध किया जाय। आप दूसरे नगर देखना चाहते हैं अथवा देहात ? संयुक्त कृषि क्षेत्रों का जीवन और व्यवस्था देखना चाहते हैं अथवा कारखानों में मजदूरों का जीवन या यहां के दर्शनीय स्थान ?"

संयुक्त कृषि क्षेत्र और समाजवादी व्यवस्था में कारखानों का ढंग सोवियत

में भी देख चुका था। उत्तर दिया—"कुछ दर्शनीय स्थान देखूंगा और मार्ग में जो कुछ आ जाये।" कम समय में काफी यात्रा करके लौटा था इसलिये दो दिन प्राहा में ही विश्राम किया और नगर में इधर-उधर घूमता रहा।

अनेक बातें दूर-दूर के देशों और नगरों में विस्मयजनक रूप से एक जैसी होती हैं। उदाहरणतः प्राहा के सिरहाने खड़ी पहाड़ी पर बनी दीवार 'स्मीखोव' के विषय में प्रसिद्ध दंतकथा। लखनऊ का बड़ा इमामबाड़ा बनवाने वाले नवाब आसफुद्दौला कर्ण के समान ही दानी प्रसिद्ध हैं। कहावत है, "जिसे न दे मौला, उसे दे आसफुद्दौला।" बड़े इमामबाड़े के विषय में कहानी है कि आसफुद्दौला ने यह इमारत भयंकर अकाल के समय बनवाई थी कि लोग अन्न खरीदने के लिये कुछ पैसा पा सकें। यह भी कहा जाता है कि दुष्काल से पीड़ित बड़े-बड़े सफ़ेद-पोश लोग भेस बदल कर मज़दूरी करने के लिये आते थे। नवाब का हुक्म था कि दिन भर में जितनी इमारत बने, रात में ढहा दी जाये ताकि इमारत पूरी हो जाने पर दुखी लोग बेरोज़गार न हो जायें। स्मीखोव शब्द का अर्थ है भूख की दीवार। दंतकथा है, सम्राट चार्ल्स चौथे ने यह दीवार दुष्काल में पीड़ितों की सहायता करने के लिये बनवाई थी। दीवार दिन भर बनाई जाती थी और रात में गिरा दी जाती थी।

प्राहा को घेरे हरियावल से खूब ढंकी एक पहाड़ी का नाम 'पेतशीन' है। इसी पहाड़ी पर प्राहा रेडियो का प्रसारक स्तम्भ (Broadcasting Column) है और उस के समीप प्राचीन कवि माखा की मूर्ति है। चेकोस्लाव लोग स्वभाव से रसिक हैं। उनमें माखा के प्रेम गीतों का बहुत आदर है। अनेक युवक-युवतियां यहां रविवार के दिन फूल चढ़ाने आते हैं। विशेषतः मधु मास (मई के महीने) में। माखा की मूर्ति पर फूल चढ़ाने का महात्म्य कवि की कला के प्रति आदर के अतिरिक्त कुछ और भी है। वैसा ही महात्म्य जैसा हमारे यहां कार्तिक स्नान का माना जाता है। लोगों को विश्वास है कि माखा को फूल चढ़ाने से वांछित प्रेमी-प्रेमिका का प्रणय प्राप्त होता है अथवा नीरस जीवन में प्रणय का प्रवेश हो सकता है। बात कुछ असम्भव भी नहीं है। जब प्रणय व्यापार की उमंग मन में लिये अल्हड़ युवक-युवतियें पेतशीन की रम्य पहाड़ी पर मिलेंगे तो माखा की कृपा से उनकी कामना पूर्ण होने का अवसर क्यों न होगा?

चेकोस्लोवाकिया की प्रणय कथाओं में शारका का विशेष स्थान है। शारका की स्मृति सौंदर्य का प्रतीक भी मानी जाती है। मूर्तियों के मुख्य संग्रहालय में

और कई स्थानों पर शारका की मूर्तियां हैं । प्राहा के विमान अड्डे से नगर की ओर आते समय एक अड्डे के किनारे शारका का टीला भी दिखाई देता है । एक कीमती सिगरेट का नाम भी शारका है । शारका की प्रणय कथा दुखान्त है । किसी समय एक रानी राज्य करती थी । एक बार दो भाइयों में सम्पत्ति का झगड़ा रानी के सम्मुख न्याय के लिये आया । रानी के न्याय से असंतुष्ट भाई ने क्रोध और घृणा से विरोध किया—एक स्त्री भला क्या न्याय करेगी ?

इस झगड़े ने स्त्री-पुरुषों में युद्ध का रूप ले लिया । पुरुष दल के नेता को वश कर लेना स्त्री दल के लिये सम्भव न था । उस वीर को न लोह-बाण घायल कर सकते थे न काम बाण । कुछ ऐसी ही परिस्थिति रही होगी जैसी देवताओं के विरोध में महर्षि विश्वामित्र के नयी सृष्टि बना लेने का आन्दोलन चला देने पर उपस्थित हो गई थी । तब देवताओं ने मेनका की शरण ली थी । वैसे ही बोहेमिया के अस्त्र स्त्री-समाज ने अपने समाज की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी शारका की शरण ली ।

शारका का जैसा अनोखा सौन्दर्य था वैसा ही कठोर हृदय भी । उसे प्रणय और पुरुष के प्रति पूर्ण विरक्ति थी । शारका का हृदय अपनी जाति की असहाय अवस्था के प्रति पसीज गया । किसी के प्रति भी ममता अनुभव न कर अपने वर्ग के प्रति वह निर्मम न रह सकी । शारका के सुझाव से स्त्रियों ने उसे पुरुष दल के नेता के आने-जाने के मार्ग में एक वृक्ष के तने से जकड़ कर बांध दिया ।

एक अपूर्व सुन्दर कोमलांगी को वृक्ष के तने से बंधा देख कर पुरुष पुंगव ठिठक गया । स्त्री जाति से युद्ध था परन्तु ऐसी भोली सुन्दरी के प्रति क्रूरता वह पुरुष सह न सका और फिर उस भोली की प्रार्थना भरी चितवन ?

"तेरी यह अवस्था क्यों ?" पुरुष ने पूछा । आंखें भय और लाज से झुक गई और होंठों ने उत्तर दिया, "यहां बैठकर तुम्हारा पथ निहारने के दंड में मुझ पर दुष्टा स्त्रियों का अत्याचार है ।"

पुरुष पुंगव का शक्ति का अभिमान जाग उठा । उसने अपना भाला और धनुष एक ओर रख कर शारका के बंधन खोल दिये और उसे अपनी भुजाओं के बंधन में लेना चाहा ।

शारका ने संकोच से सिमिटते हुए इंकार किया—"तुम मुझे प्यार कहां करते हो ?"

पुरुष ने प्यार का विश्वास दिलाया ।

शारका बोली—"कहां, मैं तो तुम्हारे प्यार में पेड़ से बांधी गई। तुम्हें तो मालूम भी न था। प्यार करते हो तो आओ तुम्हें यहां बांध दूं। फिर भी कहोगे कि प्यार करते हो तो मानूंगी।"

पुरुष तो सदा ही स्त्री के हाथों स्वेच्छा से बंधता है। पुरुष को पेड़ से बांध कर शारका ने उस की तुरही उठाई और पूरी शक्ति से बजा दी। स्त्रियों का समीप छिपा हुआ दल तीर, भाले और तलवारें लिये उस पुरुष पर टूट पड़ा। इस प्रकार पुरुषों के नेता की हत्या कर स्त्री जाति ने पुरुष जाति पर विजय प्राप्त कर ली। पौराणिक कथा के सम्बन्ध में तर्क के लिये क्या अवसर? यह ठीक है कि स्त्रियां पुरुषों को निरस्त्र करके ही उन पर विजय प्राप्त करती हैं।

शारका के प्रपंच से स्त्री जाति की विजय तो हो गई परन्तु शारका बेचारी सचमुच ही अपना हृदय उस पुरुष पुंगव को सौंप चुकी थी। वह स्त्री जाति के छलछंद और क्रूरता से खिन्न हो गई। दिन भर उस की याद में रोती बन-बन घूमती रहती। एक दिन प्रणयी के बिना जीवन असह्य समझ कर वह खड्ड किनारे के टीले पर चढ़ गई और वहां से खड्ड में कूद उसने प्राण त्याग दिये।

प्राहा में अंग्रेजी से किसी कदर काम चल भी जाता है। चेकोस्लोवाकिया के दूसरे स्थानों में बिलकुल भी नहीं चल सकता। गुफस्सिन में घूमते समय दुभाषिये की सहायता नितान्त आवश्यक होती है। इन दिनों मिलाना को एक परीक्षा में बैठना था। वह मेरिया को साथ लायी और परिचय करा गई कि गुफस्सिन की यात्रा में मेरा साथ देगी। मेरिया पेंट पहन कर ऐसी चुस्त चाल से चलती थी कि हाथ में टेनिस का बल्ला न होने पर भी जान पड़ता था कि टेनिस का टूर्नामेंट खेलने जा रही है।

हम लोग प्राहा की पत्थर की ऊंची इमारतों से घिरी सड़कें लांघ कर बाहर निकल हरी घास से छाई कछुए की पीठ जैसी पहाड़ियों, खेतों और वृक्षों में पहुंचे ही थे कि मेरिया की ऊंची नाक के नथुने फैलने और कांपने लगे और आंखों में चमक आ गई। बोली—"इस स्वच्छन्द वायु में श्वास लेकर बहुत अच्छा लगता है। मोटर से बल्कि पैदल यात्रा में बहुत आनन्द आता है। मैंने दो हजार मील से अधिक हिचहाइकिंग किया है।"

हिचहाइकिंग योरुप के विद्यार्थियों को अवकाश के समय की यात्रा को कहते हैं। विद्यार्थी एक कम्बल, छोटा पतीला, एक तश्तरी-गिलास और अवसर पर पहनने के लिये एक अच्छा सूट थैले में डाल और थैला पीठ पर बांध कर सड़क

पर निकल पड़ते हैं। साधारणतः पैदल ही चलते हैं परन्तु सड़क पर किसी मोटर लारी या गाड़ी को अपनी गन्तव्य दिशा की ओर जाते देख इशारे से रोक कर अपनी वाक्पटुता से अपने आगामी मार्ग में जहां तक लारी मोटर के रास्ते का साथ हो, चढ़ी भी ले लेते हैं। इस प्रकार विनोद और अपने देश के मुफ-स्सिल भागों के परिचय के साथ उन्हें व्यवहारिक अनुभव और कठिन जीवन सह सकने का अभ्यास भी हो जाता है। लड़के-लड़कियां यात्रा कभी अकेले और कभी एक साथी या साथिन के साथ करते हैं।

मेरिया ने पूछा—"भारत में भी हिचहाइकिंग का रिवाज है ?"

उत्तर दिया—"हमारे यहां कम ही ऐसा रिवाज है। मन में सोचा, लड़के तो कभी यात्रा कर भी लेते हैं लड़की को तो स्कूल भेजते समय भी भले लोग नौकर साथ कर देना उचित समझते हैं।

मैंने भी पूछा—"ऐसी यात्रा में कभी अप्रिय अनुभव नहीं हुआ; विशेषकर सुन्दर लड़की होने के नाते ?"

मेरिया ने मुस्कराकर स्वीकार किया—"प्रायः सुविधा होती है तो कभी आशंका भी हो जाती है। तब अवसर को सम्भालने की सुध रहनी चाहिये। यों तो चाय के लिये पानी उबालने में भी हाथ झुलसने की सम्भावना रहती है।"

कुछ दूर आगे बढ़ कर एक खूब फैली हुई पहाड़ी की ढलवान के समीप गुजरते हुए मेरिया ने बताया—"यह ग्लाइडिंग स्टेशन है। मैं यहां ग्लाइडिंग के लिये कई बार आ चुकी हूं।"

"ग्लाइडिंग !" उसकी ओर देखा। ग्लाइडिंग का अर्थ है बिना इंजन के दूसरे विमान या रबर के रस्से के झटके द्वारा उड़ा दिये जाने वाले छोटे विमान में पांच-छः हजार फुट की ऊंचाई पर आकाश में उड़ना। वायु के प्रवाह से वह कहीं भी जाकर गिर सकता है। पूछा—"तुम्हें डर नहीं लगता ?"

"कुछ भी नहीं" मेरिया बताने लगी, "बड़ा अच्छा लगता है। कई बार तो धरती से छः-सात हजार फुट ऊपर बादलों में घिर कर दिशा ज्ञान भी नहीं रहता। कोई दृश्य नहीं, कोई शब्द नहीं एक निस्सीम शून्य का सन्नाटा…! मेरिया के इस आनन्द का भाग अनुभव कर सकना कठिन था परन्तु मन ही मन उस के साहस पर विस्मय अवश्य कर रहा था। यह भी सोच रहा था कि विमान बिना इंजन का ही सही पर उस का खेल खेल सकना साधारण हैसियत के आदमी के लिये तो सम्भव नहीं। मेरिया ने बताया समाजवादी व्यवस्था से

पूर्व उस का पिता निर्धन किसान था। स्कूल कालिज में शिक्षा पाने के बाद उसने डेढ़ वर्ष से ही क्लर्क की नौकरी आरम्भ की है। उस की स्थिति की लड़की के लिये ऐसे खेल उस समाजवादी समाज में ही सम्भव हो सकते है। ...."यह कोयले की खाने हैं"---मेरिया ने सड़क से दूर दिखाई देती लोहे की शहतीरों पर चलती चर्खियों की ओर सकेत कर कहा, "यहां धरती के नीचे काम करने वाले मजदूरों को खूब अच्छी मजदूरी मिलती है।"

यह तो मैं भी जानता था कि खान में नीचे काम करने वाले मजदूर दो हजार क्राउन से ऊपर माहवार पाते हैं। मेरिया क्लर्क थी तो लगभग हजार ग्यारह सौ ही पाती होगी। मेरिया कहती गई--"यों ही कहते हैं, सब को समान अवसर है। बिलकुल गलत है। मैं यहां धरती के नीचे काम करना चाहती थी लेकिन मुझे काम नहीं दिया कि तुम लड़की हो। लड़कियों को धरती के नीचे का कड़ा काम नहीं दिया जाता। काम तो मुझे करना है। मुझे कड़ा लगेगा, मैं खुद छोड़ दूगी। ऐसा नियम बना देने का क्या मतलब ? मेरिया के सुन्दर चेहरे पर क्रोध और उत्तेजना भी भली लग रही थी।

गाड़ी का ड्राइवर आयु मे प्रौढ़ था। उसने भी मुझसे बात करने का यत्न किया था परन्तु उस के अंग्रेजी न जानने के कारण बात हो न पायी थी। मेरिया को उत्तेजना से बोलते देख उसने प्रश्न किया--"क्यों बात क्या है ? क्यों बिगड़ रही हो ?"

मेरिया ने कोयले की खान में काम न मिल सकने के अन्याय की बात चेक भाषा मे उसे बताई तो दोनों में गरमा-गरमी से सवाल-जवाब होने लगे। इस बार मुझे मेरिया से पूछना पड़ा--"क्यों बात क्या है ?"

मेरिया ने ड्राइवर से गरमा-गरमी का निष्कर्ष अंग्रेजी में यों समझाया--यह बूढ़ा अपनी बासी नैतिकता छांट रहा है। बात यों हुई---ड्राइवर ने कहा--धरती के नीचे खान में लड़कियों को काम न करने देने का नियम ठीक है क्योंकि नीचे गरमी के कारण लोग केवल जांघिया पहन कर काम करते हैं। लड़कियां वहां कैसे काम कर सकती हैं ? मेरिया ने आग्रह किया---क्यों; जैसे मर्द जांघिया पहन कर काम करते हैं, लड़कियां भी जांघिया-बनियान पहन कर काम कर सकती हैं। ड्राइवर बिगड़ उठा--क्या मूर्खता की बात करती हो। लड़कियां बिना कपड़े पहने मर्दों के साथ काम करेंगी तो मर्दों को उत्तेजना अनुभव नहीं होगी ? झगड़े नहीं होंगे ? क्या स्त्रियों के लिये इतने वेतन के

दूसरे काम नहीं हैं ? जिस काम के योग्य हो, करो ! मेरिया ने हठ किया—"इसकी जिम्मेवारी क्या लड़कियों पर है ? बेवकूफ मर्द उत्तेजना अनुभव करते हैं तो लड़कियां क्यों नुकसान उठायें ? यह समाजवाद में अवसर की समानता क्या हुई ? हर बात में मर्द का रोब रहना चाहिये ! यह बिलकुल रूढ़िवादी ढंग है ।

मेरिया को सान्त्वना दी—"निराश होने की कोई बात नहीं है । पुराने संस्कारों से मुक्त होने में समय लगता है । इंगलैंड में तो यह देखा है कि एक ही काम के लिये स्त्रियों और पुरुषों को मजदूरी न्यून और अधिक मिलती है । पुरुष क्लर्क को सौ मिलेगा तो स्त्री क्लर्क को प्रथा की रक्षा के लिये निन्यानवे ही देंगे । बहस में अब ड्राइवर भी सहयोग दे रहा था । ड्राइवर ने बिगड़कर कहा—"स्त्रियां किसी भी नौकरी पर हों उन्हें सौर के लिये तीन मास का सवेतन अवकाश मिल जाता है । पुरुष कहें कि हमें यह अवकाश नहीं मिलता यह अन्याय है ? आखिर हम इस परिणाम पर पहुंचे की स्त्री पुरुष की स्थिति और अधिकार समान होने चाहिये । स्त्री पुरुष समान तो अवश्य हैं परन्तु एक ही जैसे नहीं हैं । वे एक दूसरे से भिन्न हैं परन्तु समान हैं ।

इस छोटे से विवाद से चेकोस्लोवाकिया में स्त्रियों की स्थिति का आभास मिल जाता है । यहां के युवक और युवतियां इंगलैंड और फ्रांस की तरह विवाह करने से कतराते नहीं । इंगलैंड में नवयुवक प्रायः विवाह को अपने कंधों पर अनावश्यक आर्थिक बोझ समझते हैं । अकेले युवक की आमदनी प्रायः अकेले व्यक्ति के लिये ही पर्याप्त होती है । पत्नी के लिये सम्मानित जीवन का आदर्श नौकरी-चाकरी करने की आवश्यकता न होना ही समझा जाता है । युवतियां विवाह से इसलिये कतराती हैं कि विवाहित युवती की अपेक्षा कुमारी को नौकरी सुविधा से मिल सकती है । विवाहित युवती को नौकर रखते समय व्यवसाय के मालिकों के सामने सौर के अवकाश की तनखाह देने की मजबूरी का भय रहता है । चेकोस्लोवाकिया में नारी आर्थिक रूप से न असहाय है न निर्बल ।

यहां युवकों को विवाहित जीवन के लिये प्रोत्साहन देने वाली कई परिस्थितियां हैं । विवाह के समय प्रत्येक दम्पति को राष्ट्र की ओर से उपहार रूप कुछ धन मिलता है और नया घर सजाने बसाने के लिये राष्ट्र से बिना सूद अच्छी खासी रकम उधार मिल जाती है । सन्तान हो जाने पर राज कर से छूट भी मिलती है । संतान के उचित पोषण के लिये बहुत सी सुविधायें मिलती

है परन्तु यहां लोगों में सोवियत की तरह बहुत छोटी, अठारह बीस बरस की आयु में ही विवाह करने की प्रवृत्ति नहीं है। पहले तलाक के विरुद्ध कड़े नियम थे। अब यह कड़ाई हटा दी गई है। तलाक भी होते हैं। तलाक को यहां अच्छा नहीं समझते परन्तु दम्पति के कलहपूर्ण जीवन और गुप्त बुराइयों की अपेक्षा तलाक हो जाना ही बेहतर समझते हैं।

इंगलैंड में तलाक कानूनन निषिद्ध नहीं है परन्तु उसे अनैतिक समझा जाता है। सर्वसाधारण को तलाक से निरुत्साहित करने के लिये तलाक स्वीकार करने के नियम बहुत ही कड़े बनाये गये हैं और तलाक दे सकने की अदालती फ़ीस लगभग दो सौ पौंड (ढाई हजार रुपये से भी अधिक) रख दी गई है। मन फट जाने पर और कोई सूत्र बीच में न रहने पर साथ रहना केवल विरक्ति का ही कारण होगा। इससे कैसा नैतिक प्रयोजन पूरा होता है इस विषय में लंदन में सुना था कि मजदूर वर्ग के लोग तो तलाक देना संभव न समझ आपस में न बनने पर यों ही पृथक रहने और उच्छृंखल जीवन बिताने लगते हैं। उनके लिये दूसरा विवाह करना सम्भव नहीं होता। एक समाचार पत्र में काम करने वाले सफ़ेद पोश मित्र ने अपनी बीती सुनाई कि पहले विवाह का जीवन असह्य हो जाने और दुबारा विवाह कर घर बसाने की इच्छा से उसने किसी प्रकार अदालती खर्च के लिये दो सौ पौंड तो जमाकर लिये परन्तु अदालत में जिस प्रकार की गवाही की आवश्यकता थी, वैसी गवाही पेश कर सकना सम्भव न था। वह अपनी तत्कालीन पत्नी की सामाजिक स्थिति बिगाड़ देना भी निर्दयता समझता था और उससे छुटकारा भी चाहता था। इस अवस्था में पत्नी पर दुश्चरित्रता का आरोप लगाने के बजाये उसने पत्नी को स्वयं अपने ऊपर दुश्चरित्रता का तथा मार-पीट का आरोप लगाने की ही सलाह दी। किराये की गवाही भी पेश कर दी गई। वह भला आदमी सफ़ाई देने के लिये अदालत में पेश नहीं हुआ। इस प्रकार उसे पहले विवाह की भूल से काफी आर्थिक दंड भुगत कर छुटकारा मिला। अस्तु चैकोस्लोवाकिया में इस समय तलाक के मार्ग में विशेष रुकावट नहीं है। विवाह के मार्ग में पर्याप्त मकानों की कमी जरूर रुकावट डाल रही है। यही कठिनाई विशेष कर प्राहा में भी है। बहुत से नवयुवक अच्छा मकान मिलना कठिन देखकर विवाह को टाले जा रहे हैं।

परिणाम में यहां इंगलैंड और फ्रांस की तरह नारी को क्रय और किराये की वस्तु बना सकने वाली परिस्थितियां नहीं हैं इसलिये वेश्यावृत्ति नहीं है।

दोपहर के समय कार्लोविवारी पहुंच गये। मध्य योरुप के प्रसिद्ध स्वास्थ्यप्रद स्थान कार्ल्सबाड को ही चेक में कार्लोविवारी कहते हैं। बस्ती शिमला या मंसूरी के ढंग की है। अंतर यह है कि शिमला, मंसूरी पहाड़ों की पीठ पर है और कार्लोविवारी पहाड़ों की गोद में। सड़कें, दुकानें और इमारतें शिमला की अपेक्षा कहीं साफ और सुन्दर हैं। हम लोगों ने होटल मास्को में भोजन किया। इस होटल के खाना खाने के हाल और विश्राम के लिये बने हाल बम्बई के ताज, कलकत्ता के ग्रांड और दिल्ली के इम्पीरियल से कहीं अधिक शानदार हैं। फर्शों पर सब जगह बहुत कीमती लाल कालीन बिछे हैं और पर्दे भी खूब भारी मोटे मखमल और पल्श के हैं। बीच में फूलों की सजावट और फर्नीचर भी वैसा ही है। यह स्थान युद्ध से पहले संसार के रईसों का क्रीड़ास्थल था। भारत के महाराजा और अमरीका के करोड़पति लोग इन होटलों में ठहरते थे। समाजवादी व्यवस्था हो जाने के बाद से भी होटलों का स्तर कायम रखने का प्रयत्न किया गया है। अब यहां चेकोस्लोवाकिया में निमंत्रित अतिथि और भिन्न-भिन्न श्रमिक संगठनों (ट्रेडयूनियन्स) के लोग ठहरते हैं। ट्रेडयूनियनों के सदस्यों के व्यय का दो तिहाई भाग उन की संस्थायें देती हैं, एक तिहाई वे स्वयं देते हैं। लोग बारी-बारी से यहां आते हैं। बाजारों और सड़कों में खूब भीड़ रहती है।

कार्लोविवारी या कार्ल्सबाड की प्रसिद्धि यहां के सोतों के जल के गुण के लिये है। इस जल का पीना या इस में नहाना कई प्रकार के रोगों का इलाज समझा जाता है। पूरा नगर इन सोतों को केन्द्र बना कर इनके चारों ओर बसा हुआ है। कई सोतों में से अच्छा खासा गरम, भाफ छोड़ता पानी निकलता है। कुछ में से साधारण गुनगुना। सोतों के जल को यों ही बह जाने नहीं दिया जाता। सोतों को घेर कर खूब सुन्दर पक्की इमारतें बनी हुई हैं। बहुत सी इमारतों की छतें मोटे कांच की चद्दरों की बनी हैं। धूप तो छन कर भीतर आ सकती है परन्तु वर्षा नहीं। इन हालों में स्थान-स्थान पर बेंच रखे हुए हैं। सोतों को विशेष सावधानी से जंगलों से घेर दिया गया है। नर्सों की तरह सफ़ेद कपड़े पहने स्त्रियां ड्यूटी पर रहती हैं। वे गिलास भर-भर कर जल चाहने वालों को देती रहती हैं। एक गरम सोते की धार इतने वेग से उठती है कि बीस फुट ऊपर तक चली जाती है। इस सोते या फव्वारे पर कांच का खूब ऊंचा गुम्बद बना हुआ है।

उपचार की शक्ति रखने वाले गरम जल को मोटे-मोटे नलों द्वारा कुछ दूर

बने स्नान-गृहों में ले जाया जाता है। सोते बहुत से हैं। उन के जल के गुण भी भिन्न-भिन्न हैं। लोग डाक्टरों की राय से इस जल का सेवन करते हैं। नगर के बीचोबीच एक छोटी पहाड़ी नदी है जिसके दोनों किनारे पक्के बंधे हुए हैं और दोनों ओर जालीदार जंगला लगा है। जंगले के कारण बच्चों के नदी में गिरने की आशंका नहीं रहती। नदी में कोई कूड़ा नहीं फेंकता। जल इतना स्वच्छ है कि नीचे बंधे फर्श के पत्थर साफ दिखाई देते हैं।

कार्लोविवारी के स्रोतों में औषध का गुण प्रकृति की देन है और इस देन का यथासम्भव लाभ भी उठाया गया है। सोवियत में काले समुद्र के किनारे सोची में मातशेयस्ता नाम के गंधक के सोते हैं। १९५५ में वहां जाने का अवसर मिला था। वहां भी सोते के जल को उपचार के लिये प्रयोग में लाने के लिये बहुत बड़ा हस्पताल बना हुआ है। ऐसे जल के बहुत गुण बखाने जाते हैं। अनेक दुस्साध्य रोगों का उपचार इस जल से हो सकने का विश्वास किया जाता है। यह सब काम समाजवादी रूस और चेकोस्लोवाकिया में राष्ट्रीय नियंत्रण में किये गये हैं। भारत में ऐसे और शायद इस से भी अधिक उपचार शक्ति रखने वाले अनेक स्रोत हैं। नैनीताल में झील के समीप ही एक गंधक मिले जल का सोता है। कांगड़ा जिला में मणीकर्ण नामक स्थान में तो सोतों से इतना गरम जल निकलता है कि उसमें आलू डाल देने से कुछ समय में उबल जाते हैं। यात्री पोटली में चावल बांध कर डाल देते हैं और कुछ समय में भात बन कर पोटली ऊपर आ जाती है। हमारी धर्मभीरु जनता इन स्रोतों को दैवी शक्ति का चमत्कार मान कर केवल इनकी पूजा ही करती है। इन से लाभ उठाने की बात नहीं सोची गयी। मनाली में व्यास कुंड भी गरम जल के सोते का कुंड है। अनेक कोढ़ी इलाज की आशा में इस कुंड में जाकर डुबकियां लगाते है। पुण्य प्राप्ति के लिये तीर्थयात्रा करने वाले लोग भी स्नान के प्रयोजन से उसी कुंड मे डुबकियां लगाते रहते हैं। इन कुंडों की सफ़ाई कभी नहीं की जाती। सम्भव है यहां उपचार की अपेक्षा छूत से रोग ही फैलते हों। *प्रकृति की देन का उचित उपयोग* कर पाने के लिये भी प्रयत्न और सावधानी की आवश्यकता होती ही है।

× × ×

सोची

चेकोस्लोवाकिया में और दूसरे समाजवादी देशों की व्यवस्था में स्वास्थ्य-गृहों (सैनीटोरियम) के प्रबन्ध पर बहुत ध्यान दिया जाता है। पूंजीवादी व्यवस्था में भी अवकाश का समय बिताने के स्थानों में विश्राम और विनोद का प्रबंध साधारण से बेहतर ही होता है। दार्जिलिंग, ऊटी, शिमला और मंसूरी में जो वैभव और विलास दिखाई देता है, साधारण नगरों में नहीं मिलता। पूंजीवादी देशों में अवकाश से विनोद कर सकने का अवसर प्रति हजार में से कुछ ही लोगों को रहता है। समाजवादी देशों में दस मास के श्रम के पश्चात् दो मास का अवकाश सभी को मिलता है। इस समय का पूरा लाभ उठाने के लिये ट्रेड यूनियनों की ओर से भी सहायता मिलती है तो फिर सर्वसाधारण कुछ दिन के लिये शाही ठाठ क्यों न करें? गत वर्ष मास्को में गले का एक छोटा सा आपरेशन कराया था। मेरी पत्नी शरीर में निरंतर बने रहने वाली पीड़ा का भी इलाज कराना चाहती थीं। मास्को के डाक्टरों ने प्रकाशवती को एक मास सोची के स्वास्थ्यगृह में इलाज तजवीज किया था और मुझे भी गले के आपरेशन के पश्चात् एक मास विश्राम के लिये सोची जाने का परामर्श दिया था। सोची कृष्ण सागर के किनारे छोटा सा नगर है। पूरा नगर ही स्वास्थ्य-गृहों से भरा है। समुद्र के किनारे मीलों सीमेंट के घाट बांध दिये गये हैं। साथ-साथ हरी घास और फूलों की क्यारियां हैं। सोची अपेक्षाकृत गरम है इसलिये पूर्वी देशों से लाकर ताड़ के वृक्ष सड़कों के किनारे लगाये गये हैं। कहीं केले के पेड़ भी दिखाई देते हैं। हम लोग केले के पेड़ नित्य देखते हैं इसलिये उन में विशेष सौन्दर्य नहीं जंचता। रूस के लोग केले के पेड़ों को गमलों में तैयार कर विशेष सजावट के लिये उपयोग करते हैं। सोची में समुद्र तट छोटे अलोधर चिकने पत्थरों से पटा है इसलिये यहां का जल गंदला नहीं हो पाता। कुछ स्वास्थ्य-गृह तो रूस के पुराने सामंतों और पूंजीपतियों के मकानों को अदल-बदल कर बनाये गये हैं परन्तु अधिकांश में नये भव्य प्रासाद स्वास्थ्य-गृहों के रूप में खड़े कर दिये गये हैं। खान का काम करने वाले मजदूरों और रेलवे के कर्मचारियों के स्वास्थ्य गृहों के प्रासाद तो देखते ही बनते हैं। प्रवदा समाचार और प्रेस का अपना अलग स्वास्थ्य गृह है। केन्द्रीय सचिवालय के कर्मचारियों के अपने तीन बड़े-बड़े स्वास्थ्य-गृह हैं। प्रकाशवती और मैं इसी सचिवालय के एक स्वास्थ्य गृह

में रहे थे। सचिवालय से सम्बन्धित विभागों के अध्यक्ष, कर्नेल, मेजर, पोलैंड के राजदूत, एक उजबेकिस्तान के मंत्री और एक ताजिकस्तान के मंत्री और सचिवालय में काम करने वाले क्लर्क और टाइपिस्ट लड़कियां स्वस्थ्य-गृह के भोजनालय में एक साथ एक ही जैसा खाना खाते थे। रहने के स्थान की व्यवस्था भी प्रायः एक जैसी थी। यह इसलिये कह रहा हूं कि कर्नेलों, मंत्री महोदयों और क्लर्कों को दिये गये कमरे तो एक ही जैसे थे परन्तु बीचोंबीच अतिथिशाला शेष दुमंजिली कुटियाओं की अपेक्षा बहुत अच्छी थी। इस इमारत की ऊपर की मंजिल के आधे भाग में हम लोग और आधे भाग में पोलैंड के राजदूत के परिवार को टिकाया गया था। नीचे के बड़े-बड़े कमरों में तीन-तीन टाइपिस्ट या क्लर्क लड़कियों को एक-एक कमरे में जगह दे दी गयी थी। इस इमारत के भव्य और सुन्दर होने की एक कहानी है। सुना है कि यह मकान सोवियत के पहले मंत्रिमंडल के सांस्कृतिक विभाग के मंत्री कालिनिन के विश्राम के लिये बनाया गया था। कालिनिन को जब यहां लाया गया तो उसने इस मकान की भव्यता से उद्विग्न होकर इस में रहने से इनकार कर दिया और दूसरी किसी कुटिया में डेरा डाला। मकान वस्तुतः ही पहाड़ी ऊंचाई पर स्वप्न लोक के छोटे महल-सा बना है। मकान से नीचे समुद्र तट तक सरो के ऊंचे वृक्षों के बीच से सीढ़ियां उतरती चली गयी हैं। मुझे भी ऐसा जान पड़ता था कि यह मकान हम लोगों की अपेक्षा नूरजहां या मुमताजमहल के अभिसार का स्थान होता तो सुन्दर काव्य का आधार बन सकता था।

स्वास्थ्य गृह या सैनाटोरियम शब्द विशेष आकर्षक नहीं है। मुझे भुवाली के सैनीटोरियम का कुछ अनुभव था। हमारे यहां स्वास्थ्य-गृह या सैनीटोरियम रोगियों के रहने की जगह या हस्पताल ही समझा जाता है। सोवियत और समाजवादी देशों में स्वास्थ्य-गृह ऐसे हस्पतालों को नहीं कहा जाता। स्वास्थ्य-गृहों में डाक्टर और नर्सें तो पर्याप्त होती हैं परन्तु शैय्यारूढ़ रोगियों का इलाज वहां नहीं किया जाता। यह स्थान श्रम से आ गई थकावट दूर करने और ऐसे रोगों के इलाज के लिये होते हैं जिनके कारण रोगी शैय्यारूढ़ तो न हों पर निर्बल हो गये हों। इलाज अधिकांश में दवाइयों से नहीं, भोजन में परिवर्तन से अथवा प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा किया जाता है। सोची में स्वास्थ्य सुधार का विशेष उपाय समुद्र में तैरना और धूप सेंकना है। कुछ रोगों के लिये गंधक के पानी के चश्मे के जल में भी स्नान कराया जाता है। समुद्र के किनारे सभी

स्वास्थ्य-गृहों की ओर से और साधारण नागरिकों के लिये भी स्नान का प्रबन्ध है। सैकड़ों बेंचें और तख्त पड़े हैं। धूप से बचने के लिये छतरियां लगी रहती हैं। व्यायाम के लिये जिम्नास्टिक का प्रबंध है। कपड़े बदलने के लिये और समुद्र स्नान के पश्चात् नल के पानी से नहा लेने के लिये भी बहुत से कमरे हैं। अधिकांश में पुरुष जांघिये पहले और स्त्रियां चोली और जांघिये पहने एक साथ तैरते, नहाते अथवा नावें खेते रहते हैं। कुछ स्थानों पर पर्दे की आड़ भी कर दी गई है जहां स्त्रियां निश्शंक पूर्णतः सूर्य स्नान करने के लिये लेट कर या बैठ कर ताश खेलती रहती हैं। पुरुष तैरने से थक जाते हैं तो प्रायः सिर पर छत्री की छाया कर कोई पुस्तक पढ़ने लगते हैं। बच्चों की संख्या भी काफी रहती है। बच्चों के शरीर पर हवा भरी पेटियां बांधकर पानी में छोड़ दिया जाता है। पहली बार तो बच्चे भय से खूब चिल्लाते हैं। दूसरे दिन उन्हें समुद्र से बाहर निकालना कठिन हो जाता है।

स्वास्थ्य-गृहों का अपना अनुशासन भी होता है। यहां आते ही प्रत्येक व्यक्ति के शरीर का निरीक्षण किया जाता है। शरीर का तौल-माप करने के साथ ही खून की परीक्षा और एक्स-रे भी किया जाता है। इस निरीक्षण के आधार पर व्यक्ति के भोजन की तालिका निश्चित की जाती है। भोजन में दूध, दही और फलों का प्राचुर्य रहता है। भोजन परोसने वाली लड़कियां इस बात का भी ध्यान रखती हैं कि किसी व्यक्ति की भूख बहुत कम तो नहीं है। वे इस विषय में डाक्टर को सूचना भी देती रहती हैं। इन छोकरियों की इस सतर्कता के कारण मुझे कम परेशानी नहीं उठानी पड़ी।

सोवियत में वस्तुओं के मूल्यों के स्तर से मुझे स्वास्थ्य गृह के भोजन का मूल्य बहुत अधिक जान पड़ा था। आस-पास के लोगों से जिज्ञासा करने पर मालूम हुआ कि स्वास्थ्य गृहों में प्रति व्यक्ति पर होने वाले मूल्य का एक तिहाई ही लोगों को देना पड़ता है। दो तिहाई ट्रेड यूनियनें देती हैं। प्रति वर्ष स्वास्थ्य-गृह में स्थान मिल जाना कठिन होता है। सब लोगों को बारी-बारी से यह अवसर दिया जाता है। डाक्टर की सिफ़ारिश पर विशेष सुविधा भी दी जाती है।

स्वास्थ्य गृह के अनुशासन के अनुसार प्रातः सात से साढ़े आठ बजे के बीच नाश्ता कर लेना आवश्यक होता है। लोग नाश्ते से पहले और पश्चात् समुद्र में तैरते या धूप सेंकते रहते हैं। मध्याह्न भोजन एक से ढाई बजे तक कर लेना आवश्यक होता है। दोपहर में साढ़े चार बजे तक लेट कर विश्राम करना जरूरी

समझा जाता है। इस समय को स्वास्थ्य गृह की भाषा में 'मौन काल' कहा जाता है। इस समय ग्रामोफोन या रेडियो बजाना निषिद्ध रहता है। नौजवानों को यह विश्राम का अनुशासन जरूर खलता है। वे यदि इस समय का उपयोग आस-पास के बन-उपवन के कुंजों में करना चाहें तो सतर्कता से आंख बचाकर निकलना पड़ता है। साढ़े चार-पांच के बीच एक प्याला काफ़ी या चाय बिस्कुट या केक के साथ मिल सकती है। इतने से लोभ के लिये बहुत कम लोग भोजनालय तक आते हैं। कुछ लोग संध्या समय भी समुद्र किनारे जा पहुंचते हैं कुछ घूमने चले जाते हैं। कुछ लोग क्लब में ताश बिलियर्ड खेलते है। संध्या का भोजन सात से साढ़े आठ तक हो जाना चाहिये। रात ग्यारह बजे तक क्लब में नाच-गाना होता है या कोई फिल्म दिखाई जाती है। रात में साढ़े ग्यारह के बाद इधर-उधर घूमते-फिरने पर डाक्टर या नर्स आपत्ति करती हैं। यह कार्य-क्रम सभी स्वास्थ्य गृहों में एक सा ही चलता है। टैनिस, वालीबाल, बैडमिंटन की भी सुविधा रहती है और खेलों में स्वास्थ्य गृहों की आपस में प्रतियोगिता भी होती रहती है। साधारणतः स्वास्थ्य गृह में अठारह दिन रहने का अवसर मिलता है। सोवियत में कृष्ण सागर के किनारे गागरा, सुखूमी आदि कई नगर ऐसे स्वास्थ्य-गृहों से भरे हैं। कुछ स्वास्थ्य-गृह दूसरे पहाड़ी प्रदेशों और स्रोतों के समीप भी हैं। चेकोस्लोवाकिया में भी कार्लोविवारी के अतिरिक्त तातरा और लुहाचेविस्सा में भी कई स्वास्थ्य-गृह हैं।

कार्लोविवारी पहुचने से पहले ही किसी होटल में जगह नहीं रखवा ली थी। पहुंच कर पूछने पर जगह नहीं मिली इसलिये संध्या समय ही तेप्लित्सा के लिये चल देना पड़ा। चले तो सही परन्तु मुख्य राजपथ के चौराहे के समीप पहुंच कर देखा कि सड़क पार नहीं कर सकते। सड़क के दोनों ओर बेहद भीड़ थी और पुलिस ने रस्से बांध कर दायें-बायें से सड़कों से मुख्य सड़क पर यातायात रोक दी थी। भीड़ उत्साह से पागल होकर नारे लगा रही थी, रुमाल हिला रही थी और सब तरफ़ से नीली झंडियां फहराई जा रही थीं। मालूम हुआ कि शांति संदेश की साइकल दौड़मेंप्रतियोगिता भाग लेने में वाले लोग सड़क से गुजरने वाले हैं। यह दौड़ बर्लिन से आरम्भ होकर जर्मनी और चेकोस्लोवाकिया के कई नगरों से गुजर कर पोलैंड की राजधानी वारसा में समाप्त होने को थी। हजारों मीलों का रास्ता था। बहरा कर देने वाला कोलाहल सुन कर हम लोग भी समीप की एक दूकान के चबूतरे पर चढ़ कर देखने लगे। दौड़ लगाने वाले

केवल जांघिये, बनियानें और छोटी गोल टोपी पहने थे। उनके शरीर पसीने से तर थे। बादल और हल्की बूंदाबांदी के कारण मौसम का यह हाल था कि सड़क पर शायद ही कोई स्त्री पुरुष बिना ओवरकोट के होगा। सड़क पार करने के लिये लगभग दो घंटे प्रतीक्षा करनी पड़ी।

इस साइकल दौड़ प्रतियोगिता में भाग लेने के लिये संसार के सभी देशों के नवयुवकों को आमंत्रित किया गया था। योरुप, ऐशिया, अफ्रीका सभी देशों के युवक थे। उनके स्वागत में सभी देशों के झंडों से बाजार सजा हुआ था परन्तु भारतीय कोई न था। दौड़ लगाने वाले नौजवान कुछ तीन-तीन, चार-चार की टोली में निकल रहे थे। एक बार दस-बारह का झुंड भी आया। कोई बेचारे अकेले भी चल रहे थे। सब से आगे दो आदमी मोटर साइकलों पर शांति के बड़े-बड़े नीले झंडे ले कर चल रहे थे। इन के पहुंचने पर साइकल सवारों के लिये सड़कें खाली कर दी जाती थीं। साइकल सवारों के प्रत्येक झुंड के पीछे स्टेशन वैगन के ढंग की मोटरें, सवारों का सामान और छः-छः नई साइकलें लिये चल रही थीं। ऐसी गाड़ियां पच्चीस-तीस के लगभग थीं। किसी भी सवार की साइकिल टूट या बिगड़ जाने पर नयी साइकिल दे दी जाने का और चोट लगने पर दवादारू का भी प्रबंध था। सवारों को दस या बारह घंटे साइकल चलाने की इजाज़त थी। पूर्व निश्चित स्थानों पर पड़ाव डाले जाते थे। वहां उन के लिये सब सुविधाओं का प्रबंध था। प्रत्येक सवार के पड़ाव से चलने और दूसरे पड़ाव पर पहुंचने का समय लिख लिया जाता था। सवार दौड़ पूरी करने में पूर्ण समय कितना लगाते हैं, यही उनकी सफलता की कसौटी है। इस प्रकार की दौड़ें या शारीरिक शक्ति की प्रतियोगिताएं दूसरे देशों में भी होती रहती हैं परन्तु जहां तक सम्भव हो ऐसे अवसरों को शांति की भावना के प्रचार का साधन बना देना यह समाजवादी देशों की इस समय की विशेष प्रवृत्ति है। यह शायद इसलिये कि निर्माण का अवसर पाने के लिये इन्हें शांति की आवश्यकता प्रतिक्षण अनुभव होती रहती हैं।

× × ×

कार्लोविवारी से हम प्रायः पश्चिम की ओर जा रहे थे। यह प्रदेश पहाड़ी है परन्तु भारत के पहाड़ों जैसे पांच सात या नौ-दस हजार फुट ऊंचे पहाड़ तातरा को छोड़ कर यहां नहीं हैं। अपने पहाड़ों की तुलना में उन्हें बड़े-बड़े टीले ही

कहा जायगा। हरियाली खूब थी। बादल छाये हुये थे इसलिये सूर्यास्त का भी पता नहीं चल रहा था। निरंतर झुटपुटा सा बना हुआ था और हम तेज चाल से मीलों पर मील लांघते जा रहे थे। इस प्रदेश में मकानों की बनावट प्राहा और उस के पड़ोस से भिन्न है। ऊपर की मंजिल छत की ओर कुछ सिमटी हुई सी होती है। मालूम हुआ यह जर्मन ढंग के मकान हैं। युद्ध से पहले यहां बहुत से जर्मन रहते थे। कई स्थानों में तो जर्मन लोग सौ में चालीस अथवा सौ में साठ तक थे। यह जर्मन परिवार प्राय: डेढ़ सौ वर्ष पूर्व आकर यहां बसे थे और यह भाग जर्मन साम्राज्य का ही अंग बन गया था। प्रथम युद्ध में जर्मनी की पराजय के पश्चात् यह भाग जर्मन साम्राज्य से स्वतंत्र कर चेकोस्लोवाकिया को सौंप दिये गये थे। द्वितीय युद्ध से पहले जब नाज़ीवाद के प्रभाव में जर्मनी संसार के आधिपत्य का स्वप्न देखने लगा था इस प्रदेश के जर्मन कट्टर नाज़ी बन बैठे और उन्होंने चेकोस्लोवाकिया के प्रदेशों को जर्मनी द्वारा समेट लेने में सहयोग दिया था। चेकोस्लोवाकिया के नाजी दमन से मुक्त होने पर यहां की सब जर्मन आबादी को निकाल दिया गया है। केवल उंगलियों पर गिने जाने योग्य ऐसे जर्मन लोग ही रह गये हैं जिन्होंने निश्चित रूप से नाज़ीवाद से सहयोग नहीं किया था और जिन लोगों ने चेक लोगों से विवाह आदि करके चेक राष्ट्रीयता स्वीकार कर ली है। जर्मनों को निकाल बाहर करने का प्रभाव इस प्रदेश की आर्थिक स्थित पर अच्छा नहीं पड़ा है।

मार्ग में कई छोटे-छोटे कस्बों में से गुजरे, मोस्त तो अच्छा खासा नगर ही है। पत्थर के भव्य मकान, प्रशस्त चौक, सड़कें बस और ट्राम दोनों मौजूद परन्तु नागरिकों की संख्या बहुत कम। प्राहा में तो निवास स्थान की समस्या अभी तक विकट है और यहां जान पड़ता है रहने वाले नहीं हैं। तेप्लित्सा में भी कुछ ऐसी ही अवस्था है। समाजवादी शासन से पूर्व यहां के जर्मन ड्यूक का महल अब संग्रहालय और जन-साधारण के क्लब का काम दे रहा है। कई बहुत बड़े-बड़े मकानों और बागों में भी सर्व-साधारण के लिये संगीत और जलपान का प्रबंध कर दिया गया है। रात हम लोग तेप्लित्सा के एक होटल में ठहरे। तेप्लित्सा को चेकोस्लोवाकिया के अच्छे नगरों में नहीं गिना जा सकता परन्तु होटल सुविधाजनक और अच्छा था। नगर में सिनेमा के अतिरिक्त एक छोटी रंगशाला भी मौजूद थी।

दूसरे दिन सुबह मोस्त के समीप बने स्तालिन कारखाने के समीप से गुजरे।

स्तालिन कारखाना कई वर्ग मील में फैला हुआ है । यह कारखाना हमारे लिये अच्छा उदाहरण हो सकता है । चेकोस्लोवाकिया में अपना पैट्रोल नहीं है परन्तु घटिया किस्म का कोयला पर्याप्त है । यहां कोयले से पैट्रोल और पैट्रोल की सफाई करते समय प्राप्त पदार्थों से बन सकने वाली अनेक वस्तुयें बनती है । इन रासायनिक क्रियाओं से बहुत बड़े परिमाण में गैस उत्पन्न होती है । इस गैस को वातावरण को विशक्त करने के लिये छोड़ नहीं दिया जाता बल्कि बहुत बड़े-बड़े नलों द्वारा प्राहा आदि नगरों में पहुंचा दिया जाता है । वहां यह गैस यह ईंधन का काम देती है । हमारे देश में ईंधन एक बड़ी समस्या है । नगरों को ईंधन देने के लिये जंगल समाप्त हुए चले जा रहे है । गावों में मुख्य ईंधन है, उपले । गांवों का अधिकांश गोबर जला दिये जाने से खेती के लिए खाद कहां से मिले ? मुझे याद है नालन्दा के समीप एक गांव में बच्चों को ईंधन के लिये वृक्षों के नीचे तनों से छाल के छोटे-छोटे टुकड़े नोचते देखा था । घोंसले बनाने लायक तिनके भी वे ललचा कर उठा लेते थे । जिन्हें ईंधन इतना दुर्लभ है, गुजारा क्या होगा ?

यहां आने का प्रयोजन कालदूम अर्थात् संयुक्त घर को देखना था । चेकोस्लोवाकिया में निवास स्थान की समस्या हल करने और मजदूरों को सुविधा और स्वास्थ्य के साधन देने के लिये औद्योगिक स्थानों में बड़े-बड़े संयुक्तघर बनाये गये हैं । मॉस्त के समीप लित्विनोव में कालदूम की इमारत ग्यारह मंजिल की है । इस एक इमारत में चार सौ छोटे-बड़े परिवार रहते हैं । छोटा-मोटा गांव ही समझिये ! नीचे पहले फर्श पर भोजन का साझा प्रबन्ध है । बहुत बड़ी भोजनशाला है । भोजनशाला की एक ओर की पूरी दीवार कांच की है और वहां से पहाड़ों में फैली घाटी का बहुत मनोरम दृश्य दिखाई देता रहता है । खाना कई प्रकार का तैयार रहता है । व्यक्ति अपनी मनपसंद वस्तु चुन लेते हैं । भोजनशाला में गाने-बजाने और नाच का भी प्रबंध है ।

कालदूम में परिवारों के आदमियों के विचार से तीन तरह के फ्लैट हैं । कुछ फ्लैट दो बड़े कमरों और एक छोटे कमरे के हैं, कुछ दो कमरों के और कुछ केवल एक कमरे के । रसोई, गुसलखाने सब तरह के फ्लैट के साथ अलग-अलग हैं । लोग चाहें तो अपना खाना स्वयं बना सकते हैं चाहे नीचे भोजनशाला से ले सकते हैं । एक कमरे के फ्लैट के साथ रसोई और गुसलखाना एक आलमारी के आकार के ही थे । प्रत्येक रसोई में गैस और बिजली के चूल्हे मौजूद

थे। फर्नीचर काफ़ी अच्छे ढंग का था। फर्नीचर किरायेदार को अपना ही लाना होता है। लोग स्वयं प्रायः चाय काफ़ी या आमलेट ही बनाते हैं, भोजन नीचे से लाकर या वहां जाकर ले लेते है। निचली मंजिल में एक सभाभवन, संगीत का कमरा, एक छोटा सिनेमा, डाक्टर का कमरा बच्चों के स्कूल छोटे बच्चों के लिये पलना मौजूद है। उस के साथ ही कपड़ा सीने, धोने, सुखाने की मशीनें और इस्त्री करने का प्रबंध है। सुविधायें सब हैं। प्रत्येक फ्लैट के साथ छोटा बरामदा या छज्जा भी है। कालद्रूम के चारों ओर खूब बड़ा बाग और उपवन भी है।

इतनी सुविधायें सभी लोगों को पहुंचाने के लिये शायद संयुक्त व्यवस्था ही सम्भव है। वर्ना एक मजदूर के लिये मकान के चारों ओर बाग-बगीचा मकान में ही नृत्य और संगीत, बच्चों के लिये स्कूल, डाक्टर, डाकघर, कपड़े धोने का भी प्रबन्ध मामूली बात नहीं है। यह सब होते हुये भी मुझे लगा कि व्यक्ति के लिये एकान्त की भी आवश्यकता होती है जब वह अपने परिवार के अतिरिक्त दूसरे की उपस्थिति नहीं चाहता। सब आराम होते हुए भी कभी एकान्त की कमी क्या इन लोगों को खटकती न होगी। कालद्रूम के निवासी एक प्रौढ़ से यह प्रश्न पूछ ही लिया। उसने उत्तर दिया—"अपने कमरे या छज्जे में बैठ जाओ तो एकान्त ही है। आवश्यक सुविधायें न हों तो एकान्त से क्या बनेगा ?" दूसरी बात—पृथ्वी से ऊपर ग्यारहवीं मंजिल में रहने का विचार भी मुझे ऐसा लगा मानों पृथ्वी से सम्बंध टूट जाय। परन्तु प्रत्येक वस्तु का मूल्य किसी न किसी रूप में चुकाना ही पड़ता है।

खाना कालद्रूम की भोजनशाला में ही खाया। भोजन स्वास्थ्य के विचार से अच्छा और मात्रा में पर्याप्त था। सफाई और रंग-ढंग प्राहा के बड़े होटलों जैसा न होने पर भी निम्न वर्ग के होटलों से बहुत अच्छा था। लंदन के ए० बी० सी० रेस्टोरां के मुकाबिले तो उसे शानदार ही कहा जायगा।

●

जिप्सी

तेप्लित्सा और मोस्त की ओर आते समय कार्य-क्रम में बोरिस्लाव भी सम्मिलित कर लिया था। यह मिलाना का सुझाव था। जब बोहेमिया के भीतरी

प्रदेश में जाने की बात थी तभी मिलाना ने आग्रह किया था कि उस ओर जाने पर बोरिस्लाव में जिप्सी बालकों के स्कूल में अवश्य जायेंगे। मिलाना को जिप्सी लोगों के प्रति बहुत ही सहानुभूति है। उन लोगों की बातें, उन के गुण, स्वभाव की विवेचना वह घंटों कर सकती है जिप्सी लोगों का जिक्र करते समय उस की आंखें ऐसे चमकने लगती हैं मानों किसी सगे सम्बंधी की चर्चा कर रही हो। उन की यह सहानुभूति चेकोस्लोवाकिया के जिप्सियों तक ही सीमित नहीं है। किसी भी देश के जिप्सियों के बारे में बात कीजिये वह मनोयोग से सुनेगी। एस्प्लेनेड होटल में मैक्सिको का पत्रकार रोद्रिगे आन्तोनियो भी ठहरा हुआ था। वह उससे मैक्सिको के जिप्सियों के सम्बंध में ही कितने समय तक बात करती रहती थी और अपनी कापी में नोट लेती रहती थी। अवसरवश वह साथ नहीं आ सकी थी परन्तु उसने अपने स्नेह का संदेश जिप्सी स्कूल के कार्यकर्ताओं और बच्चों तक पहुंचा देने का विशेष आग्रह किया था।

जिप्सी बालकों का स्कूल मुख्य राजपथ पर नहीं भीतर देहात में है। कोई बहुत प्रसिद्ध स्थान भी नहीं है, मेरिया को जिप्सियों से कोई विशेष लगाव न था, न उसे स्कूल के विषय में कुछ मालूम था इसलिये जगह पूछ कर ढूंढ़ने में काफ़ी समय लगा। इस खोज में यह तो पता चल गया कि यहां के बीहड़ देहात में भी सीमेंट या तारकोल की सड़कें न सही परन्तु पक्के रास्ते सब जगह बना दिये गये हैं और बिजली भी प्राप्य है। आखिर स्कूल मिल गया। किसी बड़े जमीदार की पुरानी हवेली में जिप्सी बालकों के लिये स्कूल बना दिया गया है।

मेरे मन में कौतूहल था कि जब यहां कोई जातिभेद और श्रेणी भेद नहीं है तो जिप्सी बालकों—लड़के-लड़कियों के लिये पृथक स्कूल क्यों बना गया है? स्कूल में प्रवेश कर मिलाना का स्नेह संदेश देने पर पता लगा कि मिलाना प्रायः वर्ष भर तक इस स्कूल में पढ़ाने का काम कर गई है। यहां वह जिप्सी भाषा सीखती थी, जिप्सियों के इतिहास की खोज करती थी और बच्चों को पढ़ाती भी थी। उस का नाम सुन कर स्कूल के अध्यापकों और बड़े बच्चों की आंखों में स्नेह स्मृति चमक उठी। जिप्सी बालकों के लिये साधारण से पृथक स्कूल बनाने के सम्बंध में मेरी जिज्ञासा का उत्तर मिला कि इन बच्चों में शिक्षा के प्रति रुचि उत्पन्न करने और उनमें सामाजिक संयम की मनोवृत्ति उत्पन्न करने के लिये असाधारण परीश्रम की आवश्यकता होती है। जिप्सी लोग अनेक पीढ़ियों

से जरायम पेशा रहे हैं। उन की नैतिक धारणायें ही पृथक हैं। किसी जगह बस कर नियमित जीवन बिताना वे अपनी परम्परा के विरुद्ध समझते हैं। बहुत से जिप्सी घराने तो अब रस-बस गये हैं। उन के बालकों के लिये पृथक स्कूलों की आवश्यकता नहीं परन्तु जो जिप्सी अपनी परम्परागत जरायम पेशा प्रवृत्तियों के प्रति आग्रह रखते हैं, अपनी संतान को स्कूलों में भेजने का विरोध करते हैं या ऐसे बच्चे जो साधारण स्कूलों से भाग जाते हैं उन्हीं को यहां लाया जाता है।

इस स्कूल को एक प्रकार से जिप्सी बच्चों को जेल ही समझना चाहिये परन्तु कार्यकर्ताओं की सावधानी के अतिरिक्त जेल का और कोई लक्षण दीवारें या जंगले यहां दिखाई नहीं देते। लड़के और लड़कियां प्रायः बराबर संख्या में हैं पढ़ाई लिखाई एक साथ होती है परन्तु उन के सोने का प्रबंध अलग-अलग है। इन बच्चों को यहां पांच साल या उस से ऊपर आयु में लाया जाता है और सोलह सत्रह की आयु तक उन के यहां रहने की व्यवस्था है। उन के स्वभाव में पर्याप्त परिवर्तन आ जाने पर वे किसी भी समय साधारण स्कूलों में भेज दिये जाते हैं। बच्चों को साधारण स्कूली शिक्षा तो दी ही जाती है परन्तु अधिक ध्यान उनमें सामाजिक संयम की प्रवृत्ति जगाने के लिये दिया जाता है, विशेष कर सफाई स्नान आदि की ओर। जिप्सी लोग स्वभाव से नृत्य-संगीत प्रिय होते हैं। नाच-गा कर मांगना भी उन की परम्परा में सम्मिलित है। इस स्कूल में उन्हें नृत्य-गान की समुचित शिक्षा भी दी जाती है।

मैंने दो-तीन गाने सुने और लड़के लड़कियों ने नाच कर भी दिखाया। मेरे कहने से लड़कों ने मेरे सामने आपस में जिप्सी भाषा में बातचीत भी की। मैं उन की भाषा की शैली को समझना चाहता था। मिलाना ने जिप्सी लोगों की बस्तियों में रहकर उन की भाषा का अध्ययन किया है। उस का कहना है और स्कूल के डायरेक्टर व्लादिस्लाव खरीश का भी मत है कि जिप्सी लोग भारत से योरुप में पहुंचे हैं और उन की भाषा का आधार मुख्यतः हिन्दी और उत्तरी भारत की भाषायें हैं।

जिप्सियों के शुद्ध योरुपियन या आर्य न होने अथवा एशियाई होने के कारण नाज़ी लोगों को इनके प्रति बहुत घृणा थी। नाज़ी जिप्सियों की जाति का बीज नाश कर देना चाहते थे। चेकोस्लोवाकिया में नाज़ी शासन के समय जिप्सियों को गिरफ्तार कर जेल कैम्पों में बंद कर दिया जाता था। इन कैम्पों में उन्हें समाप्त कर देने के कई तरीके थे। मुख्य तरीका था, उन्हें विषैली गैस द्वारा

गार कर भट्ठियों में जला डालना । नाजी शासन काल में चेकोस्लोवाकिया में छः लाख जिप्सियों के समाप्त कर दिये जाने की बात कही जाती है इसलिये बहुत से जिप्सी भाग कर रूस और दक्षिण की ओर चले गये थे ।

भारत से योरुप तक चलते-चलते जिप्सियों ने अनेक भाषाओं के शब्द अपना लिये हैं और उन की अपनी पृथक भाषा बन गई है । योरुप के सभी देशों में जिप्सी बसे हुए हैं । इन देशों के जिप्सियों की भाषाओं में भी कुछ भेद आ गया है परन्तु मूलतः उन की भाषा एक है और यत्न करने पर वे एक दूसरे की बात समझ ही लेते हैं ।

जिप्सियों को मूलतः भारत से आया और उन की भाषा का मूल आधार हिन्दी बताये जाने पर मुझे विस्मित होते देख कर मिलाना ने कुछ जिप्सी गीत लिखकर दिये और उन के शब्दों के हिन्दी से साम्य की ओर मेरा ध्यान दिलाया । उदाहरणतः—

मीरो कालो यीलो ... ... मेरा काला × दिल
आंद्रे मांदे रोवेल ... ... अंदर में रोवे
सोस्क ओ गोरी मानुष ... ... क्यों रे गोरे मानु
मांजे पातिव न देल ... ... मुझे पत-आदर न दे
की न जानाव ... ... कि नहीं जानूं

*   *

सोस्के पातिव न देल ... ... क्यों आदर नहीं दे
सोस्के सोम रोम कालो ... ... क्यों हैं (अस्मि) रोम काले
सोस्के सेम छिंगेदी ... ... क्यों हूं छिन्न-छिन्न-चीथड़े
सोस्के सोम वोखालो ... ... क्यों हूं भूखा
की न जानाव ... ... कि न जानूं

*   *

मीरो खेड़ १ नाने मान ... ... मेरा घर नहीं अपना
मीरो थाम नाने मान ... ... मेरा स्थान (देश) नहीं अपना
को साम आमेव रोमा ... ... कौन हैं हम जिप्सी ?

×—जिप्सी भाषा में काला शब्द सुन्दर, कोमल और रहस्यमयता का द्योतक है ।

१ खेड़—खेड़ा, घर, गांव (पंजाबी)

उ खोतार १ अविलाम … … … … और कहां से आये हैं
की न जानाव … … … … कि न जानूं

एक जिप्सी लोरी देखिये :—

सोविन छावे २ सोविन … … … … सोजा छेले सोजा
याय, ३ चाते खाम मा मांगिन … … … … ओह बस खाना न मांग
याय, वो तुमरी फूरी दाय … … … … ओह वो तेरी बूढ़ीधाय (मां)
आंद्रेदि कालि फूव … … … … अंदर है काली भूमि के।
एहास मान दादोरो … … … … था मेरा एक बाप
बारो ना लाछोरो … … … … बड़ा ही भला छैला
आकोर हस लाछोरो … … … … बस, तभी था भला
कान हस मातोरो … … … … जब था मत्त-मदमस्त

नाजी शासन में जिप्सियों की कैसी अवस्था थी, एक गीत से इस का भी आभास मिल सकता है—

आंद्रेदा लागेरिस याग … … … … अंदर जेल ४ के हो
फारी बूती केरेन … … … … (जिप्सी) भारी मशक्कत करते
फारी बूती याग … … … … भारी मशक्कत, हां हां
मेग मारिबेन खुदेन … … … … फिर भी मार ही मिलती
मा मारेन मा ५ मारेन या। … … … … न मार न मार रे !
वो माग६ मुर्दारेना … … … … और मुझे मुर्दा न कर दे।
हिन मान खेड़े छावे याय … … … … हैं मेरे (भी) घर बच्चे रे।
कोनेन लिकेरे ना … … … … कौन उन्हें पालेगा

बदले हुए समय का प्रतीक एक जिप्सी गीत इस प्रकार है :—

याय छवाले रोमाले … … … … रे जिप्सी नाच
खेलास थे७ गिलवास … … … … खेल और गा
ईमान हिन आमेन खेड़ा … … … … अब तो हैं अपने घर

(१) खोतार—कोथाय, कहां से (बंगला) (२) छावे—छेले, बच्चा (बंगला) (३) याय—ओह, हो हो ! (४) जेल—कनसेंट्रेशन कैम्प।
(५) मा—नहीं (संस्कृत) (६) माग्—मुझे (संस्कृत) (७) थे—ते, और (पंजाबी)।

धोखाले ना फिरास	... ...	भूखे नहीं फिरना
हिन आयेंग बूति	... ...	है अपना काम
छाको रोम शाय केरले	.. ..	सब जिप्सी चाहें (काम) करें
वाज ए वूति लेवे	.. ..	क्योंकि काम का पैसा है।
थे और पानव खुदेल	. . ..	और आदर मिलना है।

* *

अधिकांश जिप्सियों ने स्थायी जीवन अपना लिया है। ऐसे युवक युवतियां कारखानों वगैरा में काम करते हैं। इन लोगों पर अब कोई सामाजिक प्रतिबंध नहीं है। शेष चेकोस्लावाक लोगों से इनके शादी-ब्याह प्रायः नहीं होते परन्तु हो जाना बहुत विस्मय की बात भी न होगी। मिलाना को जिप्सियों के प्रति असीम अनुराग प्रकट करते देख एक दिन परिहास में कह ही डाला—"जिप्सियों के प्रति इतना अनुराग है? क्या किसी जिप्सी से विवाह कर लेना असम्भव होगा?" मिलाना ने आशंका में सिहरने का नाट्य कर कहा—"असम्भव तो क्या है, पर न बाबा! जिप्सी का स्वभाव शंकालु और ईर्षालु होता है। गले पर छुरी फेर देने में भी संकोच नहीं करता। वह पत्नी को अपनी सम्पत्ति ही समझता है।" जिप्सियों की यह धारणा जान कर मुझसे उन की परम्परा का भारत से सम्बंध होने का एक और प्रमाण मिल गया। इस स्कूल के कार्यकर्ताओं को जिप्सियों के इतिहास और सामाजिक जीवन के सम्बंध में खोज की इतनी रुचि है कि वे इस सम्बंध में भारत से साहित्य पाने की उत्कट प्रतीक्षा में हैं।

सांझ पड़ते याब्लोनेत्स पहुंचे। पहाड़ियों की गोद में याब्लोनेत्स बहुत सुन्दर स्थान है। पत्थर की हवेलियां नगर के खूब पुराने होने की गवाही देती हैं। योब्लोनेत्स बड़ा नगर नहीं है इसलिये होटल भी बहुत शानदार नहीं है। कम से कम यात्रियों का प्रबंध करने वाली एजेंसी ने हमारे लिये सब से अच्छे होटल में प्रबंध न कर जहां जगह मिली कमरे ले लिये थे। इस होटल का जीर्णोद्धार हो रहा था। इस होटल की विशेष चर्चा के लिये कारण हैं। अभी कुछ दिन पूर्व दिल्ली में एक मित्र के यहां एक सम्पन्न ठेकेदार साहब से भेंट हुई थी। यह सज्जन इसी वर्ष सपत्नीक योरप गये थे और चेकोस्लोवाकिया भी गये थे। अपने कटु अनुभव सुनाते हुए ठेकेदार साहब ने कहा कि चेकोस्लोवाकिया में जो लोग अतिथि बन कर जाते हैं वे वास्तविकता नहीं जान पाते।

ऐसे लोगों को सब से शानदार चुने हुए होटलों में स्थान दिया जाता है, जहां खाना-पीना बहुत ऊंचे दर्जे का रहता है। शेष होटलों और खान-पान की जगहों की अवस्था बहुत दयनीय है। इस होटल में साज-सज्जा तो बहुत ऊंचे दर्जे की नहीं थी परन्तु भोजन में किसी प्रकार की दरिद्रता दिखाई नहीं दी। दूसरे लोग भी सामने बैठे खा-पी रहे थे। गरम और ठंडे पानी का प्रबंध भी अच्छा था। यह होटल तो कम से कम विदेशी अतिथियों के लिये नहीं ही था। मेरिया हमारा प्रबंध यहां किये जाने से बहुत असंतुष्ट थी। एक बार दूसरी जगह खोजने का भी प्रस्ताव किया परन्तु मैं इस तरह के होटल का भी अनुभव चाहता था।

रात के भोजन के पश्चात् हम लोग दस साढ़े दस बजे होटल में अपने कमरों में जा चुके थे। कमरों के बीच की वीथिका से मेरिया के परेशानी में बोलने का स्वर दो-तीन बार सुनाई दिया। खोल कर देखा तो मेरिया बाहर ही खड़ी थी और बहुत नाराज़ थी। पूछने पर मेरिया ने संकोच से बताया कि उस के बिस्तर में एक खटमल दिखाई दिया है। ऐसे बिस्तर और कमरे में वह कैसे सो सकती है ? बात इतनी बढ़ी कि मैनेजर को स्वयं आना पड़ा। मेरिया ने बिस्तर में पाये गये कीट को एक गिलास के नीचे गिरफ्तार करके रखा था। कीट की परीक्षा हुई। मेरिया कह रही थी यह खटमल है। मैनेजर ने कहा—यह खटमल नहीं है। खटमल इस होटल में हो ही नहीं सकता। तुम पिछवाड़े की खिड़की खुली छोड़ गई थी। वर्षा के समय उड़ने वाला एक कीड़ा खिड़की से भीतर आ गया है। मेरिया ने शायद खटमल कभी देखा ही नहीं था। सुना था कि खटमल रोग उत्पन्न कर देने वाला भयंकर कीड़ा होता है जो गन्दगी के कारण खाट में हो सकता है। मेरिया झेंपी तो परन्तु उसने जिद्द करके बिस्तर बदलवा ही लिया। अपने देश के साधारण होटलों में तो शायद ही कोई होटलवाला खटमल की उपस्थिति से इनकार कर सके।

यहां का मुख्य व्यवसाय भी सुन्दर है अर्थात् गहने बनाना। गहने अधिकांश में नकली अर्थात् गिलट और कांच के ही बनते हैं परन्तु कारीगरी बहुत ऊंचे दर्जे की है। गहने बनाने के व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया है। गहने प्रायः ही विदेशों में भेजे जाते हैं और सम्पूर्ण विदेशी व्यापार राष्ट्रीय नियंत्रण में है। गहने विदेश भेजने वाली संस्था का संग्रहालय देखने गये। यहां प्रत्येक देश की रुचि और रिवाज के अनुसार पृथक आलमारियों में गहनों के नमूने रखे

हुए हैं। पश्चिम योरुप अर्थात् फ्रांस-इंगलैंड अमेरिका के फैशन की बालियां, चूड़ियां और ब्रोच अंगूठी आदि एक ओर है। पूर्वी योरुप की रुचि और रिवाज के दूसरी तरफ। दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका, मलाया जावा-हिंदचीन का विभाग अलग और भारत का विभाग अलग। भारतीय विभाग में तामिलनाद प्रदेश में पहने जाने वाले मोती और हीरे के हलके गहने, राजस्थान और पंजाब में पहने जाने वाले भारी जड़ाऊ गहने यहां तक कि भीटियों के शौक के मनके और नाक में पहनने के बुलाक सभी कुछ मौजूद थे। प्रत्येक विभाग में कई-कई सौ नमूने मौजूद थे।

दूसरे दिन जेवर बनने के कारखाने में भी गये। कारखाने में आकृतियां और नमूने बनाने वाले विभाग अलग थे। काम सब मशीनों से होता है। मजदूरी या वेतन नौसिखियों का आठ-सौ क्राउन से लेकर चतुर लोगों का दो-ढाई हजार क्राउन तक चला जाता है। एक विभाग में असली सोने और रत्नों का काम भी हो रहा था। यह माल खूब बड़ी-बड़ी तिजोरियों में सुरक्षित रहता है। दूसरे दिन सुबह स्थलनीक की ओर जाते हुए कुछ गांवों के बीच से गुजर कर पहाड़ी घाटी में नदी की भांति लम्बी फैली हुई झील के किनारे-किनारे सामन्तकाल का एक प्राचीन प्रासाद देखने गये। प्रासाद पहाड़ी ऊंची पीठ पर बना है। पुरानी इमारत तो भव्य है ही। पहाड़ी का बहुत सा भाग चौरस कर फूल-फुल-वारी भी लगाई गई थी। हम लोग प्रासाद के हाल जैसे बड़े-बड़े कमरों में बनी बड़ी आदमकद अंगीठियों और फुलवारी को देखकर बात कर रहे थे कि अब बिजली नहीं थी। वर्ष में लगभग आठ मास इन कमरों को गरम रखने के लिये कितने ईंधन की आवश्यकता होती होगी? इस समय तो नल से यथेष्ट पानी चढ़ आता है परन्तु जब नल का प्रयोग आरम्भ नहीं हुआ था महाराज और फुलवाड़ी के लिये आवश्यक जल कितने लोगों की पीठों और कांधों पर आता होगा? महाराज का यह वैभव कितने भूख से पेट दबाये किसानों के श्रम का भाग ले लेकर इकट्ठा किया गया होगा? मनुष्य भूख से व्याकुल हुए बिना दूसरे के लिये ऐसी कठिन सेवा करना क्यों स्वीकार करेगा? महाराज पक्षियों के परों के नीचे से पर नोच कर भरे हुए रेशमी गद्दों पर विश्राम करते थे, परन्तु यह तभी सम्भव था जब उन की प्रजा के हजारों लोगों को फूस की चटाई भी प्राप्त न हो। मेरिया पुस्तकों के ज्ञान के आधार पर बता रही थी कि सामन्त लोगों की जागीरें मीलों लम्बी-चौड़ी होती थीं। उन के लिये भव्य प्रासाद बनाने

वाली प्रजा कच्ची झोपड़ियों में रह कर उन के लिये भव्य प्रासाद प्रस्तुत करती थी। मैं स्मृति में देख रहा था कि जयपुर के पुराने किले आमेर की ऊंची मंजिल पर खड़ा चारों ओर देख रहा हूं। नया बना जयपुर पहाड़ियों की ओट में है। परन्तु जब यह किला और प्रासाद बने थे तब तो मीलों दूर तक एक भी पक्का मकान यहां दिखाई न दे सकता होगा। लाखों प्रजा के श्रम का फल संचित होकर किले के भीतर संगमरमर के दालान, बारहदरियां और बारह रानियों के रहने के लिये अलग-अलग स्थान बनाने में लगाया जाता रहा। तभी यह चमत्कार प्रासाद बन सका। मुझे ऐसा लगा कि इतिहास सभी जगह एक ही मार्ग पर चला है। मानव की संस्कृति भी एक ही तरह आगे बढ़ी है। उस समय की नैतिक धारणायें भी ऐसी थीं कि इस अन्याय को भगवान द्वारा स्वीकृत व्यवस्था में प्रजा का स्वामी-भक्ति का गुण कहा जाता था। आज मनुष्य मात्र को समान समझना ही भगवान का न्याय माना जाता है।

प्रासाद से जल्दी ही लौटना था क्योंकि दोपहर का भोजन म्यल्नीक में सम्राट चार्ल्स के महल में बनी मधुशाला में खाकर प्राहा लौटना चाहते थे। संध्या तक लौट जाना आवश्यक था क्योंकि सोलह की प्रातः ही मेरे लिये बर्लिन जाने वाले विमान में जगह सुरक्षित करवा दी गई थी।

× × ×

गोथवाल्डोव

चेकोस्लोवाकिया के अतिथियों से अनुमति लेकर बीच में सोलह दिन के लिये पूर्वी जर्मनी और रूमानिया का भी चक्कर लगा लिया। यहां चेकोस्लोवाकिया का प्रसंग पूरा कर लूं। जर्मनी और रूमानिया की बात तदनन्तर कहूंगा। बुखारेस्ट से प्राहा लौटने पर तीन दिन बिलकुल खाली सामने आ गये। चेकोस्लोवाकिया के मन्त्रालय के मि० मौरिस ने कहा, समय है एक चक्कर मोराविया का भी हो जाय। दूसरे दिन दोपहर बाद विमान से गोथवाल्डोव चला गया। इस बार दूसरी ही लड़की दुभाषिये के तौर पर साथ थी।

गोथवाल्डोव अपने ढंग का एक ही नगर या कस्बा देखा है। नगर या कस्बा छोटी पहाड़ियों की चढ़ाइयों और ढलवानों के बीच अंजली में बसा है।

जनसंख्या केवल सत्तर-अस्सी हजार है परन्तु होटल की इमारत ग्यारह मंजिल है और उस के सामने ही 'स्विन' के दफ्तर की इमारत अठारह मंजिल ऊंची है। छः से आठ मंजिल तक की तो कई इमारतें आस-पास ही दिखाई देती हैं। रास्ते और गलियां खूब चौड़े-चौड़े हैं। रास्तों के दोनों ओर और इमारतों के सामने खूब फूल-पत्ती लगी है। दुकानें कम ही हैं परन्तु सब के सामने बारह-चौदह वर्ग फुट के कांच जड़े हैं। भीतर की सजावट दिखाई देती रहती है। जान पड़ता है, नगर नमूने या प्रदर्शनी के तौर पर बना कर खड़ा कर दिया गया है। रात के समय प्रकाश इतना होता है मानों नगर किसी रंगशाला का रंगमंच हो। वास्तव में ही यहां सब कुछ योजना द्वारा बनाया गया और नया है।

होटल के कमरों में बिछे कालीनों और होटल के कुछ बर्तनों और कांटे छुरी से ही रहस्य का संकेत मिलता है। इन सब चीजों पर बिना हुआ या खुदा हुआ दिखाई देता है 'बाटा'। अंग्रेजी के चार अक्षर बी, ए, टी, ए और उसी शैली में जैसे हमारे सब नगरों में बाटा की दुकानों पर, उस के माल पर यह चार अक्षर लिखे रहते हैं। संसार प्रसिद्ध जूता-सम्राट बाटा का उद्गम और वास्तविक स्थान गोथवाल्डोव ही है, बल्कि था। होटल का नाम बाटा होटल था और सामने अठारह मंजिल की इमारत जिस पर आज 'स्विन' लिखा है, इस पर भी बाटा का ही नाम था। यहां बाटा का दफ्तर था और उस के पीछे मीलों के वर्ग क्षेत्र में बाटा के कारखाने। यहां के लोग 'बाटा' का उच्चारण 'बात्या' करते हैं।

१८७६ में यहां बहुत छोटी, कुछ घरों की ही बस्ती थी। इस बस्ती का नाम था 'जिलन'। बाटा परिवार में एक सोलह वर्ष का थामस नाम का लड़का था। उसे गरीबी और दैन्य से छटपटाहट अनुभव होती थी। लड़का गहरी सूझ का और साहसी भी था। उसने समझ लिया, कितनी भी कड़ी मेहनत करो बहुत अधिक अंतर नहीं पड़ सकता। अंतर तो तब होता है जब अपने हाथों जूता न बना कर हाथों के चार-छः जोड़े काम पर लगा कर माल बनवाया जाये। थामस ने सुना, प्रोस्तेजोव शहर में जूते मशीनों से बनते हैं। इस बात से थामस को और भी उत्साह हुआ। कभी न थकने वाली मशीन से काम लिया जा सके तो माल की निकासी का क्या अंत! थामस बाटा वहां गया और कार-खाने के एक कारीगर को कुछ दे दिला कर उस समय की मशीन का एक

नक्शा ले लिया। उसने नमदे के सस्ते स्लीपर खूब अधिक संख्या में बनाने आरम्भ किये।

उस समय बाटा के पास काम बढ़ाने के लिये धन न था। उस का उपाय उसे सूझा, अपने मजदूरों से ही उधार लेना। बाटा ने अपने मजदूरों को समझाया, इस कारखाने का काम बढ़ाने में तुम्हारा भी फायदा है। अभी रुपये में बारह आने लेते जाओ। बकाया तुम्हारा जमा रहा। जमा रकम तुम्हारे हाथ लगेगी तो काम आयेगी। इसके बाद उसने मजदूरों को समझाया—दूसरे जूता बनाने वालों के मुकाबिले सस्ता माल निकालना जरूरी है। इस काम में तुम लोगों की भी रकम लगी है। अगर धंधा घाटे में जायगा तो तुम्हारा ही नुकसान है। इस मंत्र से वह मजदूरी बढ़ाये बिना मजदूरों से अधिक काम लेने लगा।

बाटा बीस ही वर्ष का था तभी उस का काम अच्छा खासा चल निकला था। इस समय उसने समाजवाद के विषय में सुना। उसे समाजवादी सिद्धांत पसंद आये। उसने निश्चय किया और साथ काम करने वाले मजदूरों को भी समझाया—खूब यत्न से काम कर रुपया कमाया जाये। एक अच्छा बड़ा कार-खाना हो। उस के साथ ही जमीन खरीद कर खेती और डेरी की भी व्यवस्था हो।

कुछ दिन इस आयोजना के अनुसार काम चला लेकिन काफी कमाई हो जाने पर बाटा का विचार बदल गया। बाटा ने अपने संस्मरणों में लिखा है:—

"......मैं तीन मजदूरों के साथ अमरीका गया। अमरीका का क्या कहना! पर असल चीज है अमरीका के आदमी। अमरीकन लोगों को काम बनाने से मतलब है। वे इमान-हराम के व्यर्थ पचड़ों में नहीं पड़ते। उन लोगों का कहना है, व्यापार व्यापार में क्या अंतर? व्यापार में क्या भला, और क्या बुरा? व्यापारी की जैसी कमाई, वैसी उस की इज्जत। मि० माइल्स ने अपने प्रतिद्वन्दी का कारखाना भी मुझे दिखाया और बोला—"देखो, दस लाख डालर तो यह आदमी इनकम टैक्स दे डालता है। यह बड़ा आदमी नहीं तो क्या है? यह हुई बाटा के समाजवादी सिद्धान्तों की इति श्री।

बाटा के व्यवसाय का मूलमंत्र था, सस्ते से सस्ता माल बना कर आसपास के छोटे-मोटे प्रतिद्वन्दी कारखानों को समाप्त कर बाजार पर एक-छत्र राज जमाते जाना। १९०७ तक उसने आस-पास के जूते के सभी कारखाने समाप्त कर दिये थे। वह गरीब से गरीब प्रदेशों से मजदूर लाकर अपने यहाँ काम पर

लगाना और जमानत के तौर पर उन की मजदूरी का एक भाग काटता रहता। जमानत को छोड़ कर भाग जाना मजदूरों के लिये सम्भव न था। प्रायः मजदूर उल्टे उस के कारखाने के कर्जदार ही बने रहते। आसपास दूसरे कारखाने भी शेष नहीं थे जहां यह मजदूर काम पा सकते। इसके अतिरिक्त बाटा ने दिन के काम की मात्रा इतनी निश्चित कर दी थी कि उतना काम दस घंटे में भी पूरा कर देना मजदूरों के बस का नहीं था। मजदूर बारह-चौदह घंटे तक काम करते रहते तब जाकर दिन भर के पगार के हकदार हो पाते।

बाटा के उत्थान का चमत्कार हुआ पहले महायुद्ध में। उसने आस्ट्रोहंगेरियन सेना के लिये बूट बनाने का ठेका ले लिया था। उस युद्ध से पहले १९१३ में उस के कारखाने में तीन सौ मजदूर काम करते थे। सालभर में उन की संख्या चार हजार हो गई। दस हजार जोड़ा जूता उस के यहां रोजाना बनता था। युद्ध में आस्ट्रिया और जर्मनी का साथ था इसलिये बढ़िया जर्मन मशीनें उसे मिल गईं। १९२७ में उस के यहां मजदूरों की संख्या आठ हजार हो गई और १९३१ में उन्नीस हजार सात सौ।

बाटा अपने नगर का राजा था और अपने नगर का बनियां भी था। सब धरती उस की ही थी। मकान केवल वही बनवा सकता था और उन का मन-माना किराया लेता था। आवश्यक वस्तुओं—आटा, दाल, कपड़ा, नमक भी उस की ही दुकानों पर बिकता था। कहने को यह मजदूरों की सहायता थी परन्तु दुकानों से अच्छा-खासा मुनाफा भी वह कमाता था। जैसे हमारे यहां चाय बागान के मालिकों का तरीका है। वे जो तनख्वाह मजदूरों को देते हैं, अपनी आटा-दाल, कपड़े और शराब की दुकानों से वापिस भी समेट लेते हैं। बाटा के कारखाना में मजदूरों को किसी प्रकार की सभा-सोसायटी या संगठन बनाने का न अधिकार था न अवसर। ऐसा सन्देह होते ही मजदूरों को तुरंत मकान खाली करवा कर निकाल देने की आज्ञा थी।

× × ×

१९३१ में योरुप में भयंकर आर्थिक संकट और मंदी का समय था। अनेक व्यवसाय समाप्त हो रहे थे। बाटा को भी घाटा पड़ रहा था। उस का विचार था कि वह विज्ञापनों द्वारा अपना माल खपा सकेगा। उस के विज्ञापन बनाने वाले कलाकार नित्य बीसियों सचित्र विज्ञापन तैयार करते और वह क्रोध और

निराशा में—'कुछ नहीं बना ! व्यर्थ है !..........गधे है, सब गधे हैं !' चिल्लाता हुआ उन्हें पांव तले कुचल डालता । उसे यह समझ नहीं आ सकता था कि जब लोगों के पास रोटी खरीदने के लिये दाम नहीं तो वे जूते कैसे खरीदते जांय ?

बाटा को तो अपने कारखानों का माल कहीं खपाना ही था । उस का उद्देश्य चेकोस्लोवाकिया के लोगों को जूते पहनाना ही नही था । उसने मध्य ऐशिया, भारत, ईरान, इजराइल आदि में अपना कारोबार फैलाना शुरू किया । सफलता के नशे में बाटा के लिये अपने हुक्म के सामने कोई आपत्ति या तर्क सुनना-सहना सम्भव न रहा था । यही झक उस के अन्त का कारण हुई । एक दिन प्रातःकाल ही वह व्यवसाय के प्रयोजन से विमान पर जाना चाहता था । विमान-चालक घने कोहरे के कारण यात्रा आरम्भ नहीं करना चाहता था परन्तु बाटा यह आपत्ति कैसे सह सकता था । उसने चालक को विमान उड़ाने का हुक्म दिया । विमान अड्डे पर उठते-उठते ही टकरा गया । बाटा अपने साथ विमान चालक को भी ले मरा ।

थामस बाटा के लड़के की आयु अभी बहुत कम थी । बाटा की वसीयत के अनुसार कारोबार की बागडोर उस के सौतेले भाई जान बाटा ने संभाली । जान बाटा में व्यवसाय और संगठन की बुद्धि तो कम परन्तु अकड़ अपने भाई से भी अधिक थी । वेश-भूषा और बोलचाल बिलकुल जरनैलों जैसी । बड़ा बाटा व्यवसाय की जो नींव बांध गया था और चुन-चुन कर जो आदमी अपने काम पर लगा गया था वे व्यवसाय को चलाये जा रहे थे और जान बाटा अपना रोब बढ़ाये जा रहा था । दूसरे महायुद्ध में उस ने खूब गुल खिलाये । चेको-स्लोवाक प्रजातंत्र सरकार और प्रजा तो देश पर जर्मनों के आक्रमण का विरोध कर रहे थे पर जान बाटा अपनी स्वार्थपूर्ण महत्वाकांक्षाओं के स्वप्नों को लिये जर्मनों से साठ-गांठ कर रहा था । वह बर्लिन जाकर गोरिंग और दूसरे नाजी नेताओं को उन के उद्देश्य में सहायता देने का आश्वासन ही नहीं देता रहा बल्कि उन्हें अपना देश चेकोस्लोवाकिया खाली कराने की नयी योजनायें भी सुझा रहा था ।

चेकोस्लोवाकिया की भूमि जर्मनी की दक्षिण—पूर्व सीमा के साथ-साथ दूर तक चली गई है । नाज़ी लोग जर्मनी की बढ़ी हुई जनसंख्या के लिये जर्मनी की भूमि को पर्याप्त नहीं समझते थे । बोहेमिया के पश्चिमी भागों में तो जर्मन

लोग बड़ी संख्या में सैकड़ों वर्षों से बस कर अपना प्रभुत्व जमाये हुये थे। चेकोस्लोवाकिया उन के विचार में उन के घर का ही आंगन था। नाजियों के विचार में चेकोस्लोवाक लोगों को इस आंगन में रहने का कोई अधिकार न था। हिटलर-गोरिंग योजना यह थी कि चेकोस्लोवाकिया की सम्पूर्ण प्रजा को उन के देश से निकाल कर रूस के अनवसे प्रदेशों में धकेल दिया जाये और चेकोस्लोवाकिया की भूमि में बढ़ी हुई जर्मन प्रजा आकर बसे।

बाटा ने गोरिंग से मिल कर एक नयी योजना प्रस्तुत की। उसने यह तो स्वीकार कर लिया कि चेकोस्लोवाक प्रजा को अपनी भूमि से उखाड़ कर वहां जर्मनों को बसा दिया जाये परन्तु चेकोस्लोवाक लोगों को रूस भेजना उस ने अदूरदर्शिता बताया। उस ने सुझाया—चेकोस्लोवाक लोगों को यदि रूस भेजा गया तो चेकोस्लोवाकिया के समीप ही रहने से उन के मन में सदा ही अपनी मातृभूमि की ओर लौटने की लालसा बनी रहेगी। इस के अतिरिक्त औद्योगिक रूप से उन्नत चेकोस्लोवाक लोग रूस में जायेंगे तो रूस की औद्योगिक उन्नति बहुत शीघ्र हो जायगी। चेक और रूसी मिल कर जर्मनी को कभी चैन की सांस न लेने देंगे।

जान बाटा ने सुझाव दिया कि चेकोस्लोवाक प्रजा को रूस न भेज कर दक्षिण अमरीका के सब से दक्षिण अन्तरीप पैटागोनिया में भेजा जाय ताकि उन के योरुप लौटने के स्वप्न का ही अन्त हो जाय। उस ने सुझाया कि जल-वायु और प्राकृतिक साधनों के विचार से इस भूखण्ड (पैटागोनिया) में औद्योगिक दृष्टि से योग्य चेकोस्लोवाक लोगों को उन्नति का अधिक अच्छा अवसर मिलेगा।

बाटा ने योजना खूब ब्योरेवार और गहराई तक बनाई थी। उस का कहना था कि एक करोड़ चेकोस्लोवाक प्रजा को इतनी दूर भेजने के लिये पांच सौ जहाजों की आवश्यकता होगी इसलिये नये जहाज भी बनाने होंगे। इस काम में ब्रिटेन और अमरीका को भी कुछ धन्धा मिल सकेगा। इससे उन लोगों के देश में भी बेकारी का कुछ समाधान हो सकेगा। बाटा का सुझाव था कि चेकोस्लोवाक लोगों को अपनी भूमि, मालमत्ता समेट और बेच कर पैटागोनिया चले जाने के लिये दस वर्ष का समय दिया जाना चाहिये। इस के पश्चात् जो लोग रह जायं उन के लिये कोई उत्तरदायित्व न लिया जाय। योरुप के दूसरे देशों से भी बढ़ी हुई प्रजा पैटागोनिया जा सके। शनैः-शनैः इस काम में लगभग दो

हजार जहाज लग जायेंगे और दस वर्ष तक यह काम जारी रहेगा। बाटा के हिसाब से उस काम में दस लाख व्यक्तियों को रोजी मिल सकने का अवसर था।

नाजियों का चेकोस्लोवाकिया को खाली करा लेने के लिये योजना बनाना तो समझ में आता है परन्तु स्वयं एक चेक (जान बाटा) का अपना देश दूसरों के हाथों में सौंप देने की योजना बनाना विस्मयजनक ही है। परन्तु स्वार्थ से अन्धे मनुष्य के लिये सभी कुछ सम्भव है। लाभ के लिये पागल पूंजीपति को देश से नहीं अपनी पूंजी से ही ममता होती है। बाटा ने पैटागोनिया में लगभग दो सौ वर्गमील भूमि मिट्टी के दामों पहले से खरीद ली थी। उस की योजना का स्वप्न यदि पूरा हो पाता तो बाटा पैटागोनिया का राजा ही होता। संसार भर में जूतों का व्यवसाय फैला कर और इतना धन कमा कर भी बाटा की पूंजी बढ़ाने की भूख मिट न सकी।

युद्ध के अन्त में समाजवादी शासन को जान बाटा की यह सब करतूतें मालूम हो गयी थीं। समाजवादी सरकार उस पर देशद्रोह का मुकद्दमा चलाना चाहती थी परन्तु वह भाग गया। अब वह ब्राज़ील में है। वहां भी वह अद्भुत योजनायें, जिनमें क्रियात्मकता कम और लाभ के लोभ का पागलपन अधिक है, बना रहा है। शनैः-शनैः उस का व्यवसाय और पूंजी क्षीण हो रही है। बाटा की अनुपस्थिति में ही चेकोस्लोवाकिया में उस पर मुकद्दमा चलाया गया। उसे दोषी पाया गया। जिलन का बाटा कारखाना राष्ट्रीय अधिकार में ले लिया गया। अब उसका नाम 'स्वित' अर्थात 'ऊषा' है।

गोथवाल्डोव में सब कुछ ऐसा साफ-साफ दिखाई देता है जैसे भले घर की सुघड़ जवान बहू बन संवर कर बैठी हो। युद्ध के ध्वंस का कोई संकेत नहीं था। सभी जगह गत युद्ध से हुई हानि के विषय में पूछता आया था इसलिये यहां भी पूछा—"बाटा तो नाजियों का समर्थक था इसलिये युद्ध में यहां तो ध्वंस नहीं हुआ होगा ?"

उत्तर मिला—"नगर पर अधिकार करते समय नाजियों ने गोथवाल्डोव पर बम्ब नहीं फेंके थे परन्तु यहां से जाते समय वे बहुत कुछ नष्ट कर गये। उनसे अधिक ध्वंस किया अमरीकन जनरल जानसन ने। १९४४ सितम्बर में सोवियत की लाल सेना ने प्राहा ले लिया था और वहां समाजवादी सरकार की स्थापना हो गई थी। नाजी लड़ते हुए पीछे हटते जा रहे थे। ब्रिजेन, ओस्त्रावा कोम्सी और जिलन के औद्योगिक क्षेत्र भी नाजियों के हाथ से निकल गये थे तो

जनरल जान्सन ने भागते हुए नाजियों को मारने के लिये इन क्षेत्रों पर बम्ब वर्षा करके उन्हें नुकसान पहुंचाने के बहाने इन क्षेत्रों को बर्बाद कर दिया। अमरीकनों को आशंका यही थी कि यह औद्योगिक क्षेत्र समाजवादी प्रणाली के शासन में चले जाना अन्ततः पूंजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध ही जायगा। इस बम्ब वर्षा से गोथवाल्डोव के बाटा कारखाने का रुपये में दस आना भाग नष्ट हो गया था परन्तु दो वर्ष में ही उसे फिर बना लिया गया और कारखाने की पैदावार युद्ध से पूर्व के स्तर पर आ गई।

इस समय स्लिन में सब तरह के नमूने मिलाकर प्रति सप्ताह दस-लाख जूते बन रहे हैं। लगभग चालीस हजार स्त्री पुरुष कारखाने में काम कर रहे हैं। जूतों को मालगाड़ियों में भरने तक का काम मशीनों से ही होता है। दफ्तर की इमारत अठारह मंजिल है। तीन मंजिल धरती के नीचे और पन्द्रह मंजिल ऊपर। इतनी मंजिलें होने पर लिफ्ट तो आवश्यक ही है परन्तु दफ्तर का एक कमरा जिसमें स्वयं बाटा का दफ्तर था, खूब बड़ा कमरा ही लिफ्ट है। इस कमरे को बटन दबा कर चाहे जब जिस मंजिल पर ले जाया जा सकता है। कमरा किसी भी मंजिल पर हो, टेलीफोन से उसका सम्बंध सब कमरों से बना रहता है। कमरे के साथ के गुसलखाने में गरम और ठंडा पानी भी प्रतिक्षण आता रहता है। ऐसा कमरा बनवाने का प्रयोजन दफ्तर के कार्यकर्ताओं पर मालिक की उपस्थिति का आतंक सदा बनाये रहना था। अठारहवीं मंजिल की छत पर अच्छा खासा बगीचा है और यहां से मीलों दूर तक का दृश्य भी दिखाई देता है। आजकल दफ्तर में काम करने वाले स्त्री-पुरुष जब जरा सुस्ताना चाहते हैं, कुछ समय के लिये यहां आकर धूप सेक लेते हैं।

गोथवाल्डोव का होटल मास्को यहां के सार्वजनिक जीवन का केन्द्र है। पहले कह चुका हूं, होटल की इमारत ग्यारह मंजिल की है। कमरे जरा छोटे-छोटे हैं परन्तु प्रत्येक कमरे के साथ स्नान और सुविधा का प्रबन्ध है। नीचे खूब बड़े-बड़े दो हाल हैं। मजदूर अपना काम समाप्त कर यहां आते हैं और खा-पीकर ऊपर के हाल में नाच-गाने में लग जाते हैं। आधी रात तक नृत्य-संगीत का शोर चलता रहता है।

यहां की नगर सभा की मन्त्री जोश्मानोवा है। दोपहर बाद काफी पीते समय उसने पूछा—"थक न गये हो तो कहीं और चलें। छोटा सा तो नगर है, क्या देखना चाहते हो ? स्थानीय लोक-नृत्य और संगीत में रुचि है ?"

जोश्मानोवा जैसी युवती से नृत्य-संगीत देखने-सुनने जाने के प्रस्ताव की आशा नहीं थी। आयु का अनुमान कठिन है। आंखों में नाराज बिल्ली जैसी तीव्रता है, चेहरे पर यातना की रेखाएं हैं जिन्हें पाउडर से छिपाने का कोई यत्न भी वह नहीं करती। 'चारमीनार' के दर्जे का सिगरेट प्रायः ओठों में दबा ही रहता है। अपने साथ आई दुभाषिया मिलादा से मैंने अंग्रेजी में कहा—"मेरा अनुमान है कि रुपये में बारह आने, यह महिला कम्युनिस्ट है और इस ने जेल भी काटी है।"

"पूछूं इस से ?" मिलादा ने कहा और पूछ ही लिया। ऐसा प्रश्न पूछ लेने से मुझे ही संकोच अनुभव हुआ। बात संभालने के लिये तुरन्त कहा—"मेरा अभिप्राय राजनैतिक कारण से जेल का है। मैं स्वयं भी जेल काट चुका हूं। हमारे प्रधान मंत्री नेहरू तो तीन-चार बार जेल गये हैं।"

जोश्मानोवा बिना संकोच और मुस्काए बोली, मानो निजी जीवन की घटना नहीं बल्कि गत संध्या हुई वर्षा की बात कह रही हो—"हां-हाँ, मैं युद्ध से पहले ही बाटा के कारखाने में काम करती थी। तभी पार्टी की सदस्य भी थी। फौजी नाजी यहां से हम सब कम्युनिस्टों को गिरफ्तार करके कंसन्ट्रेशन कैम्प में ले गये थे……।" कंसन्ट्रेशन कैम्प से उसे तत्कालीन नाजी-चेक सरकार ने एक अन्य मुकद्दमे में भी शामिल करने के लिये दूसरे जेल में बुलवा लिया था। जोश्मानोवा पर यह नया मुकद्दमा चल ही रहा था कि उसे समाचार मिला कि ज्लिन में उस के साथ गिरफ्तार किये गये सब लोगों को गोली मार दी गई। इस मुकद्दमे में जोश्मानोवा को आठ या दास बरस की जेल की सजा दे दी गई। जोश्मानोवा ने कहा—"मालूम नहीं मुझे गोली मार देने का काम जेल की सजा पूरी हो जाने तक स्थगित कर दिया गया था या कोई हिसाब ही नहीं था कि किसे और कितनों को गोली मारनी है। तब तक लाल सेना आ गई और समाजवादी व्यवस्था की सरकार कायम हो गई। मुझे जेल से मुक्त कर दिया गया………।

जोश्मानोवा से बाल-बच्चों के विषय में पूछा तो उत्तर मिला कि दो लड़के हैं, एक आठ बरस का दूसरा पांच का है।

मैंने पूछा—"तुम्हारे लड़के क्या बनेंगे ? वैज्ञानिक या दार्शनिक ?"

"क्या बताऊं ?" जोश्मानोवा ने उत्तर दिया, "बड़ा तो कहता है, राज-मिस्त्री बनूंगा।" इस बार जोश्मानोवा को हंसी आ गई। समाजवादी शासन

में श्रम का अपमान न करने की सावधानी के लिये सतर्क कर कहा, "यह तो कोई बहुत बड़ी महत्वाकांक्षा नहीं है ?"

जोरमालोवा ने मुस्कराकर समझाया कि उस के निवास स्थान के समीप तैयार उपकरणों (प्रिफेब्रिकेटिड मैटिरियल) से नये मकान बन रहे हैं। वहां एक बहुत ऊंची क्रेन है। एक आदमी क्रेन की चोटी पर छोटे से कमरे में बैठ कर क्रेन को आगे-पीछे चलाता है। क्रेन छोटी-बड़ी दीवारें और भारी-भारी सामान लेकर आगे-पीछे चलती है। इतनी बड़ी शक्ति और यन्त्र पर नियंत्रण करने का अवसर लड़के के लिये चामत्कारिक स्वप्न है ········।

मैं मकान बनाने का यह नया ढंग देखना चाहता था। प्रस्ताव किया—"चलो तुम्हारे लड़के से मिल आयें और मकान बनाने का नया ढंग भी देख आयें।"

तैयार उपकरणों से मकान बनाने का ढंग बहुत सहज है। दीवारों के छोटे-बड़े भागों में बिजली की तारों और पानी के नलों के लिये पहले से नालियां बनी रहती हैं। दरवाजे, खिड़कियां, रोशनदान भी पहले से बने रहते हैं। मकान बनाने के लिये चुने गये स्थान के दोनों ओर एक-एक फौलादी पटरी बैठा दी जाती है। फौलादी खम्भों पर एक बहुत ऊंचा फौलादी पुल इन पटड़ियों पर आगे-पीछे चलता रहता है। इस पुल के ऊपर दो क्रेन लगे रहते हैं। इन क्रेनों की गति ऊपर-नीचे, दायें-बायें सब दिशाओं में हो सकती है। धरने-उठाने का सब काम यह क्रेनें करती हैं। मुख्य काम नींव बैठाना और धरती का पक्का फर्श तैयार करना ही होता है। दीवारें शुरू हुई तो फिर तो ऐसा लगता है कि पेचों से तख्तों पर तख्ते जड़ते चले जा रहे हैं। छः मंजिल का लगभग सवा सौ कमरों का पूरा मकान बिजली, पानी के नल चालू करने और खिड़कियों, दरवाजों में कांच जड़ने तक का काम केवल पैंतालीस दिन में पूरा कर देने की आशा की जाती है। कभी इस से कुछ जल्दी भी काम पूरा कर लिया जाता है। इस तरह के मकानों के प्रसंग में वहां एक चुटकला मास्को के सम्बन्ध में सुना था:—

एक भला आदमी मकान के लिये बहुत परेशान था। कई बार आवेदन पत्र देने पर उसे उत्तर मिला—"अमुक नम्बर की नयी बस्ती में,·············नम्बर की सड़क,···········नम्बर गली की·········नम्बर चाल में·········मंजिल में··············इतने नम्बर का फ्लैट··················तारीख से तुम्हारे नाम कर

दिया गया है।" यह सज्जन मकान के लिये इतना उतावला था कि तारीख आने पर सुबह आठ-नौ बजे ही वह नयी बस्ती में सड़क, गली ढूंढ़ कर मकान के स्थान पर पहुंच गया। देखा कि इमारती सामान पड़ा है और चार-पांच आदमी फीते लिये नाप-जोख कर रहे हैं। उसे बहुत निराशा हुई। यह भी ख्याल आया कि गलत जगह न पहुंच गया हो। आस-पास पूछ-ताछ की तो जगह ठीक ही थी। आखिर नाप-जोख करते मजदूरों को कागज दिखाकर पूछा, "यहां मेरे नाम पर मकान दिया गया है लेकिन मकान तो दिखाई नहीं देता।"

मजदूरों के मेट ने आज्ञा-पत्र देखने के लिये मांगा और कागज के नीचे अंतिम पंक्ति पर उंगली रखकर कहा—"इसमें स्पष्ट लिखा है कि मकान में संध्या छः बजे प्रवेश किया जा सकता है। आप सुबह आठ बजे मकान ढूंढ़ रहे हैं। संध्या छः बजे मकान न मिलने पर शिकायत कीजियेगा!"

चेकोस्लोवाकिया में सांस्कृतिक कार्यक्रमों की लहर-बहर रहती है। मेरी इच्छा थी जैसे स्लोवाकिया के जाब्जिना स्थान में ठेठ दिहाती नृत्य-संगीत देखा था वैसा ही यहां मोराविया में भी देखने का अवसर हो तो जरूर देख लिया जाये। गोथवाल्डोव से प्रायः आठ-दस मील दूर एक गांव में नवयुवक एक कार्य-क्रम की तैयारी में संध्या समय रिहर्सल किया करते थे। सोचा, वही देख आयें। गांव में भी एक छोटी सी रंगशाला थी। पास-पड़ोस के नौजवान और युवतियां रिहर्सल के लिये इकट्ठे हुए थे। दो-चार की प्रतीक्षा थी। हमारे पहुंच जाने से कोलाहल शांत हो गया। मैं उन का नृत्य संगीत देखने गया था परन्तु उन्हें मेरे प्रति और भी अधिक कौतूहल था। उन लोगों ने शायद भूरे रंग का आदमी पहली बार ही देखा था, तिस पर जादू की दुनिया का भारतीय और वह भी लेखक। यह प्रान्त देहात होने पर भी स्लोवाकिया की तुलना में बहुत आधुनिक था परन्तु उन के वाद्य यंत्र किसी प्राचीन संग्रहालय से निकाल कर लाये गये जान पड़ते थे। पूरे आदमी के कद का तानपूरा और बैगपाइप जैसी शहनाई। ऐसी शहनाई के थैले में साधारणतः हवा मुख से भरी जाती है और थैले में दो या तीन शहनाइयां जुड़ी रहती हैं। यहां की शहनाई में हवा भरने के लिये छोटी सी लुहार की धौंकनी जुड़ी हुई थी। बजाने वाला एक बांह के नीचे धौंकनी दबाये बांह से हवा भरता जाता था। उंगलियां दूसरी बगल में दबे थैले से लगी शहनाई पर चल रही थीं और मुख से गा भी सकता था।

कई स्थानीय लोक गीत सुने। वे स्थानीय नृत्य दिखाने के लिये स्वयं ही

उत्सुक थे परन्तु पूर्व सूचना न होने के कारण पोशाकों का प्रबंध नहीं किया गया था। कुछ लड़कियां, काम-काज के समय जैसी ढीली पतलून पहने रहती हैं, वैसी ही पहने चली आई थीं। कुछ फ्राक पहने थीं। नौजवान भी साधारण कमीज-पतलून में थे। उन्होंने क्षमा मांगी कि स्थानीय पुरानी पोशाक के बिना नृत्य का क्या आनन्द आयगा और नाचने भी लगे।

लड़कियों का यह तकाजा था, बल्कि स्थानीय आचार के अनुसार उन का अधिकार था कि अतिथि उन के साथ नाचे। परन्तु अतिथि करता क्या? उन की यह इच्छा पूर्ण न कर सकना उन के सत्कार और आतिथ्य का अनादर जान पड़ रहा था। उस वातावरण में यह कह देना कि नाचना मेरा काम नहीं है, बहुत बड़ी अशिष्टता होती। व्यर्थ में दुहाई देने से भी काम नहीं चल सकता था। कहना पड़ा, पीठ में बहुत तकलीफ है। डाक्टर ने बिलकुल मना कर दिया है। अपने देश में लोगों को इस बात के लिये गर्व करते देखा है कि उन्होंने सिनेमा कभी नहीं देखा। समझ नहीं सका कि किसी अज्ञान के लिये क्या गर्व किया जाये! नाचना आने के कारण जाने कितनी बार मेरा व्यवहार कितने लोगों को अशिष्ट जान पड़ा है। मिलाना, मेरिया और मिलादा सभी को मेरे बिलकुल न नाच सकने के कारण कुछ कुंठित होना पड़ा। इस विषय में सोवियत में भी अनुभव अच्छा नहीं हुआ। सोची सैनाटोरियम में पहली ही रात भोजनालय की मैनेजर ने साथ नाचने का अनुरोध किया था। नाचना न आने के लिये क्षमा मांगी तो मुस्कराहट से उत्तर मिला—"नहीं आता, आओ मैं खुद सिखा लूंगी।" अभिप्राय था—संकोच कर रहे हो शुरू करोगे तो नाचने ही लगोगे।

भोजनशाला की मैनेजर से किसी प्रकार छुट्टी पाई थी कि सैनाटोरियम की बड़ी डाक्टर आ गई। वह कुछ कहे बिना ही बांह में हाथ डाल कर नाच के स्थान की ओर ले चली। बहुत अनुनय से कहा—"नाचना जानता नहीं।"

डाक्टर ने विस्मय से पूछा—"सच!" और बोली, "नाचना नहीं जानते तो यहां खड़े क्यों हो? आओ, बिलियर्ड के कमरे में चलकर खेलें।"

जब विवशता में बिलियर्ड से भी अज्ञान की सात्विकता की घोषणा की तो उत्तर मिला—"अजब आदमी हो; कुछ जानते भी हो? तभी तो सेहत ऐसी है। नहीं जानते तो आओ मेरी शागिर्दी करो।" कान पकड़ कर खींचे जाते बकरे की तरह बिलियर्ड के कमरे में जाना ही पड़ा। कई दिन खेलते रहने पर समझ आया कि बिलियर्ड निरा नखरा ही नहीं, अच्छी खासी कसरत भी

है। हमारे यहाँ लखनऊ में बिलियर्ड केवल बड़े रईसों के लिये दो-तीन जगह ही हैं। इंगलैंड में भी बिलियर्ड महंगा खेल है परन्तु समाजवादी देशों में सभी मजदूर क्लबों में बिलियर्ड और नृत्य का प्रबन्ध रहता है।

कुछ नवयुवक और नवयुवतियां नाच दिखाते रहे। एक युवक और युवती चुपके से खिसक गये थे। वे कहीं पड़ोस से पुराने ढंग की पोशाकें मांग कर पहन आये। उन्हें बीच में लेकर नाच खूब वेग से होने लगा। मालूम होता है ये पोशाकें बहुत ही पुराने नमूनों को देख कर बनाई गई होंगी। पोशाकों की सफाई की ओर ध्यान न दिया जाये तो कुल्लू घाटी और तिब्बत की पोशाकों का मेल ही मोराविया की पुरानी राष्ट्रीय पोशाक समझी जानी चाहिये। सम्भव है, किसी समय दोनों स्थानों की पोशाकों का स्रोत एक ही समाज रहा हो।

दूसरे दिन प्रातः नाश्ते के बाद गोथवाल्डोव से लगभग चालीस मील दूर एक कस्बे में ग्रामोद्योग केन्द्र देखने गये। यों तो चेकोस्लोवाकिया का शीशे और चीनी मिट्टी का आधुनिक काम संसार भर में प्रसिद्ध है परन्तु यहाँ उस के प्राचीन रूप को बनाये रखने का भी यत्न है। इस केन्द्र में चीनी मिट्टी नहीं, साधारण चिकनी मिट्टी से ही बर्तन और खिलौने बनाये जाते हैं। अपने यहाँ के कुम्हार के चक्के जैसा चक्का यहां भी विद्यमान है। यहां का कुम्हार स्टूल पर बैठ कर चक्के को जूते की ठोकर से चलाता है और गीली मिट्टी के छींटों से बचने के लिये मोटे कपड़े का एक आंचल कंधों से लेकर पिंडलियों तक लटकाये रहता है। मिट्टी से बनाये पदार्थों को पकाने के लिये भट्टियाँ बिजली की हैं। मिट्टी के काम के अतिरिक्त यहां सूखी घास या वृक्षों की छाल से टोकरियां, थैले आदि बनाने का भी काम होता है। एक बड़ा विभाग कसीदे-कढ़ाई का है। इस विभाग का संग्रहालय बड़े-बड़े एलबमों से भरा है। पुराने समय के कसीदे—कढ़ाई किये कपड़ों के टुकड़े या चीथड़े बहुत यत्न से सहेज कर एलबमों में रखे हुए हैं। पुराने ढंग पर नये नमूने भी बनाये जाते हैं। यहां जितनी चीजें बनती हैं, सब शौक की हैं और उन के दाम भी काफी अधिक हैं परन्तु घर की सजावट के लिये लोग उन्हें खूब खरीदते हैं।

गोथवाल्डोव की ओर लौटते समय मार्ग में ओत्रोकोविसे गांव में संयुक्त कृषि क्षेत्र की पशुशाला देखने के लिये ठहर गये। पशुशाला बिलकुल आधुनिक वैज्ञानिक ढंग की है। दूध मशीनों द्वारा दुहा जा रहा था। योरुप में दूध को उबालने का रिवाज कहीं भी नहीं है। दूध को खास मात्रा तक ताप देखकर खूब

ठंडा कर मोहरबन्द कर दिया जाता है। पशुओं के पालने का ढंग भी वैज्ञानिक है और योजना के अनुसार किया जाता है। बछड़े-बछड़ियों के माता-पिता के गुण ध्यान में रखकर और पहले चार-छः मास में उन की उठान देखकर उनका उपयोग निश्चय कर लिया जाता है। बछिया तो दूध के लिये ही रखी जाती है। बछड़ों को आरम्भ से ही चुन लिया जाता है। सब से अच्छे बछड़े वंशवृद्धि के लिये चुन कर यत्न से पाले जाते हैं। ऐसा एक छः मास का बछड़ा लगभग मेरे कंधे तक पहुंच रहा था। दूसरों को मांस के लिये पाला जाता है। गाय के पांच-छः बार ब्या जाने पर उसे बूढ़ी समझ कर मांस के लिये भेज दिया जाता है। उस पशुशाला में गाय प्रतिदिन औसतन अठारह-बीस सेर दूध देती है। गौओं की वंश-वृद्धि के क्रम और उन की खुराक पर ध्यान देने से दूध की मात्रा पिछले वर्षों में बढ़ गयी है और भविष्य में और भी आशा है।

इस पशुशाला के लोगों को शिकायत है कि वे अपनी पशुशाला में पशुओं की संख्या दो सौ पचास से अधिक नहीं बढ़ा सकते। घोड़े भी केवल अठाइस हैं। कारण, क्षेत्र की भूमि केवल चार सौ पचास हेक्टर (हजार एकड़) है। पशुओं की संख्या बढ़ने से, उन के पर्याप्त भोजन न पाने पर उन के दुर्बल हो जाने की आशंका है। उन लोगों के विचार में पशुओं को दुर्बल रखना उन के प्रति निर्दयता है और अपने हित की हानि भी है। हमारे यहां इतनी भूमि पर उस से आठ-दस गुणा अधिक पशु तो सभी जगह हैं। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का बंटवारा हो जाने के पश्चात् से तो बूढ़े पशुओं की समस्या और भी विकट हो गई है। भारतवर्ष में अठारह-बीस सेर दूध देने वाली नसल की गाय-भैंस अप्राप्य नहीं हैं परन्तु उन के भूखे रहने के कारण उन का दूध घटता जा रहा है। हमारे यहां देहात में गाय प्रायः पाव-आध सेर दूध देती है। बहराइच जिले में तो पशुओं की संख्या इतनी बढ़ गई है कि उन के चरने के लिये स्थान ही नहीं है। इन पशुओं के शरीर केवल त्वचा से मढ़े हुए कंकाल-मात्र जान पड़ते हैं। उत्तर प्रदेश में गोवध कानूनन बन्द हो जाने से कई जिलों में गाय का मूल्य बकरी से भी कम हो गया है। लोग गौमाता को पालने से भयभीत हैं कि एक बार गले पड़ी तो छुटकारा कैसे होगा? गाय के प्रति श्रद्धा की यह क्या विडम्बना है। चेकोस्लोवाकिया के लोगों के विचार में पशु को ऐसी अवस्था में रखना उसे आमरण भूखे रखने की निर्दयता है और अच्छा दूध दे सकने वाले पशुओं के प्रति भी अन्याय है।

गोथवाल्डोव से प्राहा के लिये संध्या छः बजे विमान चलता है। दोपहर के भोजन के पश्चात ऊंघते रहने की अपेक्षा एक चक्कर लुहाचोवित्सा के स्वास्थ्य-प्रद स्रोतों का ही लगा आये। मार्ग में कुछ बस्तियां अभी तक बिलकुल पुराने ढंग की स्लोवाक प्रदेश जैसी है, वैसी ही जैसी हमारे यहां के पहाड़ी प्रदेशों—अल्मोड़ा या कांगड़ा आदि में हैं। घर एक पांत में एक दूसरे से बिलकुल मिले हुये। इसे हमारे पहाड़ों में बाखरी कहते हैं। अब इस ढंग को बदल कर बीच में सब्जी-तरकारी और फुलवाड़ी की जगह छोड़ कर मकान बनाने का ढंग अपनाया जा रहा है। स्त्री-पुरुषों की पोशाकें भी दोनों ढंग की दिखाई दे जाती हैं। पुराना ढंग यानि चुटिया या जूड़े में सिमटे लम्बे केशों पर कस कर रूमाल बंधा हुआ, कसीदा की हुई कुर्ती और घाघरा। नये ढंग की लड़कियों के बाल प्रायः गर्दन तक छंटे रहते हैं। सिर पर से रूमाल गायब। कम घेरे का फ्राक या बनियान और पतलून। खेतों में काम करती लड़कियां बनियान, निकर और रबर के घुटने तक ऊंचे बूट पहने भी दिखाई देती हैं।

लुहाचोवित्सा गोथवाल्डोव से लगभग बीस मील पर्वतीय घाटियों की खूब हरी-भरी अंजली में छोटी-सी परन्तु बहुत रमणीक बस्ती है। स्रोत यहां भी कार्लोविवारी की तरह हालों से ढके हुये हैं। घूमने-फिरने आने वालों के लिये खूब प्रशस्त बरामदे दूर तक बने हैं। बेंचें, कुर्सियां लगी हुई हैं। दूर स्थानों से नल द्वारा पानी और गैस पहुंचाने का प्रबन्ध तो बहुत स्थानों में देखा है परन्तु लुहाचोविन्त्सा में घने वनों से ओषजन (आक्सीजन) भरी ताजी वायु भी नलों द्वारा स्वास्थ्य भवनों (सैनीटोरियम) में पहुंचाई जाती है। यहां बहुत से ऐसे रोगी भी चिकित्सा के लिये आते हैं जो वनों में घूम सकने में असमर्थ होते हैं। नलों द्वारा प्राकृतिक ओषजन स्वास्थ्य भवनों में पहुंचा देने से वे भी ऐसी वायु से लाभ उठा सकते हैं।

विमान के अड्डे पर कुछ मिनिट जल्दी ही पहुंच गये थे। एक-एक प्याली काफी ले रहे थे। मेरे ही जैसे भूरे रंग के और लहीम-शहीम एक व्यक्ति ने समीप आकर अंग्रेजी में कहा—"एक मिनिट के लिये आप के साथ बैठ सकता हूं ?"

यही समझा कि कोई भारतीय है या ईरानी। पूछा—"आप भी भारत से ही हैं न ?"

उत्तर मिला, "नहीं न्यूयार्क से हूं। मैं गायक हूं।"

सज्जन के नखशिख और रंग नीग्रो लोगों जैसे नहीं थे। समझा, योरपियन

और नीग्रो रक्त मिश्रण है।

"आप तो भारतीय हैं न ?" वह सज्जन बोला, "आप को एस्प्लेनेड होटल में भी देखा था। शायद आप मेरी समस्या सुलझाने में सहायता दे सकें। न्यूयार्क में मेरा एक भारतीय मित्र था। सात वर्ष पूर्व उस का देहान्त हो गया था। उस की अस्थियां अभी तक मेरे पास हैं। मैंने सुना है, भारतीय लोग चाहते हैं कि मृत्यु के पश्चात् उन की अस्थियों का प्रवाह गंगा नदी में किया जाये। क्या यह सम्भव हो सकता है कि मैं अस्थियों को भारत भेजने का प्रबंध कर दूं और आप उन्हें गंगा तक पहुंचा देने की व्यवस्था कर दें ?"

सज्जन को समझाया—"मैं गंगा तट पर नहीं रहता हूं और यह सब बात विश्वास की ही है। हिन्दू लोग पुनर्जन्म में भी विश्वास करते हैं। आप के मित्र के विश्वास में यदि तथ्य है तो अब तक उस की आत्मा ने कोई शरीर धारण कर ही लिया होगा। भगवान ने उन की विदेश में देह त्याग की विवशता का ध्यान रख उन्हें कोई न कोई ढांचा दे ही दिया होगा। गंगा के माध्यम से यदि उन की पुरानी अस्थियां उन्हें मिल भी जायेंगी तो वे अब उन का क्या उपयोग कर सकेंगे ? उन अस्थियों को न्यूयार्क की धरती या किसी नदी समुद्र को ही अर्पण कर दीजिये।

आठ जून दोपहर दो बजे इंडिया-इंटरनेशनल के विमान में स्थान रखवा लिया था। डा० स्मेकाल से खूब आत्मीयता हो गई थी। वे पहली संध्या ही आश्वासन दे गये थे कि मैं सामान समेटने-बांधने के विषय में चिंता न करूं। वे आकर सब करा देंगे। वे सुबह आठ बजे ही आ पहुंचे। एक बार लेखक संघ के कार्यालय में लेखकों से विदाई लेने गये।

डा० स्मेकाल ने बता दिया था कि मुझे असुविधा न हो तो बारह बजे होटल में ही रहूं। सांस्कृतिक मंत्री डा० कासा की इच्छा थी कि मेरे प्राहा से चलने से पहले हम लोग एक साथ भोजन करें। डेढ़ मास में दो बार पहले भी डा० कासा से भेंट हो चुकी थी। जानता था, उन्हें कितना काम रहता है। चेकोस्लोवाकिया में जितनी सांस्कृतिक चहल-पहल हो, उतना ही उन का काम बढ़ना स्वाभाविक था। इस समय प्राहा में बसंतोत्सव हो रहा था। बहुत से देशों से सांस्कृतिक शिष्ट मंडल आये हुये थे। डा० कासा सौजन्य के नाते प्रायः सभी शिष्ट मंडलों के स्वागत और विदाई के लिये विमान के अड्डे पर पहुंचने का यत्न करते थे। अपनी या अपने कार्यालय की गाड़ियां आवश्यक कामों के

लिये चली आने पर उन्हें किराये की टैक्सी में ही विमान अड्डे की ओर भागते देखा है। मंत्री का टैक्सी में घूमना दूसरे देशों में सम्भवतः सरकारी आचार और सम्मान के अनुकूल न समझा जायगा।

डा० कास्सा कुछ समय भारत में रह गये हैं। हिन्दी भी बोल लेते हैं। बोलते कम ही हैं परन्तु बोलने के ढंग से समझा जा सकता है कि हिन्दी भाषा का ज्ञान उन्हें है। जब भी मैं विदेशों में हिन्दी के प्रति लोगों की रुचि और प्रयत्न की बात करता हूं आशंका रहती है कि हमारे कुछ साथी समझ बैठेंगे कि हिन्दी के प्रति उनकी इस रुचि और प्रयत्न का कारण हिन्दी का अपना सौन्दर्य और उस में प्राप्य अगाध ज्ञान ही है। यह मिथ्या अहंकार हिन्दी प्रेमियों के लिये घातक होगा। हमारी भाषा का साहित्य और उस में प्राप्त ज्ञान उन लोगों की भाषाओं की तुलना में बहुत पिछड़ा हुआ है। हिन्दी के प्रति इन लोगों की रुचि का कारण उन की अपने सांस्कृतिक सम्बन्धों को बढ़ाने और फैलाने की इच्छा है और यह उन के अपने लाभ के लिये है। हिन्दी भाषियों का लाभ उन लोगों के हिन्दी सीख लेने में नहीं बल्कि हम लोगों के उन के भाषायें सीख सकने में है। अन्यथा हमारे सांस्कृतिक सम्बन्धों की कुंजी उन्हीं के हाथ रहेगी और हमारी सांस्कृतिक न्यूनतायें अधिक होते हुए भी हमारे लिये लाभ का अवसर भी कम ही रहेगा।

डा० कास्सा, डा० स्मेकाल, लेखक संघ की तान्या और मि० यौरिस विमान अड्डे पर साथ आये और विमान चलने तक वहां बने भी रहे। यह समझता हूं कि उन की इस सहृदयता का अधिकारी मैं व्यक्तिगत रूप से तो क्या हो सकता हूं, उन की सहृदयता भारत के प्रति ही थी। ज्यों-ज्यों भारत और पूर्वी प्रजातंत्रों में परिचय और व्यक्तियों का आना-जाना बढ़ेगा हमारे देश परस्पर समीप आते जायेंगे और यह सम्पर्क अन्तर्राष्ट्रीय रूप से सांस्कृतिक वृद्धि के लिये सहायक हो सकेगा।

× × ×

काबुल

प्राहा में लेखक कांग्रेस के समय जर्मन कवि जिमरिंग से परिचय हुआ था। प्रसंग में बात चली कि मैं कुछ समय के लिये जर्मनी जा सकूंगा या

नहीं। बर्लिन देखने की उत्सुकता मुझे स्वयं थी। तीसरे-चौथे दिन ही प्राहा में पूर्वी जर्मनी के राजदूतावास के एक सज्जन ने आकर बात की—"प्राहा से बर्लिन नित्य एक एक्सप्रेस जाती है। रेल से आठ-नौ घण्टे का सफर है, विमान से लगभग एक घण्टे का। मैं कैसे जाना पसन्द करूंगा?"

निमन्त्रण देने वालों के सौजन्य पर विमान यात्रा का भारी खर्चा डालते मन में सकोच तो हुआ परन्तु रेल और सड़क से एक देश की सीमा की चौकी लांघ कर दूसरे देश में प्रवेश करने के दो-तीन अनुभव पहले कर चुका हूं। उस में कुछ न कुछ उलझन अवश्य होती है। विशेषकर ऐसी उलझन हुई थी पाकिस्तान की सीमा पार कर अफगानिस्तान में प्रवेश करते समय। विमान छोड़ कर सड़क से अफगानिस्तान की यात्रा अनुभव के लोभ से ही की थी। इस यात्रा में पत्नी भी साथ थी। विशेषकर पत्नी को साथ ले कर सड़क से अफगानिस्तान जाना सभी लोगों को दुस्साहस जान पड़ा इसलिये प्रसंग तोड़ कर वह बात भी लिख रहा हूं।

दिल्ली से हेलसिंकी जाते समय आरम्भ में विचार काबुल और मास्को के रास्ते विमान से ही जाने का था। अवसरवश दिल्ली में पाकिस्तान के राज-दूतावास के एक सज्जन से भेंट हुई। उन्होंने उलाहना दिया—"भारतीय लेखक हेलसिंकी-मास्को की ही बात सोचते हैं।...खासतार पंजाबी लेखकों को तो लाहौर-पेशावर नहीं भुला देना चाहिये।"

मैंने उत्तर दिया—"पाकिस्तान का परवाना राहदारी मिल सके तब न!"

आधे घण्टे में ही मुझे सपत्नीक पाकिस्तान में से यात्रा करने का अनुमति-पत्र मिल गया। विमान में रखवाई हुई जगह कटवाई और रेल से पेशावर तक और पेशावर से आगे सड़क से यात्रा के लिये कमर बांध ली।

दिल्ली में पाकिस्तानी राजदूतावास के जिन सज्जन ने मुझे पेशावर के मार्ग से अफगानिस्तान जाने के लिये उत्साहित किया था, वे यशपाल को लेखक के ही रूप में जानते थे। पेशावर में जिन पुलिस अफसरों से पाकिस्तान की सीमा लांघ कर अफगानिस्तान में प्रवेश की अनुमति का पत्र लेना था, वे हिन्दी के लेखक यशपाल को तो कम परन्तु लाहौर षड्यन्त्र के मामले में, भगतसिंह के साथी और बहुत दिन फरार रहने वाले खतरनाक यशपाल को ही अधिक पहचानते थे। पुरानी फाइलें उलट-पलट कर देखी जाने लगीं।

पेशावर में पुलिस के अफसरों को सुझाव दिया, यदि मुझे पाकिस्तान से

अफगानिस्तान में प्रवेश का अनुमति-पत्र न दिया जाय तो मैं पाकिस्तान में फिर साढे तीन सौ मील यात्रा कर भारत लौटूंगा। अफगानिस्तान जाने के लिये तो केवल पैंतीस मील का ही सफर मुझे पाकिस्तान में करना होगा। अस्तु, पाकिस्तान की सीमा लांघ कर अफगानिस्तान की सीमा मे प्रवेश की आज्ञा तो मिली परन्तु पेशावर से बिदाई के समय काफी खुफिया पुलिस मौजूद थी। इन पैंतीस मील के आधे में जमरुद के किले पर मोटर लारी के पहुंचते ही सशस्त्र पुलिस सिपाहियों ने स्वागत किया—"हिन्दुस्तानी जर्नलिस्ट यशपाल कौन है ?" और अफसरों के बहुत से सशंक प्रश्नों का समाधान करना पड़ा।

अंतिम चौकी लण्डीखाना पर और भी सतर्कता दिखाई दी। मैं, मेरी पत्नी और अफगान प्रजा का एक सिक्ख परिवार एक साथ यात्रा कर रहे थे। चौकी के लोगों ने बहुत कड़ी निगाह से हमारी जांच-परख की। उस समय इसके लिये कारण भी था। उन दिनों पाकिस्तान और अफगानिस्तान में कुछ अधिक तनातनी चल रही थी। अमरीकन जान पड़ने वाले अफसरों और सशस्त्र पाकिस्तानी सिपाहियों से भरीं जीपें तेजी से सीमांत और पेशावर के बीच आ-जा रही थीं।

चौकी चुंगी की जांच-पड़ताल समाप्त हो जाने पर हम लोग सीमान्त के सूखे नाले और फर्लांग भर की लावारिस धरती अर्थात् 'नोमैन्स लैंड' को पार करने का उपाय सोच रहे थे। पाकिस्तान और अफ़गानिस्तान में तनातनी के कारण इस ओर की सवारियां उस ओर, और उस ओर की सवारियां इस ओर नहीं आ-जा सकती थीं। हम लोग एक गधे वाले से असबाब दूसरी ओर पहुंचा देने का सौदा कर रहे थे कि पाकिस्तानी सैनिकों ने चेतावनी दी—"पहले सियासी चौकी से इजाजत ले लो तब उधर जाने की बात करना।"

धक्का सा लगा, क्या यहां तक आकर भी लौटना पड़ सकता है ! सिपाहियों के साथ फूस की छत से ढंके सफ़ेदी किये छोटे बंगले में पहुंचे। सियासी जांच करने वाले अफ़सर कुछ मिनिट बाद आये। गहरा चश्मा लगाये, दुबले-पतले नौजवान थे, चेहरे पर अफ़सरी की खुश्की। मुझे हैट-पतलून पहने देखकर पहले मुझे ही सम्बोधन किया—"पासपोर्ट !"

मेज के समीप खड़े-खड़े पासपोर्ट उन के सामने बढ़ा दिया। उन्होंने पासपोर्ट को गौर से देखा—"आप जर्नलिस्ट और आथर हैं। नाम···यशपाल ?"

"जी।"

"तशरीफ़ रखिये।" उन्होंने कुर्सी की ओर संकेत किया और चेहरे का

भाव बदल गया ।

"आप फिसाना नवीस (कथाकार) भी तो हैं ?"

स्वीकार किया—"जी हां ।"

अफसर बोले—"मुझे याद है, आप की कुछ कहानियों का अनुवाद मैंने उर्दू में पढ़ा है । बहुत अच्छी कहानियां थीं । इस इलाके में आप कुछ समय ठहर कर इसे देखते तो यहां काफी लिखने योग्य सामग्री पा सकते थे ।"

सड़क पार सामने एक ऊंचे टीले की ओर उन्होंने संकेत किया—"मेरे विचार में खुदाई हो तो इस टीले के नीचे बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री मिल सकेगी । जब भी वर्षा होती है, जानवर चराने के लिये वहां जाने वाले लड़कों को कई चीजें, उदाहरणतः पकाई हुई मिट्टी के छोटे-छोटे खिलौने, नक्काशीदार बर्तनों के टुकड़े वहां धरती से निकले मिलते हैं । यह चीजें बौद्धकाल की मालूम होती हैं । आप को जल्दी न हो तो एक प्याला चाय पीजिये !"

चाय के लिये उन से क्षमा मांगी । विचार प्रकट किया—"सीमा के उस पार क्या होगा; कुछ मालूम नहीं । सवारी कैसे कब मिलेगी; इस का भी भरोसा नहीं । जितना जल्दी पहुंच जायें, अच्छा ही होगा ।"

"आप का विचार ठीक है ।" उन्होंने स्वीकार किया, "एक मिनिट तो ठहरिये, अभी हाजिर होता हूं ।" वे भीतर चले गये । एक ही मिनिट बाद लौट आये । अंजली चमेली के फूलों से भरी थी । बोले, "यह मेरी शुभकामना के रूप में स्वीकार कीजिये । याद रहे तो कभी इस इलाके के बारे में भी लिखियेगा ।" सीमान्त लांघने की अनुमति की मोहर पासपोर्ट पर लगा दी गई ।

सीमान्त की लावारिस या अनाथ भूमि को कड़ी धूप में एक कुली की ऊंचाई के गधे पर असबाब लाद कर पार किया । अफ़गान सीमा में फिर पास-पोर्ट और प्रवेश का अनुमति पत्र दिखाने की रीति हुई । यहां पाकिस्तान और भारत की सीमाओं की तरह चुस्त चौकी-चुंगी और चुस्त वर्दी पहने सिपाही न थे, न उतनी सतर्कता । बेपरवाही से फटी-सी वर्दियां पहने सिपाही मजनूं के पेड़ों के नीचे खाटों पर बैठे और लेटे थे । मिट्टी का हुक्का बोल रहा था । चुंगी-चौकी का दफ्तर एक छप्पर की छत की उदास-सी कोठरी में था । एक हिलती हुई मेज और वैसी ही बेंच । हमारे साथी सर्दार जी दो-तीन बार पहले भी यहां पासपोर्ट दिखा चुके थे । उन्हीं ने सब रस्में पूरी करा दीं ।

यहां नियमित रूप से कोई सवारी उन दिनों नहीं आती-जाती थी । पेशावर

से लंडीखाना तक दर्रा खैबर को पार करती रेल की लाइन तो है ही उस के अतिरिक्त समानान्तर दो बहुत बढ़िया सड़कें भी हैं। आवश्यकता के समय सेनाओं और सामान का आना-जाना अविराम हो सकता है। यह सब प्रबंध भारत की रक्षा के लिये ब्रिटिश सरकार ने किया था। अफगानिस्तान की सीमा में प्रवेश करने पर सड़क के नाम पर मोटर-लारियों के आने-जाने से बन गई लकीरें ही थीं, जहां-तहां छोटे-बड़े पत्थरों से भरी हुई। अब अफगानिस्तान की सरकार भी आवश्यकता समझ कर सड़कें बनवाने का यत्न कर रही थी। यहां से पांच-सात मील दूर सड़क बनाने वालों का एक कैम्प था। कैम्प के लिये पानी लेने के लिये एक ट्रक आता-जाता था। सौभाग्य से तुरत ही ट्रक में रखे पानी के दस-बारह पीपों के साथ ही हम लोग भी असबाब रख कर उस पर बैठ गये। झकोलों के कारण बैठते न बना तो ट्रक पर वर्षा के समय तिरपाल डालने के लिये लगी लोहे की छड़ों को पकड़ कर खड़े हो गये। यह सवारी अफगान सीमा के भीतर बीस मील ढक्का गांव तक ही गई।

ढक्का में बस्ती के सब घर मिट्टी की दीवारों के ही हैं। केवल सरकारी तहसील की इमारत पक्की है। गांव ढक्का नदी के किनारे पहाड़ियों के आंचल में है। निर्मल नीले आकाश के नीचे प्राकृतिक दृश्य सुन्दर है। नदी के किनारे मजनू के वृक्षों का उपवन है। सर्दार जी इस गांव में पहले रह चुके थे। वे अपनी दुकान और लेन-देन के अतिरिक्त गांव में सब से रईस होने के नाते सर-कारी लगान जमा रखने का भी काम करते थे। उन का रोब और रसूख भी था। यहां भी पासपोर्ट और अफगानिस्तान में प्रवेश का अनुमति-पत्र दिखाना जरूरी था। मैं तहसील के बरामदे में ही खड़ा रहा। सर्दार जी मेरा, प्रकाशवती का और अपने परिवार के पासपोर्ट लेकर आगे बढ़े। अफसर की खिड़की से तीन हाथ दूर से ही कमर झुका कर लम्बा सलाम किया और फिर फौजी सल्यूट भी लिया और सब पासपोर्टों पर मोहर लगवा लाये।

सर्दार जी को स्वयं ही जलालाबाद पहुंचने की जल्दी थी। वे इस प्रदेश से परिचित भी थे। बोले—"चलिये टेलीफोन करके पता लें कि कहीं से कोई लारी या ट्रक इस ओर आ सकता है या नहीं।"

मिट्टी की दीवारें और बल्लियों पर थमी वैसी ही छत। भीतर एक ओर ढलकी हुई मेज और उस पर एक बक्से में बैटरियां और पुराने ढंग का टेली-फोन। मेज के समीप दरारें पड़े तख्ते जड़ कर बनाई हुई बेंच पर मुंडे सिर

और सफेद दाढ़ी वाला पठान उकड़ूं बैठा फोन के चोंगे में पश्तो में चिल्ला रहा था। यह डक्का का 'टेलीफोन एक्सचेंज' था। सर्दार जी ने परिचय के अधिकार से कहीं से लारी या ट्रक के इधर आ सकने के विषय में पता करने के लिये अनुरोध किया।

खान ने झल्ला कर कहा—"क्या पता लें। फोन मिल ही नहीं रहा है। सीमांत पर फौजी टुकड़ियां फैली हुई हैं। वे लोग टेलीफोन को पल भर के लिये छोड़ें तब तो।" अब समझ में आया हम कैसी अवस्था में पृथ्वी के झगड़ों से ऊपर ही ऊपर उड़ जाने वाली विमान की सुरक्षित यात्रा छोड़ कर सड़क के अनुभव प्राप्त करने आये हैं पर अब तो आ चुके थे।

सर्दार जी के पूर्व परिचितों ने नदी किनारे मजनू के उपवन में कुछ पलंग और खाटें पहुंचा दी थीं। कुछ खरबूजे और रोटी भी ले आये थे। जून का महीना था। देहली और लाहौर में लू हू-हू कर धूल उड़ा रही थी परन्तु इस बर्फानी नदी के किनारे मजनू के उपवन में बसन्त की प्यारी हवा चल रही थी। गांव के दूसरे बहुत से लोग भी अपनी खाटें लेकर मजनू की छांव में सो रहे थे परन्तु केवल मर्द ही; स्त्री एक भी नहीं। स्त्रियां उस दोपहर में भी घरों में बन्द थीं।

सर्दार जी प्रायः पिछली पीढ़ी से यहां हैं परन्तु छुआछूत के नियम में कट्टर हैं। अफगानिस्तान में सभी हिन्दू-सिखों में यह कट्टरता है। सम्भवतः इसी कट्टरता से वे अपना हिन्दूपन बनाये हैं। अस्तु हमने कुछ रोटी भी खाई और खरबूजे भी। सर्दार जी फिर मुझे साथ ले लारी या ट्रक का पता लेने गांव में घूमने चल दिये। गांव में घूमते समय बच्चों में छः-सात बरस की दो-तीन लड़कियां ही दिखाई दीं। पर्दे का अनुशासन इस गांव में बहुत कड़ा था। सर्दार जी की पत्नी और दो बच्चे भी साथ थे। पेशावर से चलते समय ही सर्दारनी ने अपना सिर-मुंह और शरीर एक खूब बड़ी चादर में लपेट लिया था। उस ने प्रकाशवती को बताया कि अफगानिस्तान में रहते समय उन्हें भी बुरका पहनना पड़ता है। कोई भी स्त्री बिना पर्दे के दिखाई नहीं देती। प्रकाशवती के मुंह न ढकने से सभी लोगों की आंखें बहुत विस्मय से उसकी ओर टिक जातीं। विवश हो उसे भी घूंघट निकाल लेना पड़ा। उस परिस्थिति में कुसंस्कारों की उपेक्षा कर अपनी धारणा पर दृढ़ रहने का साहस करते न बना।

अवसरवश एक और ट्रक आ पहुंचा। यह ट्रक जलालाबाद वापिस लौट रहा था। सर्दार जी ने ट्रक के मालिक को लम्बा सलाम कर बातचीत की। मेरी ओर इशारा कर भी कुछ कहा। कुछ छोटा कद, कुछ मैले सलवार-कमीज, रोयेंदार खाल की टोपी और धूप का चश्मा पहने यह कोई बड़ा खान या प्रभावशाली व्यक्ति था। सभी लोग उससे तीन-चार हाथ की दूरी पर खड़े होकर और झुक-झुक कर बात करते थे। सर्दार जी ने काम बना लिया।

खुले ट्रक पर पहले हमारा असबाब रखवाया और फिर सर्दार जी का। प्रकाशवती और मेरे लिये सर्दार जी के बंधे बिस्तरों पर बैठने की जगह बनाई गई। फिर सर्दार जी के परिवार के लिये, तब खान का अमला ट्रक की जमीन पर लद गया। खान स्वयं ड्राइवर के साथ बैठा।

दो पर्वतमालाओं के बीच की पथरीली घाटी में से पश्चिम की ओर चले जा रहे थे। सड़क की लकीर कभी छक्का नदी के किनारे चलती कभी फेर बचाने के लिये कुछ दूर सीधे। बस्तियां कम और दूर-दूर थीं। फसल उजड़ी-उजड़ी सी। दक्षिण ओर की पर्वतमाला पर स्थान-स्थान पर गढ़िया दिखाई दे जाती थीं। गढ़ियों की दीवारों में आत्मरक्षा के लिये मोर्चे बने हुए थे। मार्ग में पांच-सात बंदूकचियों के साथ एक और खान दिखाई दिये। ट्रक रुक गया। सरदार जी से मालूम हुआ कि यह इलाके के थानेदार हैं। वर्दी की कोई पाबन्दी नहीं थी। थानेदार साहब ट्रक के आगे ड्राइवर और मालिक खान के साथ बैठ गये। दचकों के कारण मेरे लिये बिस्तर पर बैठे रहना भी कठिन था। ट्रक के ऊपर तिरपाल तानने की छड़ पकड़ कर खड़ा रहा। सरदार जी ने बताया कि इस प्रदेश में लूटमार नहीं होती। कत्ल-खून कभी-कभी ही होते हैं। लूट-मार का भय दक्षिणी पर्वत माला के परे अफरीदी, वजीरी और मोहमंद इलाकों में ही रहता है।

ट्रक सड़क की सीधी लकीर छोड़ कर उत्तर की ओर चलने लगा। मिट्टी की खूब ऊंची मोर्चा बनी दीवारों की एक गढ़ी के सामने जाकर रुके। यह इलाके का थाना था। यहां थानेदार साहब को पहुंचाने के लिये ही आये थे। तुरंत खाटें निकाली गईं। चमड़े का हुक्का आया। थानेदार साहब और खान साहब खाट पर बैठे। हम पश्चिम की ओर ढलते सूर्य की ओर देख विकल हो रहे थे। अभी जलालाबाद साठ मील दूर था लेकिन खान थानेदार का आतिथ्य स्वीकार किये बिना आगे न बढ़ सकते थे। समय का विचार यहां नमाज के

वक्तों से ही होता है।

दस-पन्द्रह मील चल कर ट्रक फिर एक धुएं से काली दुकान के आगे खड़ा हो गया। यहां सड़क के किनारे हमारे पहाड़ी प्रदेशों की तरह हर पांच-सात मील पर दो-तीन दुकानें नहीं दिखाई दे जाती। दूर दिखाई देते गावों में तो दुकानें होगी ही। गावों मे दुकान प्रायः अफगान हिन्दू या सिख ही करते हैं। सड़क किनारे ढक्का से चलने के बाद यही दुकान मिली। खान के लिये तुरंत एक बड़ा पलंग बिछ गया। मै और प्रकाशवती ट्रक पर ही बैठे रहे। शेष सब लोग खान के प्रति आदर में ट्रक से उतर कर पलंग के चारों ओर कुछ अंतर से खड़े हो गये। कुछ खरबूजे लाये गये। खान ने जेब से चाकू निकाला और खरबूजे तराशे। पहले दो फांके प्रकाशवती और मुझे भेंट की गईं। इसके बाद खान ने चार-पांच फांकों के ऊपर का बहुत नरम भाग स्वयं खाया। कुछ फांके दो-तीन और लोगों को दी और उठ गये। शेष बचे खरबूजे लोगों ने बांट लिये और ट्रक चला।

खूब अंधेरा हो गया। सड़क की लकीर पर ट्रक का प्रकाश कुछ दूर तक आगे-आगे चल रहा था। कभी ही कोई गधा सवार मार्ग पर दिखाई दे जाता। ट्रक पत्थर की सड़क पर नहीं उखड़े-बिखरे पत्थरों पर चल रहा था तो हिचकोलों की क्या शिकायत होती। पश्चिम से अच्छी ठंडी तेज हवा चलने लगी थी। ट्रक की छड़ पकड़े हाथों में छाले पड़े और फूट गये। जेब से रुमाल निकाल छड़ पर रख कर सहारे के लिये पकड़ लिया। हाथ बदलते समय रुमाल हवा के झोंके में कटी पतंग की तरह उड़ गया। सर्दार जी ने पुकारा—"रोको! कपड़ा उड़ गया!" मैंने तुरंत कहा, "नहीं, रुकिये नहीं चीथड़ा था!" सोच रहा था किसी तरह यह रास्ता समाप्त तो हो।

रात दस बजे के लगभग जलालाबाद पहुंचे। घने अंधेरे में कहीं-कहीं हरीकेन लालटेन जलते दिखाई दिये। चारदिवारी से घिरे कुछ बंगले भी मालूम पड़े परन्तु प्रकाश नहीं था। अंधेरे में भी वायु में नमी, नालियों में बहते जल के शब्द और वृक्षों से स्थान के खूब हरे-भरे होने का अनुमान हो रहा था। बस्ती एक मंजिले छोटे-छोटे घरों की थी। बाजार में एक जगह गैस भी दिखाई दिया। ट्रक रुका। तीन-चार सिख सरदार जी की अगवानी के लिये मौजूद थे। सरदार जी का सामान और परिवार उतरा तो हम भी उतर जाना चाहते थे कि उन्हीं के सहारे कहीं रात काट लें। मैं एक बार पहले थोड़ा और रुख हो

आया था। जानता था वहां बिस्तरा साथ लेकर यात्रा का रिवाज नहीं है। रेल, होटल में सब जगह बिस्तर मिलता है इसलिये बिस्तर साथ नहीं थे।

सरदार जी ने कहा—"आप लोग ट्रक में बैठिये खान आपके लिये इंतजाम कर देंगे।" खान कैसा इंतजाम कर देंगे इसका अनुमान नहीं था परन्तु इतना तो स्पष्ट था कि सरदार जी अब हमारा स्वागत नहीं कर रहे थे। प्रकाशवती की इच्छा रात हिन्दू-सिख परिवार के साथ ही बिता सकने की थी परन्तु मजबूरी में चुप रहे, जो होगा देखा जायगा।

ट्रक बन्द हो चुके बाजार से कुछ दूर दोनों ओर ऊंचे सफेदों से घिरी सूनी सड़क पर चला और एक प्रकाशमान ऊंची इमारत के हाते में प्रवेश किया। प्रकाश बहुत मध्यम था परन्तु था बिजली के बल्बों का। खान ने हाथ मिला कर कहा—"यह शाही मेहमानखाना है। यहां आराम कीजिये।" खान पश्तो में ही बोले। अनुवाद एक समीप खड़े आदमी ने किया।

मेहमानखाने में भारत की ओर जाने वाले दो अमीर अफगान व्यापारी भी ठहरे हुए थे। सब कमरों में और बीच की दीर्घिका में भी कालीन बिछे हुए थे। बैरे ने आकर पूछा—"खाना किस किस्म का खाइयेगा?"

उत्तर दिया—"जिस किस्म का तैयार हो।" भूख तो लगी थी और मसहरीदार पलंग देख कर एकदम लेट जाने की इच्छा उस से भी बलवती थी।

गुसलखाने में गरम पानी था। फ्लश का प्रबन्ध था। खाने के लिये नान और मुर्ग मिला परन्तु प्लेटों में कांटे-छुरी के साथ।

अफगान सौदागरों से मालूम हो गया कि जलालाबाद और काबुल के बीच बहुत अच्छी सड़क है और लगातार बस भी चलती है पर सुबह तड़के ही बस का प्रबन्ध कर लेना उचित होगा।

सुबह जल्दी ही नाश्ते के पश्चात बैरे ने दस्तखत के लिए बिल पेश किया। बिल था लगभग पचहत्तर रुपये का। बैरे को आशा थी, हमें मेहमानखाने में लाने वाले खान स्वयं बिल चुकायेंगे परन्तु मैंने बिल स्वयं चुका कर उस पर 'चुकता' लिख देने का आग्रह किया ताकि बिल खान के सामने न पेश किया जा सके।

पेशावर में काबुल के भारतीय राजदूतावास के हवलदार लक्ष्मणसिंह से अफगान और भारतीय रुपयों के विनिमय दर के विषय में सूचना मिल चुकी थी। पेशावर के विनिमय के व्यापारी एक भारतीय या पाकिस्तानी रुपये के

चार अफगानी देना चाहते थे। लक्ष्मणसिंह ने और सरदार जी ने भी हमें बता दिया कि सरकारी भाव तो एक और चार का ही है परन्तु वास्तव में एक भारतीय रुपये के सात, आठ, नौ अफगानी बाजार से मिल सकेंगे। पेशावर में लक्ष्मणसिंह से भारतीय बीस रुपये देकर एक सौ चालीस ले लिये थे। इस भाव से पचहत्तर भी कुछ अधिक नहीं जंचे। बैरे को दस रुपये बख्शीश देने पर लम्बी सलाम भी मिली।

जलालाबाद से काबुल सौ मील है। सुबह ही जाकर बस में ड्राइवर के साथ की दोनों सीटें खरीद लीं। ड्राइवर ने शायद मेरी पतलून और हैट की वजह से या साथ शाही मेहमानखाने का बैरा देख कर कहा—"सवासौ रुपये होंगे।" स्वीकार कर लिया।

हमारे पीछे लारी में कितने आदमी थे, यह गिन पाना सम्भव न था। कुछ छत पर भी बैठे थे। भीड़ के कारण किसी को आपत्ति न थी। हमारे देश में मोटर के बोझ खेंच सकने की शक्ति की एक सीमा समझी जाती है। अफगानिस्तान में ऐसा कोई मिथ्या संस्कार नहीं है।

काबुल नदी तक जलालाबाद की घाटी बहुत हरी-भरी है। यहां एक चीनी मिल भी है और गन्ने की खेती भी होती है। सड़क किनारे क्यारियों में टमाटर और दूसरी चीजें भी दिखाई दीं।

काबुल के आगे सड़क बहुत दूर तक बिलकुल नदी तट के साथ-साथ जाती है। आस-पास रेगिस्तान नहीं। नदी के दोनों ओर पहाड़ ही हैं परन्तु खेती के चिन्ह कहीं-कहीं ही दिखाई दिये। कुछ दूर जाकर नदी का साथ छूट जाता है परन्तु शनै-शनै पहाड़ों की ऊंचाई बढ़ती जाती है। रूखी, नंगी चट्टानें, जिन पर घास या बनस्पति का एक पत्ता भी नहीं। चट्टानें एक से दूसरी बढ़ कर नीले आकाश की ओर उठती जाती हैं। हर अगली चट्टान या पहाड़ पहले से ऊंचा। आश्चर्यजनक मात्रा में बोझ लिये बस ऊपर चढ़ती चली जा रही थी। यह इसलिये सम्भव था कि सड़क तारकोल की बहुत अच्छी बनी हुई है। जलालाबाद से पेशावर तक अच्छी सड़क अफ़गान सरकार ने शायद इस दूर-दर्शिता के कारण नहीं बनाई थी कि शत्रु को देश में प्रवेश की सुविधा हो जायगी। उस समय यह नहीं सोचा गया कि सीमा पर शत्रु को रोकने के लिये वहां भी अच्छी सड़क होना आवश्यक है। अस्तु, अब तो सड़कें बनाने का काम जोर से चल रहा था।

इन रूखे, नंगे, धूसर, काले पहाड़ों की ऊंचाई समुद्रतल से कितनी है कह नहीं सकता परन्तु वे गहरे नीले आकाश में चुभ गये से जान पड़ते हैं। भारत या योरुप अथवा काकेशस के पहाड़ों की तरह इन पहाड़ों में कहीं जल रिसता नहीं दिखाई देता। हम तो आधुनिक यंत्रवाहन की सहायता से इस राह पर अठारह-बीस मील प्रति घंटे की चाल से चले जा रहे थे। मोटर की अनुपस्थिति में गधों, घोड़ों, ऊंटों पर इतना सफर एक दिन के कड़े परिश्रम का फल होता होगा परन्तु दर्रा खैबर से काबुल, कंधार, गजनी का यह मार्ग तो प्राग ऐतिहासिक काल से चलता ही आया है। तब भी व्यापारियों के काफिले इन मार्गों से भारत आते-जाते थे। तब इन खुश्क बीहड़ रास्तों पर यात्रा में कितने पशु और मनुष्य बलिदान होते होंगे? तब तो यहां तारकोल बिछी बढ़िया सड़कों की भी कल्पना नहीं की जा सकती थी। सड़क बनाने की आवश्यकता किसे थी? केवल मार्ग का चिन्ह मात्र रहा होगा। मनुष्य को ऐसे किस धन का लोभ था जिस के लिये वह अपने प्राण जोखिम में डालता था। यदि पेट की ज्वाला के कारण व्याकुल मनुष्यों के इन मार्गों को पार करने की कल्पना की जाये तो एक बात है परन्तु सिकन्दर यदि इस मार्ग से आया होगा तो उसने लूट और साम्राज्य विस्तार के प्रलोभन का क्या मूल्य दिया होगा! मौर्य सम्राटों की सेनायें तो कपिशा (काबुल) को विजय कर सोवियत की सीमा पर वंक्षु नदी, जिसे अब दरिया आमू कहते हैं, किस लिये पहुंची थीं? वह कौन ऐसा धन था जिस के बिना मौर्य सम्राटों का पाटलीपुत्र में निर्वाह नहीं हो सकता था? इन्हीं मार्गों से मुहम्मद गजनवी और बाबर भी आये। निश्चय ही साढ़े तीन हाथ के प्राणी—मनुष्य की सहन शक्ति और साहस की कोई सीमा नहीं। उस का साहस किसी भी दिशा में जा सकता है।

काबुल नदी तो काबुल नगर में से होकर प्रकृति द्वारा दिये मार्ग से ही पाकिस्तान में सिंधु नदी में मिलने जाती है परन्तु मनुष्य इतने लम्बे मार्ग में समय नष्ट नहीं करना चाहता। बहुधा सड़क नदी का साथ छोड़ कर पहाड़ों को काटती, लांघती आगे बढ़ जाती है। जलालाबाद से साठ मील लगभग इन पहाड़ों में विचित्र दृश्य दिखाई देता है। रेल की छोटी-छोटी पटरियां बिछी हैं और बिजली से चलने वाले यंत्रों के शब्द से आकाश गूंजता रहता है। यहां काबुल नदी की धार को बांध कर बिजली पैदा की जा रही है। यह काम प्रायः जर्मन इंजीनियरों के हाथ में है। कुछ मील आगे एक नये ढंग के बंगलेनुमा

मकानों की बस्ती कछुए की पीठ जैसी पहाड़ी पर बसा दी गई है। यहां से काबुल तक खूब ऊंचे बिजली के खम्भे लगे गये हैं। १९५५ के जून में लोगों को आशा थी कि तीन-चार मास में सम्पूर्ण काबुल बिजली से जगमगा उठेगा और जल का संकट भी न रहेगा।

इस स्थान से सड़क और नदी का साथ छूट जाता है। सड़क चट्टानों के पहाड़ पर से नहीं बल्कि कंकरीली मिट्टी के पहाड़ पर की पीठ पर से गुजरती है। यह पहाड़ भी कम ऊंचा नहीं। ऊंचाई के कारण वायु में कुछ विरलता अनुभव होती है। दूर से समतल पर हिमराशियां दिखाई देती हैं। पहाड़ की ऊंचाई के कारण हो या इस मिट्टी की प्रकृति के कारण, वृक्ष कहीं नहीं हैं। केवल हाथ-हाथ भर ऊंची घास है। शिमला और कुल्लू के बीच के पहाड़ों का मेरा अनुभव है कि समुद्र-तल से दस-ग्यारह हजार फुट ऊंचे चले जाने पर प्रायः वृक्ष नहीं मिलते। सम्भव है यहां भी इतनी ऊंचाई हो।

दोपहर का सवा बज रहा था। बस मजनू के पेड़ों की छाया में बहती जल की नाली के समीप बनी दुकान के सामने ठहरी। ठहरने का कारण भूख के समय का विचार था या नमाज के वक्त का; कह नहीं सकता। ड्राइवर और अधिकांश लोगों ने नाली के पानी में हाथ-मुंह-पांव धोये और नमाज अदा करने लगे। इसी नाली का जल लोग पी भी रहे थे। दो अफगान सिख जवान भी इस बस से काबुल जा रहे थे। हमें यह जल लेते हिचकते देख उन्होंने विश्वास दिलाया कि जल बहुत ठंडा और मीठा है, यह जल गुणकारी भी है। हमारी हिचक का कारण समझ एक नौजवान कुछ दूर ऊपर जाकर हमारे लिये जल ले आया। नाली जाने कितने खेतों को लांघ कर आ रही थी। बस से उतरे लोग निपटने के लिये उसी ओर जा रहे थे।

यात्रियों में अधिकांश अपनी रोटी साथ बांधे थे। कुछ ने एक-एक बड़ी रोटी दुकान से खरीद ली। रोटी प्रायः रूखी ही खाई जा रही थी। कुछ लोगों ने रोटी भिगोने के लिये बिना दूध और चीनी का एक-एक प्याला कहवा ले लिया। कुल मिला कर यात्री पचास से कम न रहे होंगे। दुकान पर एक छोटे बर्तन में मुर्ग का सालन मौजूद था। हमारे अतिरिक्त किसी दूसरे यात्री ने वह नहीं खरीदा। अफगानिस्तान में सर्वसाधारण के भोजन का यही स्तर है।

काबुल नगर पहाड़ की पीठ पर है। चुंगी घर पहाड़ी के नीचे छोटा-मोटा किला ही समझिये। बस को किले के भीतर लेकर फाटक बन्द कर लिया गया

तो जान पड़ा कि एक-एक कपड़े की परत उधेड़ी जायगी। हुआ यह कि ड्राइवर और पांच-सात मुसाफिरों ने जाकर चुगी के अधिकारियों से बात-चीत की और परवाने लेकर लौट आये और बस को मार्ग देने के लिये किले का दूसरा फाटक खुल गया।

काबुल नगर में तीन बजे के लगभग पहुंच गये। भाड़ा चुकाने के लिये मेरी जेब में अफगानी रुपये कुछ कम पड़ रहे थे। ड्राइवर ने जिद्द कि पाकिस्तानी रुपया तो वह हरगिज नहीं लेगा। हिन्दुस्तानी रुपया ले सकता है परन्तु सरकारी निरख अर्थात् एक और चार के भाव से ही लेगा। मैं आस-पास रुपया बदलने वाले का पता पूछ रहा था कि एक बहुत मैले-फटे से कपड़े पहने सरदार जी ने नये आये भारतीय को पहचान कर पूछा—"क्या परेशानी है ?"

सरदार जी से रुपया बदलवा देने की सहायता पंजाबी में मांगी—"आप भी क्या बातें करते हैं।" सरदार जी ने पंजाबी में उत्तर दिया। एक सौ अफगानी रुपये के नोट जेब से निकाल कर मेरे हाथ में थमा दिये, "इस समय अपना काम चलाइये।"

सरदार जी को अपना नाम बता कर कहा—"हम होटल काबुल में ठहरेंगे। आप कल अपना रुपया जरूर ले जाइयेगा। मेरे लिये आप को ढूंढना कठिन होगा।"

सरदार जी ने बेपरवाही से कहा—"बादशाओ, क्या बात है। आ जायगा रुपया क्या जल्दी है।" और एक टांगा हमारे लिये बुला दिया।

काबुल में विदेशी लोगों, विशेष कर योरुपियनों के लिये एक ही होटल है, होटल काबुल। होटल सरकारी है। प्रतिदिन का खर्चा सब मिला कर प्रति व्यक्ति साठ-पैंसठ अफगानी हो जाता है। होटल में कोई अफगानी नहीं ठहरता। भारतीय हिन्दू व्यापारी प्रायः गुरुद्वारे में या किसी हिन्दू के यहां ही ठहरते हैं। होटल अच्छा ही है। बिजली और फ्लश का प्रबन्ध जरूर है। खाना भारतीय और योरुपियन ढंग का मिला-जुला है। परोसने का ढंग योरुपियन है। मैंने अफगानी ढंग के खाने की मांग की तो बैरे ने लजा कर उत्तर दिया—"हुजूर, यहां सिर्फ विलायती खाना बनता है।"

होटल के सब बैरे हिन्दुस्तानी बोल लेते हैं। लाहौर, दिल्ली या बम्बई ट्रेंड होने का गर्व करते हैं। होटल का मैनेजर हिन्दुस्तानी या अंग्रेजी नहीं समझता

था। वह पश्तो, फारसी और फ्रेंच ही जानता था। काबुल में अंग्रेजी की अपेक्षा फ्रेंच का चलन अधिक है। अंग्रेजी और जर्मन प्रायः बराबर ही चलती है। कुछ लोग रूसी भी जानते हैं। सरकार की ओर से फ्रेंच को ही प्रश्रय दिया जाता रहा है। काबुल में इन भाषाओं के समान रूप से चलने का कारण यह है कि यहां शिक्षा का काम फ्रेंच, जर्मन, अंग्रेज पदाधिकारियों द्वारा ही किया गया है। अफगान सरकार किसी भी विदेशी शक्ति को अधिक अवसर देने की नीति के विरुद्ध थी। अफगान सामन्ती और रईस परिवार सांस्कृतिक दृष्टि से फ्रांस को और वैज्ञानिक दृष्टि से जर्मनी को इंगलैंड की अपेक्षा श्रेष्ठ समझते थे। भारतीय सीमा से ब्रिटेन के आक्रमण की आशंका बनी रहने से इन्हें उन से कुछ चिढ़ भी थी।

काबुल दो है या कहिये काबुल दो भागों में बंटा हुआ है। एक पुराना काबुल और दूसरा नया काबुल। अमीर या बादशाह के महल शहर से दूर हैं। काबुल नदी शहर के बीचोंबीच बहती चली गई है। काबुल नदी से काटी गई छोटी-छोटी नहरें या नालियां शहर की सड़कों के साथ बहती है। यह जल ही काबुल नगर के जीवन का मुख्य आधार है। लोग इन्हीं नालियों में कपड़े और बर्तन धो लेते थे और यही जल पीने के लिये भी ले लेते थे। पगमान से जल लाकर भी कुछ नल लगाये गये हैं। होटल-काबुल में यह बताया गया था कि होटल में जल उबाल कर और रेत में छान कर दिया जाता है परन्तु हमारे पड़ोस के कमरे में ठहरी हुई जर्मन इंजीनियर की पत्नी ने हमें सावधान कर दिया था—"मैं सात वर्ष से अफगानिस्तान में हूं। जल के उबालने के विषय में अपनी आंख के अतिरिक्त किसी के कहने का विश्वास न करना।" हम ने जल न पी कर कहवा पीने का ही नियम बना लिया था। अफगानिस्तान में अफगान प्रजा के लिये कानूनन शराब का निषेध है क्योंकि शराब इस्लाम में हराम है। विदेशी विशेष आज्ञा से शराब रख सकते हैं परन्तु इस कानून के बारे में विशेष सिरदर्दी नहीं की जाती। अफीम, भांग और गांजे के प्रयोग का विरोध नहीं है।

१९५५ जून में नये बने काबुल का कुछ भाग तो रस-बस गया था। शेष तेजी से बन रहा था। इस वर्ष प्रकाशवती फिर काबुल के रास्ते मास्को गई थीं। उन का कहना है कि अब यह भाग पूरा बस गया है और सड़कें भी अच्छी बन गई हैं। पुराने काबुल नगर में बाजार और गलियां बहुत तंग है जैसी कि हमारे यहां किसी पुराने मैले नगर में हो सकती हैं। आमने-सामने से आते-जाते लोगों का फंसे बिना निकल जाना सम्भव नहीं।

काबुल में पुराने रहने वाले हिन्दू प्राय: सब हिन्दू गुजर (हिन्दुओं के लिये शरण स्थान) मुहल्ले में रहते हैं। सब हिन्दु परिवारों के घर एक साथ खूब तंग गलियों में हैं क्योंकि सब हिन्दुओं का एक साथ सिमिट कर रहना आवश्यक था। नाक पर रुमाल रखे बिना इन गलियों से गुजर जाना कठिन है। यह मुहल्ला दूसरे मुहल्लों से साफ समझा जाता है। यहां बीच मे आंगन छोड़ कर चारों ओर मकान बनाये जाते हैं। मुख्य दरवाजा बहुत छोटा रहता है। आंगन के भीतर की दीवारें और खिड़कियां सब लकड़ी की होती हैं। मकान चाहे तिमंजला हो बाहर से दीवारें मिट्टी की ही दिखाई देंगी। भीतर चाहे दीवारें और फर्श कीमती कालीनों से ढके हो पर मकानों का बाहिरी रंग-ढंग दीनता सूचक बनाये रखने का प्रयोजन लूट-मार के भय से समृद्धि का प्रदर्शन न करना है।

बहुत से हिन्दू परिवार काबुल में मुहम्मदगोरी के समय से बसे हुए हैं। मुहम्मदगोरी इन लोगो को अफगानिस्तान के व्यापार के विकास के लिये साथ ले गया था। यह लोग जब-तब पंजाब में आकर भी शादी व्याह कर जाते हैं, अधिकांश में काबुल से ही सम्बंध हो जाते हैं। पिछले अढ़ाई-तीन-सौ वर्ष में इन हिन्दुओं के साथ कोई फिसाद या लूटमार नहीं हुई परन्तु आतंक अब भी बना है। यह लोग पश्तो भी अपनी मातृभाषा की तरह ही बोलते हैं परन्तु इनके घरों में अब तक पंजाबी बोली जाती है। अधिकांश हिन्दू केश और दाढ़ी न रखने पर भी सिख धर्म के अनुयायी हैं और उन के धार्मिक विश्वास बहुत कट्टर हैं। हिन्दू गुजर मुहल्ले में दो गुरुद्वारे और मन्दिर भी हैं। सब हिन्दू पंजाबी परिवारों के बच्चे इन गुरुद्वारों में लय से गुरुमुखी रटते रहते है और किसी अतिथि के आने पर बहुत लम्बी पुकार लगाते हैं—"जो बोले सो निहाल, सत्त सिरी अकाल। वाह गुरूजी का खालसा, वाह गुरूजी की फते !" व्यापार अधिकांश में हिन्दुओं और सिखों के ही हाथ में है। यह लोग केवल काबुल में ही नहीं, गजनी, कंधार और हेरात आदि शहरों में और देहात में भी बसे हुए हैं।

किसी समय हिन्दू केवल हिन्दू गुजर मुहल्ले में ही रह सकते थे और पुराने समय में उन के लिये सदा लाल पगड़ी बांधने की सरकारी आज्ञा थी। अब यह प्रतिबंध नहीं है। अनेक हिन्दू नये काबुल के खुले आधुनिक मकानों में भी आ बसे हैं।

काबुल में म्युनिसिपल कमेटी की तरफ से मकानों की गन्दगी नगर से बाहर ले जाने की कोई व्यवस्था अब भी नहीं हैं। काबुल में भंगी या मेहतर का पेशा करने वाले लोग साधारणतः है ही नहीं। मकानों में संडास प्रायः नहीं होते। काबुल नदी की पतली धार के दोनों ओर नदी के सूखे में ही लोग निवृत्ति ले लेते है। जो लोग सुविधा या पर्दे के विचार से घर में संडास बना लेते हैं उन्हें दुर्गंध भी सहनी पड़ती है। संडास के सूख जाने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं इसलिये प्रायः दुर्गंध बहुत रहती है। इस्लामी सल्तनत में इस गंदगी को समेट लेने वाले जीव सुअर भी नहीं है। मार्च में पहाड़ों पर बरफ पिघलने पर नदी में बाढ़ आती है तो सफाई हो जाती है। सड़कें खास कर नये काबुल की सड़कों पर झाड़ू और सफाई की ही जाती है। इस सरकारी काम के लिये बेगार ली जाती है। कानूनन इस सरकारी बेगार से किसी भी साधारण नागरिक को छूट नहीं हैं। इस विषय में अमीरी गरीबी और वंश का भी भेद नहीं है। क्रम से जिन लोगों का नाम आ जाय, उन्हें यह काम निबाहना ही पड़ता है। यह नियुक्ति छः मास के लिये होती है। इस काम के लिये एवजी दी जा सकती है। पैसा दे सकने वाले लोग अपनी एवज में कोई आदमी नौकर रख कर सरकार को दे देते है।

भारत में पठान और अफगान एक ही बात समझी जाती है परन्तु यह दो भिन्न-भिन्न जातियां हैं। पठान लोग पाकिस्तान और अफगानिस्तान के बीच के प्रदेश में बसते हैं। अफगानों के रूप-रंग पर मंगोल प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। यह लोग स्वाभाव से शांति-प्रिय होते हैं। देश में कोई उद्योग-धंधा न होने के कारण आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। व्यवस्था अभी तक सामन्ती ढंग पर ही है। अफगानिस्तान का समुद्री मार्गों से कहीं सम्बन्ध नहीं है इसलिये वह अंतर्राष्ट्रीय प्रभावों से और संसार में हो चुके औद्योगिक और सांस्कृतिक विकास से कुछ हद तक अछूता रह गया है। साधारण अफगान कहवा रोटी या प्याज रोटी से संतुष्ट हो जाता है परन्तु सामन्ती घरानों का स्तर बहुत ऊंचा है। उन के यहां पूर्वी और पश्चिमी दोनों ढंग के बैठकखानों का प्रबंध रहता है। एक रईस के यहां निमंत्रण पाने में सफलता हुई थी। चाय के साथ केक-पेस्ट्री और आइसक्रीम भी मौजूद थी। अफगान सेना के सिपाही को पचास अफगानी रुपये—भारतीय पांच-छः माहवार और लगभग तीन पाव आटा रोजाना के हिसाब से तनखाह मिलती है। अच्छी वर्दी कम ही दिखाई देती है।

पेशावरी पठानों और काबुली अफगानों के पहरावे-पोशाक और व्यवहार में बहुत अंतर है। कंधार, गजनी के लोग तो पठानों की तरह कुल्हा-पगड़ी, सलवार वगैरा पहने दिखाई देते हैं परन्तु काबुल में ऐसी पोशाक बहुत कम नजर आती है। साधारण स्थिति के लोग प्रायः कोट-पतलून पहने ही दिखाई देते है। सिर पर मेमने की खाल की नीची दबी हुई-सी टोपी रहती है।

लाहौर के अनेक बाजारों में घूमने पर हमें तीन-चार स्त्रियां ही दिखाई दी थीं। पेशावर में तो एक भी नहीं। काबुल के बाजारों में खास कर नये बसे काबुल में स्त्रियां प्रायः ही आती-जाती और बाजार करती दिखाई देती हैं। स्कूलों से आती-जाती लड़कियों के झुण्ड भी दिखाई देते हैं। यह सभी स्त्रियां और लड़कियां योरुपियन स्त्रियों की पोशाक में अर्थात् घुटनों से कुछ नीचे तक के फ्राक, पारदर्शी मोजे और ऊंची एड़ी के जूते पहने थीं। अलबत्ता चेहरे पर नकाब या पोशाक पर बुरका जरूर था। खुले चेहरे स्त्रियां केवल योरुपियन राजदूतावासों या कभी भारतीय राजदूतावास की ही दिखाई दे सकती हैं। काबुल में बसे हुये हिन्दू परिवारों की स्त्रियां बिना बुरके के बाहर नहीं जा सकतीं। यदि कोई स्त्री मुंह उघाड़े खिड़की में कुछ देर खड़ी रहे तो नीचे सड़क पर मेला लग जायगा। यहां के सर्व-साधारण स्त्री को खुले मुंह देख कर विस्मित और उत्तेजित हुये बिना नहीं रह सकते।

प्रकाशवती और मैं एक दुकान पर भारतीय रुपया बदलवा रहे थे। एक काबुली स्त्री फ्राक पर बुरका पहने आई। सौदे के दाम के विषय में निस्संकोच बहस की। दुकानदार अफगान हिन्दू था। प्रकाशवती ने उस से कहा—यहां तीन दिन में मैंने एक भी अफगान स्त्री का चेहरा नहीं देखा। यह तो मालूम हो कि यहां की स्त्रियों का चेहरा-मोहरा कैसा होता है। इन्हें मुझ से तो कोई पर्दा नहीं होना चाहिये।

दुकानदार ने प्रकाशवती की बात पश्तो में बुरकापोश अफगान स्त्री को समझा दी। स्त्री ने प्रस्ताव किया—बेशक औरत से क्या पर्दा। यह स्त्री आलमारी के पीछे आ जाये मैं इसे अपना चेहरा दिखा दूंगी। इस के पश्चात् एक आधुनिक विचार अफगान के घर जाने पर उस की स्त्री और बहिन को बिना बुरके के केवल फ्राक पहने ही देखा। इस परिवार की लड़कियां पेरिस में शिक्षा पाई हुई थीं।

फ्राक और बुर्के के मेल के रूप में आधुनिकता और रूढ़िवाद के समन्वय

का इतिहास सम्भवतः अमीर अमानुल्ला के अफगानिस्तान को अपने हुक्म से आधुनिक बना सकने के प्रयत्नों में है। अमानुल्ला के लिये ऐसा स्वप्न देखना अस्वाभाविक नहीं था। उस ने इतिहास में पीटर महान के रूस को आधुनिक बनाने के प्रयत्नों की कहानी पढ़ी होगी और अपने समकालीन कमालपाशा के टर्की को रूढ़िवाद से मुक्त कर देने के प्रयत्नों की सफलता भी देखी थी परन्तु अफगानिस्तान की सीमा पर बैठे अंग्रेजों को अफगानिस्तान की जागृति में अपने साम्राज्य की सत्ता के लिये भय दिखाई दिया। उन की सहायता से पेशावर का भिश्ती बच्चा सक्का आधुनिक शस्त्रास्त्र लेकर अफगानिस्तान में रूढ़िवाद की रक्षा के लिये पहुंच गया। अंग्रेजों की कृपा से मुल्लाओं का समर्थन और आशीर्वाद भी बच्चा सक्का को प्राप्त हो गया। बेचारे अमानुल्ला को काबुल छोड़ कर भागना पड़ा। सुधार के असफल प्रयत्नों के स्वरूप काबुल में स्त्री शिक्षा तो भाग गई, पोशाक बदल गई परन्तु इतने सुधार को सह्य बनाने के लिये बुर्के की आड़ भी लेनी पड़ी।

यह बात नहीं कि पर्दे और दूसरी रूढ़ियों के जबरदस्ती लादने के कारण शिक्षित वर्ग में असन्तोष न हो। असन्तोष तो है परन्तु मुल्लाओं का जोर अभी बहुत है। क्रांति की भावना की सफलता के लिये परिस्थितियों की भी आवश्यकता होती है। यहां के लोग इस सांस्कृतिक दमन को अनुभव कर रहे हैं। उन्हें आशा भी है कि रूढ़िवाद का यह दौर-दौरा दो-चार बरस का ही मेहमान है। लोग सामन्तवादी व्यवस्था से भी सन्तुष्ट नहीं, औद्योगिक विकास की आवश्यकता को भी अनुभव कर रहे हैं। यह सब चेतना अन्तर्राष्ट्रीय प्रभावों के मेल से निकट भविष्य में क्या रूप लेती है, यह समय ही बतायेगा।

काबुल से हम लोग सोवियत विमान द्वारा प्रातः नौ बजे सोवियत देश की ओर चले थे। विमान को हिन्दुकुश के शिखरों के ऊपर से उड़ना पड़ता है इसलिये विमान बहुत ऊंचे पर से जाता है। सोवियत का यह छोटा विमान प्रशराइज्ड नहीं था इसलिये बहुत ऊंचाई पर चले जाने पर सब लोगों को ओषजन वायु की नालियां नाक पर लगा लेने के लिये दे दी गईं। ऊपर समुद्र के जल जैसा गहरा नीला आकाश और नीचे हिमाच्छादित पर्वतमालाओं का विस्तार। अवाक् देखते ही बनता था। हिन्दुकुश लांघ कर विमान नीचे आने लगा। विमान परिचारिका ने आकर नीचे एक मटमैली-सी नदी की ओर संकेत कर कहा—"आमू दरिया! यह नदी अफगानिस्तान और सोवियत जनतन्त्र

संघ की सीमा है।" काबुल से प्रायः सवा घण्टे में हम सोवियत के नगर तिर्मिज के विमान अड्डे पर उतर गये।

वहां दूसरी ही दुनियां थी। यहां मोटरें, बसें और रेल भी थी। तिर्मिज सोवियत के उजबेकिस्तान जनतंत्र का नगर है। लोगों का रंग-रूप अफगानों से मिलता-जुलता ही है। जलवायु काबुल से काफी गरम है। लोगों की पोशाकें काबुल की अपेक्षा बहुत अच्छी थीं। मर्द प्रायः बुशशर्ट और पतलून में थे। स्त्रियां फ्राक पहने थीं। कढ़ी हुई टोपियां उजबेक ढंग की थीं। केवल एक प्रौढ़ा लम्बा कुर्ता, सलवारनुमा पायजामा पहने और चादर ओढ़े दिखाई दीं। उस की गठरी-मुठरी से ही जान पड़ता था कि किसान परिवार की है। इस प्रौढ़ा के कान बालियों के लिये किये गये छेदों से भरे थे पर बालियां नहीं थीं। नाक में भी छेद था। प्रकाशवती के नाक में मुंदा छेद देख कर प्रौढ़ा को बहुत आत्मीयता अनुभव हुई। भाषा की कठिनाई के कारण बोल तो कुछ सकती नहीं थी परन्तु उसने अपनी नाक का छेद दिखाया और प्रकाशवती के नाक के छेद की ओर संकेत किया और इस सादृश्य और आत्मीयता के भाव से विह्वल हो गई। आत्मीयता के प्रतीक स्वरूप एक बहुत बड़ा गुच्छा काले अंगूरों का उस ने प्रकाशवती को भेंट कर दिया। प्रौढ़ा के जाल से बने थैले में लाइमजूस और बियर की बोतलें भी थीं। यह स्त्री भी ताशकंद जाने के लिये हमारे साथ विमान की प्रतीक्षा कर रही थी। यह प्रौढ़ा इस प्रदेश के अतीत की स्मृति थी।

मैंने कठिनता से अंग्रेजी बोल सकने वाले दुभाषिये से पूछा—"यहां स्त्रियां परंजा (बुर्का) नहीं पहनतीं ?"

उत्तर मिला—"अब रिवाज नहीं रहा। जिन्हें मर्दों के समान ही खेतों, कारखानों, दुकानों और दफ्तरों में काम करना है, वे परंजा की असुविधा कैसे निभा सकती हैं और उन्हें परंजा पहनने के लिये कौन विवश कर सकता है ? बहुत ढूंढ़ने पर शायद किसी गांव में एक-दो बुढ़िया परंजा पहनने वाली मिल भी सकेंगी।"

× × ×

पूर्वी जर्मनी

पूर्वी जर्मनी के लेखक संघ के निमंत्रण पर बर्लिन गया था। आशा थी, विमान-स्थल पर ही कोई व्यक्ति मिलेगा। पूर्वी बर्लिन का विमान-स्थल बहुत साफ-सुथरा, छोटा और संक्षिप्त-सा है। विमान से उतरते समय सामने चार-पांच स्त्री-पुरुष हाथों में फूलों के गुलदस्ते लिये दिखायी दिये। यह अनुमान अस्वाभाविक न था कि इन में से कोई मेरी प्रतीक्षा में भी होगा परंतु मेरे प्रति मेरे भूरे रंग के बावजूद उन में से किसी ने कोई उत्सुकता नहीं दिखलायी। पांच-सात मिनिट में मेरे साथ के यात्री और फूल लेकर अगवानी करने वाले सब लोग विलीन हो गये। विमान की पुलिस और चुंगी-पासपोर्ट के लोगों के बीच में ही अकेला यात्री रह गया। निराशा के साथ चिंता भी हुई। कारण, मैं नये स्थान में बिल्कुल अकेला था। जर्मन भाषा का एक शब्द भी नहीं जानता था। इस भरोसे कि निमंत्रण पर जा रहा हूं, प्राहा से यात्रा की हुण्डी भुना कर कुछ जर्मन सिक्का भी ले लेना अनावश्यक समझा था। चुंगी-पासपोर्ट देखने वाले और पुलिस के लोग मेरी ओर देख रहे थे कि बेकार क्यों खड़ा हूं।

एक ही उपाय था कि नगर में लेखक संघ के कार्यालय में टेलीफोन करके सूचना दूं कि मैं आ गया हूं परन्तु इतनी बात भी अधिकारियों को किस भाषा में कहता। एक नौजवान अधिकारी से अंग्रेजी में बात करने का यत्न किया। उसने अपनी नीली-नीली आंखें मेरे चेहरे पर गड़ा कर मौन रह और हाथ हिला कर अपनी विवशता प्रकट कर दी। आखिर फ्रेंच में यत्न किया—"पूछताछ का दफ्तर?"

उसने हामी भरी और अपने पीछे आने का संकेत कर ऊपर की मंजिल में ले गया। यहां अंग्रेजी में अपनी कठिनाई समझाई। अंग्रेजी समझने वाले एक व्यक्ति ने पूछा—"टेलीफोन किया जाय तो किस नम्बर पर? निमंत्रण किस संस्था या व्यक्ति का है?"

प्राहा से चलते समय जेब हलका करने के लिये अपने विचार में जर्मन लेखक संघ के निमंत्रण पत्र को भी अनावश्यक समझ वहीं डाल दिया होता, केवल यात्रा की तारीख याद रखने के लिये ही रखा हुआ था। उत्तर दिया—"निमंत्रण पत्र तो इस समय नहीं है।" परन्तु निराशा में ही जेब के कागजों को फिर टटोलने लगा। वह पत्र भूल से फेंका नहीं गया था। पत्र पर टेलीफोन नम्बर भी था।

टेलीफोन नम्बर देकर साथ में लिया एक उपन्यास पढ़ने लगा, किसी तरह समय तो कटे ।

लगभग आधे घण्टे पश्चात् सुना—"मिस्टर पाल !"

पुस्तक से सिर उठा कर सामने खड़ी नवयुवती को उत्तर दिया—"नमस्कार । हां मेरा नाम यशपाल है ।"

नवयुवती अंग्रेजी बोल रही थी—"प्राहा से विमान ढाई बजे आना चाहिये था । मैं यहां सवा चार बजे तक आप की प्रतीक्षा करती रही । फिर सोचा, सम्भव है, आकाश में आंधी और मेघों के कारण विमान आज न आये, मैं साढ़े चार बजे लौट गयी थी । आप को असुविधा हुई उस के लिये मुझे अत्यन्त खेद है ।"

हम लोग हवाई अड्डे से बाहर निकले तो सुबह से छाये मेघ छिन्न-भिन्न हो चुके थे । सूर्य चमक रहा था । योरुप में गर्मी के दिनों में संध्या पांच बजे सूर्य काफी ऊंचा रहता है । १९५५ के जून मास में हेलसिंकी (फिनलैंड) में थे । रात साढ़े ग्यारह के लगभग सूर्यास्त होना जान पड़ा और डेढ़ बजे फिर ऊषा का प्रकाश । बीच के समय में भी सूर्यास्त का झुट-पुटा सा ही रहा । अंधेरा हुए बिना सो जाने के लिये मन न मानता था । जब रात का डेढ़ भी बज गया तो रात करने के लिये खिड़कियों पर पर्दे खींच लिये और भीतर बिजली जला कर रात मान ली और बिजली बुझा कर सो गये । वहां जून मास में रात के समय सड़कों पर बिजली जलाना आवश्यक नहीं होता । दिसम्बर-जनवरी में दिन रात बिजली जला करती है । पांच बजे भी चारों ओर पूर्वी जर्मनी के मैदान फैले हुये थे ।

कुमारी जैलिंगर ने बताया—"आपके ठहरने के लिये पोट्सडाम में लेखकों के भवन में प्रबन्ध किया है । यहां से जरा दूर है लगभग तीस मील । आप थके हुये हैं कुछ असुविधा तो होगी परन्तु पहुंचने पर आशा है स्थान पसन्द आयेगा ।" पोट्सडाम के आस-पास का प्रदेश रेतीला है और बहुत सी झीलें हैं । झीलें एक दूसरे से मिली हुई हैं । प्रदेश रेतीला होने पर भी झीलों और टीलों के कारण रमणीय जान पड़ता है । झीलों का यह तांता नदियों से मिलता समुद्र तक चला गया है । जल मार्गों से व्यापार में सुविधा मिलती है ।

युद्ध से पहले जर्मनी का पूर्वी भाग कृषि प्रधान था और पश्चिमी भाग उद्योग प्रधान । पोट्सडाम में तब भी कुछ मिलें और कारखाने थे । इस के

अतिरिक्त यहां जर्मन सम्राटों के पुराने प्रासाद भी थे। नाजियों को पराजित करती हुई सोवियत सेना पोट्सडाम के मार्ग से ही बर्लिन की ओर बढ़ी थी। इस नगर पर घनघोर बम वर्षा हुई थी। नगर के चौक में पुराने विशाल, प्रशस्त गगनचुम्बी गिर्जे आज भग्न और झुलसे हुये कंकालों की भांति दिखाई देते हैं। किसी गुम्बद का एक पार्श्व गोलों की मार से उड़ जाने के कारण कंकाल के खुले टूटे हुए जबड़े के समान जान पड़ता है। राजप्रासाद की छतें उड़ गई हैं। स्थान-स्थान पर टूटी हुई दीवारें मात्र खड़ी हैं। उन प्रकाण्ड कंकालों से मूक रोदन आकाश की ओर उठता जान पड़ता है। उस प्रकाण्डता में दैन्य कितना हृदयद्रावक था। पोट्सडाम के केवल नये बने मकान ही बिना युद्ध की चोटों के थे। अधिकांश मकान पिछले सात-आठ वर्ष में ही बने दिखाई देते थे। जैलिगर का घर बर्लिन में ही है। इन स्थानों से वह खूब परिचित थी। खंडहरों की ओर संकेत कर उन के पुराने वैभव की कहानी सुनाती जा रही थी।

चेकोस्लोवाकिया के पश्चिमी भागों के देहात में भी, जिन्हें सुदेतनलैण्ड पुकारा जाता था, उपनिवेश बना कर बस जाने वाले जर्मनों के मकान देखे थे। अब तो स्वयं जर्मनी में ही था परन्तु यहां साधारणतः मकानों में वह ठाटबाट नहीं दिखाई दे रहा था। यह अन्तर भारत में आकर रहने वाले अंग्रेजों के रहन-सहन के ढंग में और इंगलैंड में रहने वाले लोगों में भी स्पष्ट दिखाई देता है। अंग्रेज का काम तीन-चार नौकरों के बिना चल ही नहीं सकता था। बंगले और बगीचे के बिना उस का निर्वाह नहीं था परन्तु इंगलैंड में घर की सण्डास भी अंग्रेज स्त्रियां खुद ही धो लेती हैं। महरी के ढंग से काम करने वाली कोई औरत सफाई में सहायता देने के लिये आयेगी भी तो केवल निश्चित समय के लिये। ऐसे काम के लिये मजदूरी प्रति घण्टे की एक शिलिंग या दस आने से कम नहीं होगी। अपने आप को ऊंचा और शासक समझने वाले लोगों का व्यवहार स्थानीय लोगों से भिन्न हो ही जाता है।

लेखकों का भवन पोट्सडाम नगर से भी कुछ और आगे एक खूब बड़ी झील के किनारे उपवन और फूलों से घिरा हुआ है। यहां कई लेखक ठहर हुये थे। आस्ट्रेलिया से आये एक दम्पति भी थे। फिल्म लेखक कूबा ने बताया—यहां तुम्हें कठिनाई न होगी। अवसरवश इस समय यहां सभी लोग अंग्रेजी बोल सकने वाले हैं। भवन भव्य और खूब बड़ा भी है। नीचे की मंजिल में एक खूब बड़ी बैठक है और भोजन का बड़ा कमरा है जिस में सात-आठ गोल मेज चार-चार

कुर्सियां सहित लगे हैं। भोजन बहुत अच्छे मेहमानों की खातिर के लिये बनाया जान पड़ता था। परन्तु सभी एक ही-सा खाना खा रहे थे और दोनों समय उसी स्तर का खाना था। साधारणत: बर्लिन के होटलों से इस खाने को बहुत बढ़िया कहना होगा। सभी के लिये अलग-अलग कमरे हैं और पूर्णत: आधुनिक सुविधाओं से सज्जित है।

भोजन के बाद रात बहुत देर तक बैठक में बातचीत चलती रही। आस्ट्रे-लियन दम्पत्ति भी साथ थे। बातचीत भिन्न-भिन्न देशों की साहित्यिक प्रवृत्तियों और गतिविधि विशेषकर भारत के सम्बन्ध में थी। लेखकों की स्थिति के सम्बन्ध में बातचीत हुई। आस्ट्रेलियन लेखक जानना चाहता था कि भारत में लेखक कितने घण्टे प्रतिदिन काम करके निर्वाह कर सकते हैं, ऐसे कितने लेखक हैं जो कहीं नौकरी न कर केवल रायल्टी पर सुविधा से निर्वाह कर सकते हैं। मुझे स्वीकार करना पड़ा, हिन्दी जगत में ऐसे लेखकों की संख्या तीन-चार से अधिक नहीं है जो स्वतंत्र लेखक के रूप में निर्वाह योग्य कमा सकें। जर्मन लेखक विस्मित थे। बीस करोड़ लोगों की भाषा के लेखकों की ऐसी अवस्था कैसे हो सकती है। मैंने अपने देश की आर्थिक अवस्था और यहां सदियों से छाई निरक्षरता का कारण बता कर यह भी कहा कि लन्दन में मैंने भी यह प्रश्न पूछा था और उत्तर मिला था कि ब्रिटेन में भी ऐसे स्वतंत्र लेखकों की संख्या पांच-छ: से अधिक नहीं है। आस्ट्रेलियन लेखक को भी स्वीकार करना पड़ा कि उस के देश में भी ऐसे लेखकों की संख्या तीन-चार से अधिक नहीं है।

आस्ट्रेलियन साथी को बहुत कौतूहल था कि भारतीय लेखक कितनी देर काम करते हैं। उत्तर दिया—भारतीय लेखक के श्रम का मूल्य बाजार में बहुत कम है। साधारणत: एक कहानी लिख कर वह सप्ताह भर का खर्चा भी नहीं जुटा पाता। यह आवश्यक है कि वह बहुत समय तक काम करे। अपना ही उदाहरण दिया कि कभी दो-तीन सप्ताह कुछ भी नहीं लिख पाता हूं परन्तु काम आरम्भ करने पर संध्या-प्रात: सब मिला कर आठ या दस घंटे कोई बड़ी बात नहीं है। जिन दिनों 'विप्लव' का सम्पादन करते हुये कहानी उपन्यास भी लिखता था, दस घण्टे साधारण बात थी। कभी-कभी दिन में दूसरे काम आ पड़ने पर पूरी रात भी लिखना पड़ा है। आस्ट्रेलियन साथी मेरी बात पर विश्वास नहीं कर पा रहा था। उस ने अपनी पत्नी की ओर देख कर दो बार कह डाला—"मुझे सन्तोष है जीवन में ऐसे लेखक से भी परिचय हो गया जिस

ने दस और बारह घण्टे प्रतिदिन लिखा है।"

सुबह नाश्ते के बाद फिल्म लेखक कूबा मुझे देहाती प्रदेश में घुमाने ले गया। प्रदेश प्रायः रेतीला था, परन्तु बंजर नहीं। कूबा ने बताया, यहां की रेत महीन है। समीप जल है। सिंचाई की सुविधा के कारण खेती खूब हो सकती है। रोमन-साम्राज्य के समय यह प्रदेश भी रोमन-साम्राज्य में सम्मिलित था और तब इसे रोमन-साम्राज्य की रेतदानी (Sandbox) पुकारा जाता था। कूबा समझाने लगा—अतीत में स्याही-सोख तो था नहीं। लिखावट की स्याही सुखाने के लिये कागज पर चलनीदार ढक्कन लगी डिबिया से महीन रेत डाल दी जाती थी और फिर कागज से रेत डिबिया में लौटा दी जाती थी मैंने उत्तर दिया—"समझता हूं, हमारे देश के कई पुरातन-पंथी व्यापारी अभी तक पुराने ढंग की रोशनाई और रेतीदान का व्यवहार करते हैं।

"अच्छा ?" कूबा ने विस्मय प्रकट किया और बोला, "क्या विचित्र मसला है! स्पष्ट ही उस समय पूर्वी देशों और योरुप में सांस्कृतिक सम्बन्ध रहे होंगे। सम्भव है यहां के लोगों ने यह बातें पूर्व से ही सीखी हों।"

कूबा का छोटा-सा पाइण्टर कुत्ता भी हमारे साथ हो लिया था। उस की वजह से जिस मकान के सामने से गुजरते बाड़े के पीछे से भौं-भौं का प्रलय-सा मच जाता परन्तु मार्ग पर कोई आवारा कुत्ता कहीं दिखाई नहीं दिया। कुत्ते थे भी खूब साफ-सुथरे। मुझे कुत्तों की ओर ध्यान से देखते पाकर कूबा ने बताया—"अब जर्मनी में अच्छे कुत्ते कहां हैं ? युद्ध के अन्न-संकट के समय नाजियों ने केवल पुलिस और सेना के लिए आवश्यक कुत्तों को छोड़कर सब को मरवा दिया था। तब भी कुछ लोगों ने कुत्ते छिपाकर रख लिये थे। उन्हें अपने राशन का भाग देकर पालते थे। कुत्ते भी समय की हवा पहचानते थे। वे पुलिस की वर्दी देख कहीं दुबक जाते और भौंकना भी भूल गये थे। यह भाग कृषि-प्रधान है। किसान लोग अपनी खेती की रक्षा के लिये कुत्तों को शौक से पालते थे। यहां के बड़े जमींदारों के कुत्ते तो बहुत ही प्रसिद्ध थे। उन कुत्तों के लिए आदमी को फाड़ डालना साधारण बात थी। जमींदार अपना आतंक बैठाने के लिये अपने जंगलों और खेतों की सीमा में घुस आने वाले लोगों पर कुत्तों को ललकार देते थे। यदि लोग कुत्तों से बचने के लिये कुत्तों को मारते तो उन्हें ही गोली मार दी जाती। इन जमींदारों के खिलाफ अदालत में कुछ कार्यवाही कर सकना भी असम्भव था। वे सदा ही निर्दोष प्रमाणित हो सकते

थे क्योंकि सम्पत्ति के अधिकार का सम्मान ही सब से बड़ी वस्तु थी। किसानों को जमींदारों की जमीन का लगान तो देना ही पड़ता था, उस के अतिरिक्त दूध, मुर्गी, अण्डा, घास और बेगार भी भुगतनी पड़ती थी। कूबा की बात सुन कर मैंने कहा—"हमारे यहां भी कुछ वर्ष पहले तक यही अवस्था थी। जैसे मानवता के सदगुण सब स्थानों में एक से हैं वैसे ही शोषण की नृशंसतायें भी प्रायः सभी स्थानों में एक सी रही हैं।"

लेखकों का भवन नया बना मकान नहीं है। नाजी शासन से पहले और उन के शासन के समय यह मकान एक फिल्म अभिनेत्री की सम्पत्ति था। अभिनेत्री ने मकान और स्थान किसी पुराने जमींदार से खरीद कर उसे आधुनिक रूप दिया था। मकान के पिछवाड़े झील की ओर खूब बड़ा हरा-भरा दालान या छोटा-सा मैदान है। पहली छत पर इस मैदान की ओर खुलता दालान है। अभिनेत्री अपने अतिथियों को उसी स्थान पर बैठा कर आपानक (काकटेल पार्टी) किया करती थी और अपने अतिथियों के मनोरंजन के लिये नाचा भी करती थी। अनेक फिल्मों में झील के किनारे प्रासाद के दालान में प्रणय-लीला अथवा भोग-लीला के दृश्य दिखाने के लिये इस स्थान का उपयोग किया जाता था। अभिनेत्री फिल्म बनाने वाली कम्पनियों से खूब बड़ी-बड़ी रकमें वसूल करती थीं। नाजियों की पराजय हो जाने और समाजवादी प्रजातन्त्र व्यवस्था कायम होती देख अभिनेत्री यहां से पश्चिम जर्मनी में भाग गई। यह भवन सरकार ने लेखक संघ को दे दिया है। भवन सरकार की भेंट है, खर्च संघ का अपना होता है।

बाहर से घूम कर लौटने पर हम लोग झील के सामने दालान में बैठे काफी पी रहे थे। किसी लेखक से मिलने कोई दम्पति आये थे। उन का पांच-छः मास का बच्चा भी साथ था। बच्चे को कूबा ने बीच की मेज पर बैठा दिया था। स्वस्थ, सुथरा बच्चा मेजपोश पर छपे पेंजी के लाल, बैंगनी फूलों को उखाड़ लेने के लिए किलकारियां भर कर उन पर झपट रहा था। फूल उखाड़ न पाने पर क्रोध में चीखने लगता। हम लोग बच्चे को रिझाने के लिए खिलौने के रूप में जो कुछ भी जेब से निकाल सकते थे, उसे दे रहे थे। रसोई का मैनेजर काफी का दूसरा बर्तन देने के लिये आया था। उसने बच्चे की समस्या को देखा। पल भर को भीतर गया और उसने एक बहुत छोटा सा कछुआ ढाई-तीन इंच के व्यास का, लाकर बच्चे के सामने रख दिया। कछुआ खूब हिला

हुआ था। वह चाबी लगे खिलाने की तरह मेज पर गोल चक्कर लगाता जा रहा था परन्तु बालक का हाथ पीठ पर पड़ते ही या बालक के उसे उठा लेने पर तुरन्त अपनी गर्दन और हाथ-पांव भीतर समेट लेता था।

रसोई के मैनेजर ने बताया—"कछुआ ढाई बरस से लेखक भवन का सदस्य है। उस की आयु कितनी है, इस विषय में कोई कुछ नहीं जानता था। मुझ से प्रश्न किया गया—"भारत में तो कछुए होते हैं? उस के आकार से उस की आयु का क्या अनुमान किया जाना चाहिये?"

"इतने आकार का कछुआ तो कभी देखा नहीं।"

"क्यों यह बहुत बड़ा है?"

"इतना छोटा कभी नहीं देखा।"

"यह बहुत छोटा है, कछुआ कितना बड़ा होता है?"

"नौ-दस इंच से छोटा तो मैंने देखा ही नहीं। इतने छोटे कछुए तो शायद भय के कारण नदी-तालाब से बाहर निकलते ही नहीं।"

बच्चे की मां ने कौतूहल से पूछा—"कछुए कितने बड़े हो जाते हैं?"

"ढाई-तीन फुट पीठ के कछुए यमुना नदी में बहुत से मिल जाते हैं। यह कछुए पाल लिये जाते हैं। बहुत से लोग इन की पीठ पर बैठ कर नदी पार कर लेते हैं।"

"इस संसार में कितनी विचित्र वस्तुएं और प्रथाएं हैं!" उस ने विस्मय प्रकट किया।

प्राहा में मैंने रूमानिया जाने का भी निमंत्रण स्वीकार कर लिया था और जर्मनी आने का भी। जर्मनी में छः दिन ही ठहर सकता था। बर्लिन देखने की बहुत ही उत्सुकता थी। दोपहर के भोजन के बाद लेखक-संघ के एक सदस्य वैलनबर्गर के साथ मैं बर्लिन रवाना हो गया।

जर्मनी इस समय पूर्वी और पश्चिमी भागों में बंटा हुआ है। बर्लिन के भी पूर्वी और पश्चिमी भाग हैं। पूर्वी भाग से पश्चिमी भाग में और पश्चिमी भाग से पूर्वी भाग में प्रवेश करते समय पासपोर्ट और परवाने की जांच-पड़ताल होती है। नगर के भीतर दोनों भागों में आने-जाने में मोटर से आते-जाते समय ही गाड़ी ले जाने का आज्ञा-पत्र देखा जाता है। पैदल लोग बिना किसी बाधा के आ-जा सकते हैं। बर्लिन में यातायात के दूसरे साधनों के अतिरिक्त सुरंग-रेल और मकानों की छतों पर से चलने वाली रेल (सिटी-रेलवे) भी है। यह रेलें

पूर्व से पश्चिम और पश्चिम से पूर्व लगातार चलती रहती हैं। ठहरा तो पूर्वी बर्लिन में था परन्तु दो-तीन बार पश्चिमी भाग में भी घूम-फिर कर देख आया।

लन्दन की ही तरह योरुप के दूसरे नगरों में और बर्लिन में भी समृद्ध अमीर लोगों की बस्तियां और उन के उद्योग-धन्धे नगर के पश्चिमी भाग में थे और गरीब बस्तियां पूर्वी भाग में। इस विभाजन का कारण प्राकृतिक है। योरुप में वायु की गति पश्चिम से पूर्व की ओर रहती है। उत्तर-भारत में भी यही बात है। कारखानों और मिलों की चिमनियों के धुएं से बचने के लिये उन्हें नगर के पूर्वी भाग में बनाया गया है इसलिये समृद्ध लोग पश्चिमी भाग में रहना पसन्द करते हैं। यही बात बर्लिन में भी थी परन्तु जर्मनी पार्लिया-मेंट (रीश) और बड़े-बड़े सरकारी दफ्तर और हिटलर का स्थान और नाजियों के अड्डे अधिकांश में पूर्वी भाग में ही थे।

बर्लिन पर आक्रमण के समय सोवियत सेना ने पूर्व की ओर से ही नगर में प्रवेश किया था। बर्लिन के भाग्य का निपटारा भी इसी भाग में हुआ था। सोवियत सेना के बर्लिन में पहुंच जाने पर भी नाजी लड़ते रहे थे। सोवियत बममारों ने इस भाग की अक्षरशः ईंट से ईंट बजा दी थी। पूर्वी बर्लिन पर हुई बम-वर्षा का उदाहरण केवल स्तालिनग्राड में ही मिल सकता था। शायद यहां उस से भी अधिक हुई हो। पूर्वी बर्लिन का अधिकांश भाग इस समय भी ध्वस्त कब्रिस्तान जैसा है। छतों के बिना खड़ी दीवारें कब्रों के सिरहाने खड़ी प्रकाण्ड शिलाओं की तरह जान पड़ती हैं। जिस स्थान पर पुरानी पार्लियामेंट थी, वह अब मलबे से भरा स्थान है। पश्चिम की ओर जब अमरीकन, ब्रिटिश और फ्रांसीसी सेनाओं ने बर्लिन में प्रवेश किया था, नाजी उस से पहले उखड़ कर हथियार डाल चुके थे, इसलिये उस भाग में उतना ध्वंस होने का कारण नहीं था। पूर्वी भाग में युद्ध से पहले के मकान कहीं-कहीं दिखाई देते हैं। जो हैं उन में भी मरम्मत के बड़े-बड़े चिन्ह दिखाई देते हैं।

बर्लिन में घूमते-फिरते प्रतिक्षण युद्ध की भीषण विभीषिका की चेतना बनी रहती थी। एक बम के विस्फोट का कितना धमाका उस से कितना विनाश और उस का कितना आतंक होता है! यहां कई दिन तक प्रतिक्षण रात-दिन मशीनगनों और राइफलों की गोलियां ओलों की तरह बरसती रही हैं और तोपों के सैकड़ों गोले और बम प्रति मिनिट बरसते रहे हैं। छः-सात मंजिल की इमारतों के अररा कर गिर पड़ने का दृश्य कैसा होता है। यहां प्रत्येक गली, बाजार में

प्रतिक्षण अनेक इमारतें गिरती-रहती थी । यह किसी भूचाल के प्राकृतिक कोप से नहीं, स्वयं मनुष्य की अपनी समझ के परिणाम-स्वरूप हो रहा था । बर्लिन ने कितने नगरों को यों बरबाद किया और फिर उस बरबादी को समुज्ज्वल रूप में झेला । मन में कौतूहल होता था, युद्ध के समय यहां के निवासियों की क्या अनुभूति रही होगी और युद्ध के कारण नाजीवाद के आदर्शों के प्रति और युद्ध के प्रति आज मन की भावना क्या है ?

दिन में किसी समय शैल्नबर्गर का साथ रहता था और किसी समय मिस जैलिंगर का । युद्ध की दुःख-भरी स्मृतियां जगाने में संकोच होता था । शैल्नबर्गर युद्ध से पहले भी कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य था । नाजी प्रभुत्व के समय उस का जर्मनी में रहना संकटापन्न था । वह युद्ध से पहले कम्युनिस्टों की धर-पकड़ के समय जर्मनी से भाग गया था और हालैंड की राह इंगलैंड चला गया था ।

जैलिंगर युद्ध के समय निरंतर बर्लिन में भी रही थी । उस समय उस की आयु तेरह-चौदह की थी । युद्ध के अनुभव उसे खूब याद थे और प्राणांतक भय की स्मृतियों के सम्बन्ध में बात करते भी उस का हृदय दहलता न था । सिगरेट के कश से धुएं का लम्बा तार छोड़ते हुये उस ने कहा—समीप ही बम का विस्फोट होने पर जो प्रलयंकारी धमाका होता था उससे हृदय की गति पल भर के लिये रुक-सी जाती थी । बहुत से लोग मूर्छित हो जाते थे परन्तु जब बमों के विस्फोट और इमारतों के ढहने के धमाके का वातावरण सदा बना रहने लगा तो उससे कब तक आतंकित होते रहते ? यह चेतना रहती थी कि किसी भी क्षण मर जा सकते हैं । इच्छा होती थी कि हम पर बम गिरे तो ऐसे कि शरीर का पता भी न चले । ऐसा न हो कि घायल होकर चीखते रह जांय । कहीं भी रक्षा का आश्वासन न था । ऊपर मंजिलों में बम की मार का भय था और नीचे की मंजिलों और तहखानों में ऊपर से मलबा गिरकर दम घुटकर मर जाने की आशंका । निरंतर बम वर्षा से बिजली के तार टूट गये थे, यातायात के साधन ट्राम, बस, सुरंग रेल और नगर रेल सभी बन्द हो गये थे । पानी के नल फट गये थे । नगर में कुएं कहां थे । अंधेरे में ही निर्वाह करने का अभ्यास हो गया । मुंह और हाथ धोने का प्रश्न ही क्या था, परन्तु प्यास लगने पर तो व्याकुलता होती ही थी । ऐसे समय कोई बर्तन, बोतल, या टीन का डिब्बा लेकर स्प्री (बर्लिन के बीचोंबीच बहने वाली नदी) से गंदला जल ले आते थे

और दो चार घूंट पी लेते थे।

नाज़ी सिपाही छोटी मशीनगनें और लुइसगनें लिये घरों पर छापे मार-मार कर मर्दों को ढूंढते फिरते थे कि वे बाहर निकल कर सोवियत आक्रमण का सामना करें। उस समय भी नागरिकों को विश्वास दिलाया जा रहा था कि बर्लिन पर सोवियत सेना का आक्रमण कुछ समय का ही संकट है, नाज़ी सेना निश्चय ही उन्हें नष्ट कर नगर की रक्षा करेगी। नाज़ियों की श्रेष्ठता और शक्ति का अन्ध अहंकार था। नागरिकों को विश्वास था कि अन्तिम विजय नाज़ियों की होगी। जिस समय नाज़ी अपने गुप्त हथियार निकालेंगे, क्षण भर में सोवियत सेना का ध्वंस हो जायगा। हज़ारों लोग बमों के आतंक से पृथ्वी के नीचे रेलों की सुरंगों में जा छिपे थे। उन लोगों को लड़ाई के मैदान में लाने के लिये सुरंगों में नदी का पानी छोड़ दिया गया। हज़ारों लोग घुट-घुट कर मर गये।

सिगरेट का लम्बा कश छोड़ते हुये जैलिगर बोली—"ऐसे आतंक में भी जीवन चलता था। उस समय भी जो कुछ खाद्य सामग्री या दूसरी वस्तुएं मिल सकती थीं, उन्हें लोग समेट कर रखने का यत्न करते थे और इन चीज़ों पर अधिक से अधिक मुनाफा कमाने की कोशिश करते थे। युद्ध तभी समाप्त हुआ जब लाल-सेना बर्लिन का दो तिहाई समेट चुकी थी। दूसरी ओर से अमरीकन और अंग्रेज़ी सेनाओं ने शेष भाग पर कब्ज़ा कर लिया था।

शैलनबर्गर से पूछा कि नाज़ीवाद के परिणाम में यह सब भुगत कर अब सर्व-साधारण जर्मन लोगों की नाज़ीवाद के प्रति कैसी धारणा है। उत्तर मिला कि सर्व-साधारण की तो नाज़ी सिद्धांतों से उस समय भी कोई सहानुभूति न थी। युद्ध के आरंभिक भाग में नाज़ियों की सफलताओं ने साधारण जनता को सम्मोहित कर लिया था। नाज़ियों के कारण अपनी दुरावस्था देख कर वे उनसे विरक्त भी हो गये परन्तु नाज़ियों का कब्ज़ा ऐसा गहरा था कि मुंह खोलने का अवसर किसी को न था। बहुत से लोग अब भी समझते हैं कि नाज़ियों का कार्यक्रम ठीक ही था। हिटलर ने केवल अपने जनरलों की राय की उपेक्षा करने की ही भूल की। स्थिति यह थी कि हिटलर की असम्भव आज्ञाओं को पूरा करने में यदि जनरल असफल रह जाते तो उन्हें प्राण-दण्ड दिया जाता। यदि जनरल हिटलर की आज्ञा की अव्यवहारिकता के प्रति शंका करते तो उन्हें आज्ञा भंग के अपराध में प्राण-दण्ड दिया जाता था। जनरल स्वयं हतबुद्धि हो

रहे थे कि क्या करें। वे आज्ञा के प्रति कोई आपत्ति नहीं कर सकते थे। वे असफलता के उत्तरदायित्व से बचने के लिये प्रत्येक बात के लिये रण-क्षेत्र से हिटलर को फोन कर निर्णय मांगते थे। ऐसी अवस्था में उन्हें अयोग्य समझ कर दण्ड दिया जाता था। उन के स्थान पर नियुक्ति की आज्ञा पाने वाले जनरल नियुक्ति को ही प्राण-दण्ड समझ लेते थे। कुछ लोगों का अब भी विश्वास है कि समय आने पर नाजीवाद का कार्यक्रम अवश्य सफल होगा।

मैंने पूछा कि अब नाजीवाद के कार्यक्रम को व्यवहार में लाने के लिये साधन ही कहां है? उत्तर मिला कि ऐसे लोगों को आशा है कि कम्युनिज्म के बढ़ते प्रभाव से लोहा लेने के लिये अमरीकन और ब्रिटिश पूंजीपतियों को फिर जर्मनी को अपने रक्षक के तौर पर खड़ा करना पड़ेगा। वही नाजीवाद और जर्मनी के पुनरुत्थान का समय होगा।

मैंने फिर भी प्रश्न किया---अमरीका और ब्रिटेन एक बार कम्युनिज्म को रोकने के लिये नाजीवाद को बढ़ावा देने की चाल का परिणाम देख चुके हैं क्या नाजी लोग आशा करते हैं कि अमरीका और ब्रिटेन अपनी भूल फिर दोहरायेंगे?

उत्तर मिला—पश्चिम जर्मनी में अमरीकी लोग पूंजीवाद की रक्षा के लिए अरबों डालर खर्च कर रहे हैं। नाजी लोगों का विचार है कि अमरीकन और बृटिश अपनी भूल समझें या न समझें; वे यदि कम्युनिज्म को कहीं रोकना चाहते हैं तो उन के सामने दूसरा कोई उपाय है ही नहीं।

एक बार और पूछा—तो क्या नाजी लोग सदा ही अमरीकन और पूंजी-पतियों के प्यादे बनना स्वीकार करते रहेंगे? इसका भी उत्तर था—नाजियों के पास इसके अतिरिक्त कोई दूसरा अवसर या उपाय भी तो नहीं।

× × ×

बर्लिन

बर्लिन दो भागों में बंटा हुआ है। पूर्वी बर्लिन के लोग अपने आपको डी० डी० आर०—डैमोक्रैटिक ड्यूट्स रिपब्लिक कहते हैं और पश्चिम भाग को अमरीकन भाग पुकारते हैं। पश्चिम भाग के लोग अपने आपको डैमोक्रैटिक भाग और पूर्वी भाग को रूसी भाग कहते हैं। दोनों भागों की सीमाएं सभी

जगह मिली-जुली हैं। जिस स्थान पर पहले जर्मन पार्लियामेन्ट और चांसलरी थी उस के सम्मुख तो दोनों भागों के बीच में एक पूरा पार्क पड़ा है परन्तु कई स्थानों पर सड़क या गली के इस ओर की दूकानें पूर्वी भाग में हैं और दूसरी ओर की पश्चिम भाग में।

पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी के बंटवारे की तुलना हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बंटवारे से नहीं की जा सकती। यहां लोगों को प्राणों के भय से एक भाग से दूसरे भाग में नहीं भागना पड़ा है। जिन लोगों को अपनी सम्पत्ति छिन जाने का भय था या जो समाजवादी शासन में दुरावस्था की आशंका करते थे अपनी धन-सम्पत्ति समेट कर पश्चिम जर्मनी की ओर चले गये हैं। जिन लोगों की समाजवादी सिद्धांतों में आस्था थी या उस व्यवस्था में अपना भविष्य उज्ज्वल बना सकने की आशा रखते थे, पश्चिम भाग छोड़ कर पूर्व में आ गये। मुख्यतः बड़े-बड़े जमींदार कारखानेदार और पूंजीपति पश्चिम भाग में चले गये हैं। श्रमिक मजदूर, कलाकार और लेखक पूर्वी भाग में आ गये हैं। युद्ध से पहले अगफा, जाइस वगैरा के कारखाने पूर्वी भाग में थे। इन लोगों ने पश्चिमी भाग में जाकर अपना नया व्यवसाय बांध लिया है, परन्तु उन के मजदूर पूर्वी भाग में ही रह गये हैं और वे भी अपने कारखाने चला रहे हैं। पूर्वी भाग में इस समय भी कैमरे, टाइपराइटर आदि खूब बनते हैं और उन की मांग पूर्वी योरुप के समाजवादी देशों में काफी है।

यह बात नहीं कि पूर्वी भाग से सभी कारखानेदार या छोटे-मोटे औद्योगिक व्यवसायी भी पश्चिम की ओर भाग गये हों। ऐसे बहुत से व्यवसायी अभी तक पूर्वी जर्मनी में अपने अपने निजी व्यवसाय चला रहे हैं और उन्हें बढ़ा भी रहे हैं। इस पहेली को समझने के लिए पूर्वी जर्मन प्रजातन्त्र की समाजवादी आर्थिक व्यवस्था के सम्बन्ध में दो शब्द आवश्यक हैं। खेती यहां अब प्रायः सामूहिक स्वामित्व में वैज्ञानिक ढंग और यंत्रों से हो रही है। दूकानें तीन प्रकार की हैं। अधिकांश और बड़ी-बड़ी दूकानें तो राष्ट्रीय सम्पत्ति हैं और राष्ट्रीय नियंत्रण में चल रही हैं। कुछ दूकानें सहकारी ढंग पर चल रही हैं और कुछ छोटी दूकानें पूर्णतः दूकानदारों की निजी सम्पत्ति हैं। बहुत बड़े-बड़े उद्योग अथवा ऐसे उद्योग जिन के स्वामी नाजीवाद के समर्थक थे राष्ट्रीय स्वामित्व में ले लिये गये हैं परन्तु अनेक अच्छे खासे बड़े कारखाने अब भी व्यक्तिगत सम्पत्ति हैं। इन कारखानों के मजदूरों अथवा कार्यकर्त्ताओं को वह [illegible]

को देनी पड़ती है जो राष्ट्रीय समाजवादी उद्योगों में कार्यकर्ताओं को दी गयी हैं। इन व्यवसाइयों की सम्पत्ति और आमदनी पर काफी कर भी देने पड़ते हैं। पैदावार बढ़ाने पर जो लाभ इन कारखानों को होता है उस पर समाजवादी राष्ट्रीय सरकार ने कोई बन्धन नहीं लगाया है। सरकार के सामने इस समय सब से अधिक महत्व पैदावार बढ़ाने का है। निजी सम्पत्ति के कारखानों को भी सरकार मशीनें और माल उधार देकर उन की उत्पत्ति बढ़ाने में सहायता देती है। इस ढंग से इन व्यवसाइयों के लाभ में जो बढ़ती होती है उस का ये लोग स्वतन्त्रता से उपयोग कर सकते हैं। पूर्वी भाग में शेष रह गये पूंजीपतियों में कोई आतंक का भाव नहीं है। उन के लिए फोर्ड, लिप्टन, गुडइयर और बी० ओ० सी० की भांति व्यवसायिक साम्राज्य कायम कर लेने की सम्भावना तो नहीं है परन्तु स्वतन्त्रता से व्यवसाय चला कर मनमाने ऐश की जिन्दगी के लिये दो-चार मोटरें और अच्छा-खासा बंगला बना कर रह सकने का अवसर जरूर है।

× × ×

स्तालिन एल्ले

इस में तो सन्देह नहीं कि पूर्वी बर्लिन का अधिकांश भाग कब्रिस्तान के खंडहर-सा जान पड़ता है परन्तु स्तालिन एल्ले में चले जाइये तो मानो स्वप्न लोक में पहुंच गये। अंग्रेजी में एल्ले शब्द का अर्थ गली होता है परन्तु स्तालिन एल्ले यदि गली है तो बाजार और सड़क क्या होगी। स्तालिन एल्ले दो मील के लगभग लम्बी होगी। चौड़ाई नयी दिल्ली की चौड़ी से चौड़ी सड़क से कम से कम तिगुनी समझिये। एल्ले के बीचोंबीच खूब चौड़ी सड़क के बराबर चौड़ी फुलवाड़ी-सी चली गयी है और इस के एक ओर आने की तथा दूसरी ओर जाने की सड़कें हैं। दोनों ओर सड़कों जितनी चौड़ी सीमेंट से बनी चिकनी पटरियां हैं। दोनों ओर की इमारतें लगातार सात या आठ मंजिल की हैं। ऐसी भी इमारतें हैं जो तेरह मंजिल की हैं—उदाहरणतः बच्चों के सामान की दूकानें। इन इमारतों में नीचे दूकानें हैं और ऊपर रहने के लिये फ्लैट। अधिकांश में यहां मजदूरों की बस्ती है। ये सब फ्लैट सभी आधुनिक सुविधाओं से चुस्त हैं।

इमारतों और सड़कों की सीध की एकरसता से ऊब न उठें, इसलिये स्थान-स्थान पर दिल्ली के कनाट सर्कस से कुछ छोटे चौक कुछ-कुछ अन्तर पर हैं। दोनों ओर की इमारतों की पंक्तियों के पीछे भी नये मकानों की पंक्तियां बनाई जा रही हैं। बच्चों की दुकान की छत पर चढ़ कर देखा तो इन इमारतों के पीछे खंडहर ही खंडहर बिछे हुये थे।

बर्लिन में नई इमारतें बनाने की बड़ी भारी समस्या तो है ही परन्तु इमारतें बनाने के लिये खंडहरों का मलबा उठा कर स्थान साफ करने की समस्या भी कम विकट नहीं है। स्तालिन एल्ले के अतिरिक्त फ्रेडरिख स्त्रास्सा आदि सड़कों पर भी नई बनी इमारतों की पंक्तियां नजर आती हैं। यहां के लोगों को भरोसा है कि भावी वर्षों में निर्माण की उन की गति अधिक होगी अब तक उन की शक्ति साधनों को बनाने में लगी है; अब वे इमारतें और पदार्थ बना सकेंगे। उन का दावा है कि छः वर्षों में बर्लिन में कहीं भी टूटा या गिरा मकान शेष नहीं रह जायगा। यह दावा मामूली नहीं। बर्लिन के आकार का अनुमान लगाने के लिये यह याद रखना सहायक होगा कि युद्ध से पहले बर्लिन की जनसंख्या पैंतालीस लाख अर्थात् आधुनिक दिल्ली से दूनी से अधिक थी।

युद्ध के खंडहर और नई दुनिया

पश्चिम बर्लिन में उतना ध्वंस नहीं हुआ था क्योंकि युद्ध का फैसला पूर्वी भाग में हो चुका था और नाजी शासन के केन्द्र भी पूर्वी भाग में थे। पश्चिम बर्लिन के लोगों ने लाल सेना के हाथों में पड़ने से बचने के लिये अमरीकन और ब्रिटिश सेनाओं का स्वागत ही किया था। फिर भी इस भाग में लन्दन आदि की अपेक्षा बहुत अधिक ध्वंस हुआ था। इस भाग में भी इमारतें खूब तेजी से बन रही हैं। कहा जाता है कि इस भाग का अधिकांश बड़ा व्यवसाय अमरीकनों और अंग्रेजों के कब्जे में है। पूंजीवादी व्यवस्था के दूसरे नगरों की तरह दुकानों की संख्या बहुत काफी है। दुकानें छोटी-छोटी हैं। कुछ 'लंदन' के सेल्फरिज की तरह बड़ी भी हैं। उदाहरणतः के० डी० डब्ल्यू और लन्दन के 'वूलवर्थ' की शाखा भी है। दुकानों में ग्राहकों की संख्या अधिक नहीं दिखाई दी। पूर्वी बर्लिन

में दुकानों की संख्या तो कम है परन्तु उन का आकार बहुत बड़ा है और ग्राहकों की भीड़ भी खूब रहती है। सम्भवतः दुकानों की संख्या आवश्यकता से कम है। पश्चिम भाग में यह आवश्यकता से अधिक जान पड़ती है। यही बात खान-पान की दुकानों की है। पश्चिम बर्लिन में ये दुकानें खूब जगमगाती दिखाई देती हैं। कोकाकोला पीती अधनंगी मुस्कराती लड़कियों के चित्र भी वहां खूब हैं परन्तु ग्राहकों की भीड़ नहीं दिखाई देती। पूर्वी भाग में ही व्यक्तिगत छोटे-मोटे होटल या खान-पान की दुकानें हैं अवश्य परन्तु उन की संख्या कम है। बड़ी दुकानों में तो खूब भीड़ रहती है।

दोनों भागों में मूल्यों के सम्बन्ध में काफी उलझन रहती है। दोनों भागों में मार्क का सिक्का चलता है परन्तु दोनों का अपना-अपना मार्क है और दूसरे भाग में नहीं चल सकता। पौंड देकर मार्क लेने पर पूर्व में एक पौंड के केवल छः मार्क मिलते हैं और पश्चिम में बारह। अधिकांश में अपने-अपने क्षेत्रों में मार्कों की क्रय-शक्ति प्रायः समान ही है। मोजे, रुमाल, या छोटी-मोटी चीजें जितने मार्क में पूर्वी भाग में मिलती हैं उतने ही मार्क में पश्चिम में। पौंड देकर सौदा खरीदने वालों को निश्चय ही पश्चिम में सुविधा रहती है।

सिक्के के सरकारी विनिमय दरों के साथ-साथ दूसरा भाव भी चलता है। इस भाव का कारण है पश्चिम के पूंजीपतियों की पूर्वी मार्क की साख को गिराने की चेष्टा। पश्चिमी भाग में पूर्व का सिक्का मिलने में कोई कठिनाई नहीं है। यात्री अपना पौंड या डालर बैंक से तुड़ाते हैं। एक पौंड के बारह पश्चिम मार्क लेकर दूसरी दुकान से उस के पूर्वी मार्क ले लेते हैं। एक पश्चिमी मार्क के बदले चार पूर्वी मार्क सुविधा से मिल जाते हैं। इस प्रकार पौंड के छः पूर्वी मार्क के सरकारी दर के बजाय पौंड के अड़तालीस पूर्वी मार्क मिल सकते हैं और तब पूर्वी भाग में जाकर खूब खरीदारी की जा सकती है। इस से पूर्वी भाग में आवश्यक पदार्थों की कमी हो जाती है।

पश्चिम बर्लिन में पूर्वी भाग का सिक्का इतनी संख्या में कहां से आ जाता है ? इस का रहस्य यह है कि जर्मनी की भूमि का दो-तिहाई भाग पूर्वी समाजवादी प्रजातन्त्र सरकार में है। बर्लिन प्रायः पूर्वी भाग से घिरा हुआ है। ऐसे जर्मन बड़े-बड़े किसान या सम्पत्ति के स्वामी दूसरे लोग जिन्हें अपनी सम्पत्ति समाजवादी व्यवस्था द्वारा जब्त कर ली जाने की आशंका थी, अपनी सम्पत्ति बेच-बेच कर पश्चिम बर्लिन के पूंजीवादी बैंकों में पूर्वी मार्क जमा कराते रहते

थे । यह सब धन पूर्वी जर्मनी के सिक्के के रूप में ही आता था । इस के अतिरिक्त पश्चिम जर्मनी के पूंजीपति व्यवसायी समाजवादी सरकार के सिक्के का मूल्य घटा कर उन की साख बिगाड़ना चाहते थे । इस के लिये करोड़ों का घाटा उठा लेना भी बड़ी बात नहीं । जर्मनी में भी पश्चिमी सिक्के का मूल्य बहुत कम है, अर्थात् दो पश्चिमी मार्क एक पूर्वी मार्क के बराबर गिने जाते हैं । विनिमय का यह अस्वाभाविक दर धीरे-धीरे गिर रहा है, या पूर्वी मार्क का विनिमय दर पश्चिम जर्मनी में भी बढ़ रहा है । दो वर्ष पूर्व पश्चिमी मार्क के आठ पूर्वी मार्क मिलते थे । दर आठ से छः आया, अब चार ही है । कभी पौने चार ही मिलते हैं ।

आवश्यक पदार्थों की सहूलियत किस ओर है, यह विनिमय के कृत्रिम दरों से नहीं जाना जा सकता है । सीधी कसौटी यह है कि स्मगलिंग या चोरी से माल किस ओर से किस ओर जाता है ? यह प्रकट है कि मक्खन, पनीर, मांस, अण्डे आदि पूर्वी जर्मनी से पश्चिम की ओर बिक्री के लिये जाते हैं । कुछ लोग तो चोरी से अण्डों का अच्छा-खासा व्यवसाय कर लेते हैं । यदि पूर्वी जर्मनी से दो मार्क के एक दर्जन अण्डे चोरी से पश्चिम में पहुंचा दिये जायं तो वहां के चार साढ़े चार पश्चिम मार्क में बिक जायंगे । चार पश्चिम मार्क के बदले पश्चिम में ही सोलह पूर्वी मार्क मिल सकेंगे । एक ही चक्कर में आठ गुना लाभ हो सकेगा । पश्चिम बर्लिन से पूर्वी बर्लिन में काफी, चाय, सिगरेट और जूते चोरी से आते हैं ।

× × ×

रोटी पर टिकट

मकानों या निवास-स्थान की कठिनाई दोनों ही ओर है । दोनों ओर इमारती काम जोरों से चल रहा है । पश्चिम में इस के लिये अमरीका माल और रुपया दोनों ही खूब उधार दे रहा है । पूर्वी भाग में निवास-स्थान के लिये दरख्वास्त देकर काफी समय प्रतीक्षा करनी पड़ती है । सरकार की ओर से प्रयत्न रहता है कि दो व्यक्तियों के लिये बने स्थान में तीन निर्वाह कर लें । पश्चिम भाग में

स्थान की समस्या खर्च कर सकने की शक्ति पर निर्भर करती है। किराये बहुत अधिक है और उस पर भारी पगड़ी भी देनी पड़ती है।

पूर्वी जर्मनी में सेब के अतिरिक्त दूसरे फल, नारंगी, केला आदि बहुत ही कम दिखाई देते हैं। पश्चिम भाग में यह फल जगह-जगह नजर आते हैं परन्तु दाम बहुत अधिक हैं। चोरी से आयात-निर्यात पर दोनों ओर से रोक-थाम की जाती है परन्तु लोगों के आने-जाने पर रोक-थाम बहुत कठिन है। पश्चिम बर्लिन के लोग प्रायः ही पूर्वी सिक्का जेब में डाल कर इस ओर की खान-पान की दुकानों में आकर खा-पी जाते थे। परिणाम में पूर्वी बर्लिन के लोगों को बहुत कठिनाई भुगतनी पड़ती थी इसलिये कुछ समय से पूर्वी बर्लिन की दुकानों में खरीददारी के समय अपना टिकट दिखाने का नियम कर दिया गया है। बिना टिकट दिखाये कोई व्यक्ति खाने-पीने की वस्तुएं नहीं खरीद सकता। यही बात कैमरों और टाइपराइटर वगैरह के बारे में भी है।

चोरी से निर्यात की रोक-थाम अच्छी खासी समस्या है। कई बार काफी बड़ी मशीनों और माल की भी चोरी हो जाती है। ऐसा साहस करने वाले लोग छुरे ही नहीं, पिस्तौल, छोटी मशीनगन या लुइसगन का भी उपयोग करने से नहीं चूकते। मेरे बर्लिन जाने से कुछ ही दिन पूर्व, बर्लिन के एक सर्कस के घोड़ों को पश्चिम में भगा ले जाने का प्रयत्न किया गया था। पूर्वी बर्लिन में एक बहुत प्रसिद्ध और पुराना सर्कस है। समाजवादी व्यवस्था कायम होने पर सर्कस के मालिक ने सर्कस के कार्यकर्त्ताओं के साथ सहकारी समिति के रूप में सर्कस चलाना स्वीकार कर लिया था। सब लोगों के उत्साह से काम करने पर सर्कस ने और भी उन्नति की। मालिक हिसाब में कुछ गड़बड़ करने लगा। गड़बड़ लाखों मार्कस के करीब की थी। हिसाब के मामले में सहयोगियों में कुछ झगड़ा हो गया मालिक नाराज होकर सर्कस से अलग हो गया। उस का विश्वास था कि सर्कस उस की सूझ और व्यवस्था के कौशल पर ही निर्भर करता है परन्तु सर्कस चलता ही रहा। मालिक नाराज होकर पश्चिम बर्लिन चला गया। सर्कस का डेरा पश्चिम बर्लिन की सीमा से कुछ ही गज इस ओर है। इस सर्कस की विशेषता है इस के सधे हुये घोड़े। सर्कस जगत में ये घोड़े बहु-मूल्य गिने जाते हैं।

सर्कस का मालिक पश्चिम बर्लिन में सीमा के उस पार सर्कस के समीप ही रहता था। उस ने पश्चिम बर्लिन से पन्द्रह-बीस छोकरे, अठारह-बीस साल की

उम्र के चोरी के लिये तैयार कर लिये। उन्हें घोड़ों के बांधने के स्थान के विषय में सब कुछ समझा दिया। लड़कों को खूब शराब पिलाई। संकट के समय बहादुरी दिखाने के लिये एक-एक पिस्तौल दे दिया। इनाम के दस-दस मार्क का वायदा था।

योजना यह थी कि रात में जिस समय सर्कस आरम्भ होने पर सब लोग व्यस्त हो जायें, लड़के घोड़ों को खोल कर पश्चिम बर्लिन की सीमा में ले आयें। पश्चिम की सीमा में कदम रख लेने के बाद पूर्वी पुलिस कुछ नहीं कर सकती थी। अमरीकन फिल्म देख कर चोरी में जोर आजमाने का शौक पूरा करने गये छोकरे ने नशे में या शेखी में घोड़ों की रखवाली करने वाले चौकीदार को डराने के लिये उस पर एक गोली चला दी। गोली निशाना चूक गई। चौकीदार ने लड़के को गर्दन से पकड़ कर जमीन पर पटक दिया। लड़का अपने साथियों के नाम ले लेकर पुकारने लगा। उनमें से काफ़ी लोग पकड़े गये। उनकी खूब पिटाई हुई और उन्होंने सब कुछ बक दिया। इस प्रकार की चोरियों के बहुत प्रयत्न होते रहते हैं। खास तौर पर इमारती सामान के लिये चोरियां प्रायः छोकरों को शराब पिला कर इनाम और हथियार देकर कराई जाती हैं। पश्चिम बर्लिन में ऐसे बेकार अवारागर्द लड़कों की काफ़ी संख्या बताई जाती है।

पश्चिम बर्लिन में अमरीकन फ़िल्मों का बहुत जोर है। फ़िल्मों के अतिरिक्त विनोद के दूसरे साधन भी कम नहीं हैं। लंदन, पैरिस जैसी नाइट क्लबें और कैबरे, जहां पैसा खर्च सकने पर मदिरा और नारी जिस रूप और मुद्रा में चाहें मिल सकती हैं। ग्राहक ढूंढने के लिये आतुर किराये की लड़कियां भी मौजूद हैं। इस दृष्टि से पूर्वी भाग कुछ सूना-सा लगता है। यहां भी कई सिनेमा हैं, आपेरा हैं, और नाटक का रंगमंच भी है, परन्तु मीना बाजार नहीं है। यहां रंगमंच पर 'ब्रास्त' के यथार्थवाद का बहुत जोर है। ब्राख्त, भाव-व्यंजना को ही अभिनय और नाटक में सब कुछ समझता है। रंगमंच पर दृश्यों द्वारा भूमिका प्रस्तुत करना भी वह नाट्यकला की न्यूनता ही समझता है। एक अंग्रेजी नाटक 'भरती का अफ़सर' जर्मन में हो रहा था। रंगमंच पर साज सामान द्वारा वातावरण उपस्थित करने का कोई प्रयत्न नहीं था परन्तु अभिनय कला और कथा-वस्तु का गठन बहुत ही जमा हुआ और सरस था।

× ×

कैबरे

फ्रेडरिक स्थास्सा चौक में एक खूब बड़ी इमारत की ओर संकेत कर शैलन-बर्गर ने बताया कि यह बहुत प्रसिद्ध कैबरे है, चलोगे ? तुरंत स्वीकार कर लिया। मन में गुदगुदी थी, यहां का कैबरे भी देखा जाए। कैबरे यहां भी है। इसे सम्भवत: विदेशी साथियों से छिपाया जाता है। लंदन, पैरिस, वियाना और जेनेवा में कैबरे छोटी-छोटी जगहों में सीमित ग्राहकों के लिये होते हैं। दाम काफी लगता है। कैबरे की विशेषता नंगे नाच और दूसरे प्रकार की स्वच्छन्दता होती है। इस कैबरे के हाल के भीतर जाकर विस्मित रह गया। हाल क्या, सर्कस का पंडाल ही समझिये। हम लगभग कार्यक्रम आरम्भ होने के समय ही पहुंचे थे। भीतर हजार आदमी से क्या कम रहा होगा।

विस्मय प्रकट किया—"यह कैबरे है ! लंदन, वियाना, जेनेवा में तो कैबरे कुछ और ढंग का होता है। इतना बड़ा नहीं होता !"

शैलनबर्गर ने मेरा अभिप्राय समझा—"हां, वैसा कैबरे पहले यहां भी होता था। पश्चिम भाग में अब भी है। यह दूसरे ढंग का सार्वजनिक कैबरे है। युद्ध के पश्चात् व्यवस्था समाजवादी सरकार के हाथ में आने पर सब से पहले यह इमारत बनाई गयी थी। उस समय सब ओर ध्वंस ही ध्वंस था। जरूरत थी, कोई एक ऐसी जगह तो हो जहां लोग संध्या समय घंटे दो घंटे के लिए बैठ सकें। इस हाल में बारह सौ आदमी बैठ सकते हैं और यह सदा ही ठसाठस भरा रहता है। दोपहर बाद से रात तक तीन जमाव लगते हैं।

पश्चिमी योरुप के कैबरे में तो शराब बहती है। इस कैबरे के भीतर तो नहीं, परन्तु बाहर बरामदे में बियर मिल सकती थी। ह्विस्की, ब्रांडी, वगैरा कुछ नहीं। बियर भी एक बार में आधा गिलास; प्यास से गला सूख रहा हो तो कुछ सहायता मिल जाये। कार्यक्रम में कई प्रकार के मनोरंजन थे। कुछ सर्कसी खेल भी थे। गान, वाद्य और नाच तो था ही। सबसे अधिक थे प्रहसन ! उन के वार्तालाप ऐसे थे कि लोग हंसते-हंसते दोनों हाथों से पेट को पकड़ लेते थे। शैलनबर्गर हंसी के मारे कुछ बता ही न पा रहा था। वह हंसी रोककर जब तक एक वाक्य का अनुवाद करे तब तक मंच पर कोई दूसरी बात और भी अधिक हास्यजनक हो जाती और उस के कंधे हिलने लगते। वह बार-बार खेद प्रकट कर कहता—हास्य का अनुवाद तो कठिन ही होता है न, और फिर यह

लोग अनुवाद करने का अवसर ही नहीं देते। वातावरण और भाव-भंगी से स्वयं मेरे होठों पर भी मुस्कान आ जाती थी। मैं वार्तालाप समझने का प्रयत्न छोड़ मन ही मन लन्दन, जेनेवा और पूर्वी बर्लिन, प्राहा के कैबरे में मिलने वाले आनन्द और मनोरंजन की तुलना कर रहा था। प्राहा के एक कैबरे में भी ऐसे ही खूब हंसाने वाले प्रहसन देखे थे।

विनोद, मनोरंजन और खेल के प्रसंग में एक और बात कह दूं। घर से चलते समय नन्दू ने एक ही अनुरोध किया था—'मेरे लिये विलायत से गुलेल जरूर लेते आइयेगा।' प्राहा में जब भी बाजार जाता दुकानों में गुलेल ढूंढ़ता फिरता। लड़कों के खेलों की चीजों की दुकानों में फुटबाल, गेंद-बल्ला, भाला, तीर-कमान, बरफ पर फिसलने और दौड़ने की चीजें, सभी कुछ था परन्तु गुलेल कहीं न मिली। खयाल था, जर्मन लोग तो अपने लड़कों को शिकार करना जरूर सिखाते होंगे, बर्लिन में गुलेल जरूर मिल जायगी। पूर्वी बर्लिन में भी कई दुकानों पर देखा, स्तालिन एल्ले की तेरह मंजिल की दुकान में भी तलाश किया। गुलेल न दिखी तो बिक्री करने वाली लड़की से बात की—"एक गुलेल की जरूरत है।"

लड़की ने वितृष्णा से होंठ सिकोड़ कर उत्तर दिया—"किसी दुकान पर नहीं मिलेगी। यह वस्तु खेल की चीजों की सूची में नहीं है। चिड़िया मारना भी कोई खेल है?"

उस का अहिंसावाद कुछ जंचा नहीं। "यहां यह तीर-कमान और छर्रे की हवाई बन्दूक तो बिकती है। इन चीजों से चिड़िया नहीं मारी जा सकती!"

लड़की ने उत्तर दिया—"यह सब चिड़िया मारने के लिए नहीं है। यह तो शिक्षाप्रद खेल है। गुलेल तो केवल मात्र चिड़िया, गिलहरी मारने के लिए ही है। जरूर ही चाहिए तो पश्चिम भाग में जाकर खरीद लो। वहीं लोग अपने बच्चों को ऐसे वाहियात खेल खेलने देते हैं।"

उपदेश तो सुन लिया परन्तु नन्दू का छोटा-सा आग्रह पूरा करना ही चाहता था। दूसरे दिन पश्चिम बर्लिन के बाजार में जैलिंगर के साथ जिस दुकान में गया तुरन्त गुलेल मिल गई। एक ही नहीं बहुत-सी किस्में मौजूद थीं, और उस के साथ सुविधा से चिड़िया मार सकने के लिये कांटेदार छर्रे-वाली बन्दूकें और पिस्तौलें भी थीं। बात तो छोटी-सी है परन्तु जीवन में आर्थिक व्यवस्था का परिवर्तन लोगों के विचारों और मनोवृत्ति को कैसे बदल देता है!

पूर्वी बर्लिन में लाल सेना का स्मारक बहुत भव्य और विशाल बना है। खूब प्रशस्त एक बाग है, लाहौर या श्रीनगर के शालीमार बाग या निशात बाग के ढंग पर। बाग के एक के बाद एक तीन भाग है, तीन सीढ़ियां, मंजिलों की तरह। एक-एक सीढ़ी एक-एक मैदान है। पहले मैदान से दूसरा और दूसरे से तीसरा प्रायः पन्द्रह फुट नीचा है। तीनों भाग अपने में पूर्ण हैं। किसी भाग में रहने पर एक ही भाग दिखाई देता है। बीच में नहर और उन में फव्वारे सभी भागों में एक-से हैं। मैदानों में दोनों ओर बजरी और सीमेंट की खूब बड़ी-बड़ी शिलाओं पर लाल सेना के अभियान की कहानी चित्रों में उत्कीर्ण है। पहले मैदान के बीचोंबीच ऊंचे स्तम्भ पर रूसी माता की सिर झुकाये आंसू बहाती बहुत ही शोकाकुल विशाल मूर्ति है। अंतिम भाग के अन्त में मन्दिर के आकार का एक बहुत ऊंचा स्तम्भ है। उस स्तम्भ पर रूसी माता की मूर्ति के सामने एक रूसी सिपाही अपनी बन्दूक झुकाये और बाईं बांह की गोद में जर्मन शिशुओं को रक्षा में लिये है। अपनी संतानों के लिये शोकाकुल रूसी माता को वह, जर्मन शिशुओं की रक्षा कर, अपने बलिदान की सार्थकता का आश्वासन दे रहा है। नीचे मंदिर में बैजंटाइन कला के नमूने में कांच के टुकड़ों से स्तालिन, लेनिन और कम्युनिस्ट जर्मन नेताओं के चित्र बने हैं। खूब बड़ी-बड़ी फूल-मालाएं इन चित्रों पर चढ़ाई रहती हैं।

× × ×

रहस्यमयी सुरंग

उन दिनों बर्लिन में हाल में पकड़ी गई एक गुप्त अमरीकन सुरंग की बहुत चर्चा थी। पत्रों में उस के सम्बन्ध में विदेश से आये पत्रकारों और यात्रियों के वक्तव्य भी प्रकाशित हो रहे थे। यह सुरंग बर्लिन के अमरीकन रडार स्टेशन के क्षेत्र से पूर्वी बर्लिन की सीमा में टेलीफोन की मुख्य केब्लस (मोटी तारों) पर पहुंची हुई थी। पूर्वी बर्लिन के टेलीफोन केब्लस से सूत्र लेकर बर्लिन में पूर्वी जर्मन सरकार और देश के दूसरे भागों में होने वाली बातचीत को सुना जा रहा था। पूर्वी जर्मनी और पश्चिमी जर्मनी में आर्थिक व्यवस्था और सिद्धान्तों के जो भी भेद हों, या परस्पर होड़ हो, जर्मनी का यह बंटवारा अन्तर्राष्ट्रीय

समझौते से हुआ है। नाजीवाद के विरुद्ध यह दोनों सरकारें परस्पर सहयोग और सहायता की संधि में बंधी हुई हैं।

पूर्वी जर्मन सरकार का कहना था कि इस प्रकार सुरंग बना कर हमारी व्यवस्था के सम्बन्ध में जासूसी करना धोखा, नीचता और मित्र-द्रोह है। इस सम्बन्ध में उचित जांच होनी चाहिये और पश्चिम बर्लिन के अमरीकन अधिकारी इस विषय में जवाब दें क्योंकि सुरंग अमरीकन रडुर स्टेशन से ही बनाई गई है। सुना है कि अमरीकन पत्रों का कहना था कि इस भेदिया सुरंग की जवाबदेही बर्लिन की अमरीकन सरकार पर डालना अन्याय है। यह सुरंग नाजियों के समय की बनी हुई होगी, इस का भेद पहले न मालूम हो सका होगा। जब पूर्वी जर्मन सरकार ने सरकारी तौर पर पश्चिमी बर्लिन में मौजूद मुख्य अमरीकन सैनिक अधिकारी से इस विषय में स्थिति साफ करने के लिये कहा तो उत्तर था—इस गम्भीर विषय में वाशिंगटन की सरकार ही उत्तर दे सकती है।

यह सुरंग देखने की बहुत उत्सुकता थी। स्वाभाविक है, ऐसी सुरंग देखने की उत्सुकता हजारों ही आदमियों को थी; और इस सुरंग पर बहुत बड़ा जमघट लगने लगा था। ऐसी भीड़ में सुरंग को हानि पहुंच जाने की आशंका थी और पूर्वी बर्लिन सरकार अपराध के प्रमाण स्वरूप सुरंग को जैसा का तैसा रखना चाहती थी इसलिये आज्ञा थी कि केवल गिने-चुने आदमी एक समय जाकर सुरंग देख सकें। सुरंग देखने के लिये आज्ञा-पत्र भी लेना पड़ता था।

शैलनबर्गर आज्ञा-पत्र ले आया था। हम लोग सुरंग देखने तीसरे पहर गये। धीमी-धीमी बूंदा-बांदी हो रही थी। हम लोग पूर्वी बर्लिन से पूर्वी बर्लिन के विमान अड्डे पर जाने वाली सड़क पर पश्चिम बर्लिन की सीमा में बने अमरीकन रडुर स्टेशन के सामने पहुंचे। तारों से घिरे हाते में रडुर स्टेशन की इमारत सामने दिखायी दे रही थी। सड़क से चार सौ गज अंतर होगा। सड़क के किनारे खड़ी बहुत बड़ी फौजी लारी में छोटा-सा दफ्तर बना लिया गया था। तीन नौजवान अफसर उस में बैठे थे। आज्ञा-पत्र देख कर उन में से एक हमें वह रहस्यमय स्थान दिखाने साथ चला।

सड़क के किनारे लकड़ियां गाड़कर मोमजामे के तिरपाल डाल दिये गये थे कि नीचे खुदी हुई कच्ची जमीन वर्षा के जल से बह कर गिर न जाये। लगभग सवा गज की गहराई पर टेलीफोन की तारें ले जाने वाले मोटे-मोटे नल

दिखायी दे रहे थे । इन नलों में भरे तारों में बहुत चतुराई से पैवंद लगाये गये थे । बर्लिन के मुख्य केन्द्र की दिशा में से आने वाली तारों में पैवंद लगा कर उन्हें अमरीकन रड्डर स्टेशन की दिशा में नीचे गहराई में सड़क के उस पार ले जाया गया था । नीचे झुक कर देखने से सड़क के धरातल से प्राय: आठ-दस फुट नीचे उज्ज्वल प्रकाश दिखायी दे रहा था । उस ओर से टेलीफोन के तारों का एक गुच्छा आकर बर्लिन से बाहर जाती टेलीफोन की तारों में सावधानी से जोड़ दिया गया था ।

नौजवान अफसर सड़क के इस पार इतना दिखाकर हमें सड़क के दूसरी ओर अमरीकन रड्डर स्टेशन की दिशा में ले गया । सड़क से दस-पन्द्रह गज पर तिरपालों की एक और आड़ खड़ी थी और उस के नीचे गहराई में उतरने का मार्ग था । नीचे एक सुरंग थी, प्रकाश से जगमग । सुरंग पूर्वी बर्लिन के टेलीफोन नलों की ओर से अमरीकन रड्डर स्टेशन की ओर जा रही थी । सुरंग खूब मजबूत और पक्की बनायी गयी थी । छत के नीचे लोहे और टीन की पट्टियों की मेहराब बनी हुई थी । दीवारों को गिरने से बचाने के लिए रेत के बोरे जमाकर लोहे के गजों से संभाल दिया गया था । नीचे फर्श पर लकड़ी बिछी हुई थी । सुरंग की ऊंचाई, इतनी थी कि अच्छा कद्दावर आदमी बिना सिर झुकाये सीधा चल सकता था ।

नौजवान अफसर हमें पहले पूर्वी बर्लिन से आते तारों की दिशा में ले गया । इस ओर कुछ ही कदम पर एक छ: इंच मोटा फौलादी दरवाजा था और दरवाजे के पीछे एक कमरा । कमरे में एक दीवार के सहारे आराम से बैठ कर काम करने योग्य बेंच और स्टूल थे और उस के सामने की दीवार के सहारे एक पूरा टेलीफोन एक्सचेंज । पूरा कमरा एस्बेस्टो में मढ़ा हुआ था ताकि सीलन न आ सके । सर्दी से बचाव के लिए गरम पानी के नल भी अमरीकी रड्डर स्टेशन की ओर से आ रहे थे । इसी तरह ताजी हवा आती रहने का भी पूरा प्रबन्ध था । टेलीफोन एक्सचेंज के सामान में, कुछ एक चीजों पर ब्रिटेन में बनने की मोहर थी, शेष सब पर अमरीका में बनाये जाने की मोहर स्पष्ट पढ़ी जा सकती थी । प्रकट था कि सामान कहां से आया है । टेलीफोन की तारों में बिजली की शक्ति बढ़ाने के लिए बैट्रियां भी रखी हुई थीं ताकि बीच में विघ्न से कम हो गयी बिजली की क्षति को पूरा कर दिया जाय और सन्देह न हो । सड़क की ओर से शत्रु अचानक न आ जाय, इसलिए

उस ओर भी फौलाद का मोटा दरवाजा था। अमरीकन सेना के टेलीफोन विभाग के लोग यहां बैठ कर कई मास तक पूर्वी बर्लिन की टेलीफोन तारों के सब संदेश सुनते रहे थे। सुरंग का दूसरा दरवाजा पश्चिमी बर्लिन के भाग में अमरीकन रड्डर स्टेशन की सीमा में खुलता था

यह जानने का कौतूहल था कि इस सुरंग का भेद खुला कैसे ? कुछ मास से टेलीफोन की इन लाइनों पर बातचीत में अस्पष्टता और बाधा अनुभव होने की शिकायतें आ रही थीं। टेलीफोन विभाग का अनुमान था कि केबल्स लगाते समय इंजीनियरों से कुछ भूलें हुई हैं। शायद जस्ते के नलों में सूराख या दरार रह जाने से भीतर तारों में सीलन पहुंच जाने से विद्युत की गति में रुकावट आती है। रड्डर द्वारा देखा गया कि गड़बड़ किस स्थान पर आरम्भ होती है। नलों को ठीक करने के लिए खुदाई करने पर नलों में से अमरीकन रड्डर की ओर जाती शाखाएं देख कर विस्मय हुआ। टेलीफोन के नक्शों में इन शाखाओं का कोई संकेत न था सन्देह हुआ। धरती के नीचे टेलीफोन की शाखा के मार्ग का अनुमान कर सड़क के पश्चिम ओर पन्द्रह गज के अंतर पर खुदाई की गयी। दस फुट की गहराई पर नीचे लोहे की चादर की रुकावट आ गयी। संदेह और भी बढ़ा। चादर से तुरन्त एक वर्गाकार टुकड़ा काट डाला गया। नीचे देखा; प्रकाश और सुरंग। लोगों के दौड़ने, भागने की आहट भी आयी और बहुत जोर से फाटक बंद कर देने का धमाका सुनाई दिया। जर्मन सिपाही मशीनगनें लेकर भीतर कूद गये। धरती के नीचे उज्जवल प्रकाश में पूरा टेलीफोन एक्सचेंज चल रहा था। तुरन्त ही फौलादी फाटक को खोला गया। कहा जाता है, उस समय भी सुरंग में अमरीकन रड्डर स्टेशन की ओर भागते कुछ व्यक्ति देखे गये थे। इस के बाद अमरीकन दिशा से बिजली का सम्बन्ध कट गया।

पूर्वी जर्मन सरकार ने इस स्थान को सुरक्षित रखा हुआ था। कोई भी विदेशी पत्रकार सुरंग को देख सकता था। अनेक ब्रिटिश और अमरीकन पत्रकार भी सुरंग को देख गये थे, परन्तु उन देशों के पत्रों में इस समाचार को दबा दिया गया था।

भारत लौटकर मैंने भी यहां मित्रों से जिज्ञासा की कि यहां पत्रों में बर्लिन जासूसी सुरंग पकड़े जाने के विषय में कोई समाचार छपा था या नहीं ? उत्तर मिला—संक्षिप्त समाचार छपा था कि बर्लिन में पूर्वी और अमरीकन भागों के बीच कोई सुरंग पकड़ी गई है। सन्देह किया जाता है कि यह जासूसी के लिये

अमरीकनों द्वारा बनाई गई थी ।

हमारे यहां और प्रायः दूसरी जगह भी बर्लिन के पूर्वी और पश्चिमी भागों को रूसी और अमरीकन भाग पुकारने का चलन है । अमरीकन भाग में नौकरी के लिये बहुत से अमरीकन सैनिक दिखाई देते हैं । अमरीकन रडार स्टेशन और ऐसे कई दूसरे विभाग भी हैं । अमरीकन रडार स्टेशन से पूर्वी बर्लिन की सीमा के भीतर तक सुरंग बना सकना पश्चिम बर्लिन में अमरीकन शक्ति का प्रमाण है । विशेषज्ञों का अनुमान है, यह सुरंग चुपचाप बनाने में दो-तीन मास से कम समय न लगा होगा । इस में मौजूद सामान और इस पर व्यय किये गये श्रम की लागत सत्तर अस्सी लाख या एक करोड़ रुपये से कम न होगी । पश्चिम बर्लिन की पुलिस पर भी अमरीकनों का पूरा कब्जा बताया जाता है । पूर्वी भाग में रूसी सैनिक कहीं दिखाई नहीं देते । पूर्वी जर्मनी में रूसी सैनिक न हों, यह नहीं कहा जा सकता । याद है, बर्लिन के बाहर देहात में एक हाते पर लालसेना का बोर्ड लगा देखा था और पोट्सडाम के समीप लालसेना की टुकड़ी टेलीफोन की नई लाइनें भी लगा रही थी । बर्लिन नगर में रूसी सेना का आतंक नहीं जान पड़ता । लोगों में सोवियत से पाई सहायता के लिये कृतज्ञता तो अवश्य है परन्तु सांस्कृतिक रूप से अपने आप को किसी प्रकार हीन मानने की भावना नहीं है ।

× × ×

जर्मनी के एकीकरण का प्रश्न

अन्तर्राष्ट्रीय जगत में पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी के एकीकरण के प्रश्न का बहुत महत्व है । इस के लिये प्रयत्न भी होते रहते हैं । बर्लिन और जर्मनी के लोग भी इस विभाजन को अस्वाभाविक समझते हैं, परन्तु एकीकरण का सरल उपाय नजर नहीं आता । जर्मनी के दो भाग इस समय दो भिन्न विचार धाराओं और अर्थनीतियों के प्रतीक बन रहे हैं । कौन भाग दूसरे की अर्थनीति को अपना ले ? और दोनों भागों के लिये संयुक्त नीति क्या हो ? पूर्वी जर्मन सरकार के पास तो इस का उत्तर है कि जैसे वे अपने भाग में निजी व्यवसाय को अवसर दे रहे हैं वैसे ही अपनी व्यवस्था में पूरे भाग को सह-अस्तित्व का अवसर दे

सकेंगे। पूंजीवादी व्यवस्था के पास इस का क्या हल है मालूम नहीं। दोनों भागों को अलग-अलग रखने वाली सीमाओं को दूर कर देने का मतलब होगा कि बर्लिन दो आर्थिक व्यवस्थाओं की सफलता की होड़ का अखाड़ा बन जायगा। आज भी वह ऐसा अखाड़ा बना हुआ है। लोगों का कहना है कि आज भी यह होड़ पूरी गति से चल रही है। दोनों व्यवस्थाएं अपने-अपने भाग में समृद्धि दिखाने का यत्न करती है। इंगलैंड और अमरीका का माल बर्लिन में न्यूयार्क और लन्दन की अपेक्षा सस्ता मिलता है। इतना ही नहीं पश्चिम जर्मनी के दूसरे नगरों हैम्बर्ग, फ्रांकफर्ट, क्लोन आदि की अपेक्षा वस्तुएं पश्चिम बर्लिन में अधिक और सस्ती भी मिलती है।

बर्लिन से प्राहा लौटने के लिये सोमवार प्रातः के विमान में स्थान ले लिया था। शनिवार दोपहर से बाजार और दफ्तर बन्द होने लगे। मालूम हुआ कि रविवार को व्हिटमन का त्यौहार है। सब कुछ बन्द रहेगा। शैलनबर्गर ने चिंता प्रकट की, कल क्या प्रोग्राम हो सकेगा, सब कुछ तो बन्द रहेगा ? मैंने पूछा—बर्लिन के नागरिक क्या करेंगे ?

कोई भी धार्मिक त्यौहार हो, आजकल योरुप के लोग दिन नगर से बाहर किसी जंगल या उपवन या रम्य देहाती स्थान पर बिताने का शौक पूरा करते हैं। सुबह खूब तड़के उठ कर जिस का जैसा सामर्थ्य होता है, रेल, बस, मोटर-साइकिल या मोटर से नगर से जितनी दूर जाकर लौट आना सम्भव होता है, चले जाते हैं। मैंने और शैलनबर्गर ने ड्रेस्डन से होते हुये कोनिग्स्टाइन और बाडशैंडर तक हो आने का कार्यक्रम बना लिया।

एक बड़ी रूसी 'पोबियेदा' गाड़ी मिल गई थी। सड़क ऐसी थी कि गाड़ी को तेज चला सकने का अवसर था। शैलनबर्गर ने कहा—यह सड़कें जर्मनी के लिये हिटलर की बहुत बड़ी देन हैं। यह सड़कें पूरे जर्मनी की एक सीमा से दूसरी सीमा तक पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण सब ओर चली गई हैं। यह सड़कें मोटर-पथ या 'ओटोबान' कहलाती हैं। पूरी की पूरी सड़कें कंकरीट और सीमेंट की बनी हुई हैं। चौड़ाई खूब अधिक है। बीचोंबीच घास की पट्टी है। एक ओर जाने का दूसरी ओर आने का मार्ग है। दोनों ओर तीन-तीन लारियां सुविधा से चल सकती हैं। युद्ध के समय जर्मनी में सेनाएं इन्हीं सड़कों से सीमा तक बहुत जल्दी पहुंच जाती थीं। इन सड़कों पर साठ-सत्तर मील प्रति घण्टा की गति साधारण बात है। मोटर निरन्तर एक चाल से चल सके इस के लिये

यह सड़कें किसी भी नगर, कस्बे या गांव के बीच से नहीं गुजरतीं, नगरों को एक ओर छोड़ कर निकल जाती हैं। कोई दूसरी सड़क, रेल की लाइन या नहर भी इन सड़कों को नहीं काटती। ऐसे स्थानों पर सड़क इन बाधाओं के ऊपर या नीचे से निकल जाती है।

शैलनबर्गर ने तड़के खूब जल्दी चलने के लिये कहा था और ड्राइवर भी खूब तेज चाल से आया था। कारण यह कि इतने लोग सभी दिशाओं में बर्लिन से बाहर जाते हैं कि सड़क किनारे के होटलों में विशेष प्रबन्ध करने पर भी विलम्ब से आने वाले खाने-पीने के लिये कुछ पा नहीं सकते। दो रेस्तरां में नाश्ते के लिये स्थान न मिलने के कारण और आगे बढ़े। एक स्थान पर कुछ मक्खन रोटी और काफी मिल पायी। माईसीन के समीप हम लोग 'ऑटोबान' सड़क से छोटी सड़क पर हो गये। माइसीन चीनी मिट्टी के काम के लिये संसार भर में प्रसिद्ध है। बर्लिन में एक संग्रहालय में माइसीन का सुन्दर काम देखा था। यह लोग चीनी के झाड़-फानूस तक बनाते हैं। सब से विस्मयजनक वस्तु देखी चीनी मिट्टी की बनी बड़ी-बड़ी घंटियाँ। इन घंटियों में भीतर धातु की जीभ नहीं रहती। खूब कसा हुआ नमदा लपेट कर तैयार किये लकड़ी के हथौड़े से इन्हें बजाया जाता है और स्वर बिलकुल कांसे के घण्टे की तरह गुरु गम्भीर, मधुर उत्पन्न होता है। माइसीन में एक छोटा संग्रहालय रेड-इंडियन लोगों के जीवन से सम्पर्क रखने वाले पदार्थों और तथ्यों का है। स्थान जरूर छोटा है, परन्तु उस में जानकारी बढ़ाने वाला ऐतिहासिक रोचक सामान इतना अधिक है कि विस्मय ही होता है।

बारह बजे ड्रेस्डन पहुंच गये। ड्रेस्डन पूर्वी जर्मनी का बहुत प्रसिद्ध औद्योगिक नगर था। नगर पर इतनी अधिक गोलाबारी हुई थी कि पूरा नगर मलबे से भरा मैदान ही बन गया है। सौभाग्यवश कुछ ऐतिहासिक स्थान न्यूनाधिक हानि उठा कर भी अभी खड़े हैं। ड्रेस्डन का कला-संग्रहालय भी संसार प्रसिद्ध था। इस नगर पर अधिकार कर लेने पर लाल-सेना यहाँ के सब चित्रों को उठा कर मास्को ले गई थी। १९५५ के जुलाई मास में मैं मास्को में था, तब यह पूरी प्रदर्शनी वहीं थी और नगर में घोषणा कर दी गई थी कि ड्रेस्डन से आये चित्र ड्रेस्डन को लौटा दिये जाने का निश्चय कर लिया गया है। जो लोग इस संग्रह को देखना चाहें एक मास के भीतर देख लें। प्रदर्शनी में टिकट से प्रवेश था। तिस पर भी भीड़ इतनी अधिक रहती थी कि दर्शकों के लिये मियाद

लगा दी गई थी कि कोई व्यक्ति दो घण्टे से अधिक समय के लिये प्रदर्शनी में नहीं रह सकता था। दो घण्टे पश्चात् प्रदर्शनी में आये दर्शकों को बाहर कर नये लोगों को भीतर आने का अवसर दिया जाता था। इस चित्र-संग्रह को मास्को में ही देख आया था। ड्रेस्डन में पहुंचा तो संग्रहालय में मास्को से लौटे चित्रों की व्यवस्था से लगा सकने के लिये चित्रों के भाग में प्रवेश बन्द था। मुझे चीनी मिट्टी का कलात्मक संग्रह देखने का ही अधिक आग्रह था। प्रायः एक घण्टे तक देखते रहे। मैंने अपने जीवन में चीनी मिट्टी में ऐसा महीन काम कभी न देखा था।

प्रायः दो बजे बाडशैंडर पहुंच पाये। कुछ विलम्ब से पहुंचने का परिणाम सामने आया। सभी रेस्तराँ खचाखच भरे हुये थे। किसी भी रेस्तराँ में स्थान न मिला। बाडशैंडर लगभग चेकोस्लोवाकिया की सीमा पर एक घाटी की गोद में है। पहाड़ी के ऊपर की सड़क से आते समय ड्राइवर ने कोहरे में से दूर दिखते पहाड़ की ओर संकेत कर कहा था—"तुम्हें कल वहाँ ही जाना है ?··· सामने पूर्वी जर्मनी और चेकोस्लोवाकिया की सीमा है।"

मैंने पूछा—"कभी गये हो वहां ? दोनों ओर से हरबा-हथियार से लैस काफी सेना तैनात रहती होगी !"

"तीन-चार मास पहले एक बार गया था। सीमा के दोनों ओर चुंगी के दफ्तर हैं। दोनों ओर पाँच-सात आदमी रहते हैं। खूब हिल-मिलकर बैठते हैं। दोनों देशों में कोई झगड़ा नहीं तो सेना की जरूरत क्या ! सेना तो पश्चिमी जर्मनी की सीमा पर रहती है।"

शैलनबर्गर ने कहा—"पूर्वी-पश्चिमी जर्मनी का झगड़ा समाप्त हो जाय तो लाखों आदमियों को चौकीदारी के पेशे से हटा कर उत्पादन के काम में लगा दिया जा सकेगा।"

ड्राइवर ने राय दी—"दस-बारह मील आगे एक और स्थान है, वहां एक दर्शनीय झरना भी है।" और आगे जाने और पांच मिनिट प्रतीक्षा करने पर एक मेज खाली मिल गई। भोजन के पश्चात् झरना देखने के लिये कुछ और आगे गये।

सड़क पर कुछ दुकानें हैं। बाडशैंडर से यहाँ तक ट्राम की लाइन भी है। निश्चय ही दर्शक बड़ी संख्या में आते होंगे परन्तु कहीं दिखाई न दे रहे थे। झरने के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर ड्राइवर ने उत्तर दिया—"दो मिनिट प्रतीक्षा

करो !" और वह दुकानों की ओर जाकर एक टिकट खरीद लाया। दो मिनिट बाद सामने की पहाड़ी ढलवान पर अच्छा बड़ा झरना फिर नजारद ?

पूछने पर पता लगा कि ऊपर इतना जल नहीं है कि लगातार अधिक मात्रा में गिरता रह सके। जल को बांध कर रखा जाता है। लोग झरने के सामने खड़े होकर फोटो खिचवा लेते हैं।

ऐसे झरने को झरना कहना मुझे उपहास ही लगा। ऐसे झरने कांगड़े-कुल्लू की सड़कों के किनारे अनेक दिखाई देते रहते हैं। अलमोड़े में भी अनेक हैं। उन की ओर विशेष ध्यान भी नहीं दिया जाता। बिहार के रामगढ़ जिले में हुड़ और मिर्जापुर में टांडा आदि जलप्रपात तो इस झरने से कम से कम सौगुना बड़े होंगे।

दूसरे दिन सुबह आठ बजे ही मैं बुखारेस्ट जाने के लिये विमान से प्राहा के लिये चल पड़ा।

× × ×

रूमानिया

प्राहा से विमान बुडापेस्ट (हंगरी की राजधानी) होकर बुखारेस्ट जाता है। प्राहा से विमान में बारह या चौदह यात्री थे। बुडापेस्ट में लगभग एक घंटे तक ठहर कर आगे चले तो चार यात्री ही रह गये। प्राहा और बुडापेस्ट में भी बादल और सर्दी थी। सोच रहा था, मई की इक्कीस तारीख हो गई, कब तक सर्दी रहेगी ? विमान बुखारेस्ट पर उतर रहा था तो नीचे धूप दिखाई दी। दूर-दूर तक फैली बस्ती और हरियावल चमक रही थी। विमान-स्थल भव्य और कलापूर्ण ढंग से बनाया गया है।

विमान से उतर कर हम चारों यात्री अपने सूटकेस लिये इमारत की ओर बढ़े। मैदान की सीमा पर चार-पांच स्त्री-पुरुष फूल लिये खड़े थे। निमंत्रण पाकर बुखारेस्ट गया था तो क्यों न लोग अगवानी के लिये आते। बर्लिन में ऐसी परिस्थिति में अपनी आशा और अनुमान से धोखा खा चुका था परन्तु परिस्थितियों के अनुकूल आशा और अनुमान कर लेना क्या धृष्टता कहा जायगा ? समीप पहुंच कर उन में से कोई भी चेहरा परिचित न जान पड़ा। प्राहा में

रुमानिया के दो लेखकों से परिचय हुआ था। उन में से कोई भी न था। फूल लेकर खड़े लोगों ने भी मेरी ओर न देखा। वे दूसरे यात्रियों की बांहों में हाथ डाल कर पासपोर्ट दिखाने और चुंगी के हाल की ओर चल दिये। अच्छा नहीं लगा। समझा, बर्लिन के अनुभव से कुछ नहीं सीखा।

पासपोर्ट दिखा कर चुंगी के आदमी को बता रहा था कि मेरे सामान में क्या-क्या है, उसी समय कुछ और लोगों ने हाल में प्रवेश किया। प्राहा से परिचित एक लेखक और उस के साथ तीन युवतियां और दो और सज्जन थे। आलिंगन से स्वागत हुआ और नये अपरिचित स्थान में भटकने की आशंका दूर हो गई।

गाड़ी में नगर की ओर चले। बुखारेस्ट का विमान-स्थल दिल्ली, लंदन, मास्को या प्राहा की तरह नगर से बहुत दूर नहीं है। नगर की सीमा पर शुरू में ही एक बहुत ही बड़ी तेरह-चौदह मंजिल की इमारत दिखाई दी। इमारत के कुछ खंभे अभी बन ही रहे थे। मालूम हुआ, यह राष्ट्र का नया प्रकाशन गृह और प्रेस बन रहा है। इस के सामने एक विजय द्वार है और फिर घने वृक्षों और क्यारियों से सजी खूब चौड़ी सड़क। शहर के पुराने भाग के भीतर प्रवेश करते ही छिड़काव करती मोटर दिखाई दी। सुखद गरमी में छिड़काव की सुगंध प्यारी लगी।

आतिथ्य करने वालों ने पूछा—"इस नगर का जलवायु कैसा जान पड़ रहा है?"

"बहुत ही सुहावना!" उत्साह से उत्तर दिया, "अपना देश याद आ गया। मैं समझता था, यह छिड़काव हमारे देश की ही चीज है। कम से कम पूर्व की तो कहना ही चाहिये। १९५५ में ताशकंद में सभी जगह ऐसे ही छिड़काव होते देखा था।"

मग्दालिना ने कहा—"इस वर्ष तो हमारे यहां बसंत बहुत विलम्ब से आया है। साधारणतः इस समय इस से अधिक ही गरम होना चाहिये था।"

मुझे उस से अधिक गरमी की इच्छा न थी। होटल पैले के ऊंचे हाल में पर्दों के पीछे से आती हवा सुहावनी लग रही थी। चाय पीते हुये रुमानिया में समय का उपयोग करने के लिये कार्यक्रम के विषय में बात करने लगे। मादाम दान और मग्दालिना दोनों अन्तर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक सम्बंध के विभाग में काम करती हैं। मग्दालिना भारतीय विभाग की मंत्री है। हिन्दी सीखने का

बहुत शौक है। पढ़ानी शुरू कर दिया है। मग्दालिना अंग्रेजी बोल लेती है। मादाम, दान मग्दालिना और कुमारी शरागा की सहायता से ही बात कर रही थी। मादाम दान ने कहा—हम लोग और दूसरे लेखक भी जब तब मुझ से मिलते रहेंगे परन्तु शरागा भाषा सम्बंधी कठिनाई में सहायता देने के लिये मेरे साथ रहेगी। होटल पैले में भोजन के लिये नीली छत या सुनहरी काम का बहुत बड़ा हाल है और बेलों से छाये खुले स्थान में आकाश के नीचे भी मेजें लगी हैं। लोग अपने शौक से हाल में या बगीचे में बैठ सकते हैं। बहुत दिन बाद भोजन के लिये हवा में बैठने में बहुत अच्छा लगा।

बुखारेस्ट के भोजन में पूर्वी सवाद का प्रभाव आरम्भ हो जाता है। भोजन में कुछ मसाला भी रहता है। सलाद के साथ कच्चा प्याज और हरी मिर्च भी चलती है। पुलाव में यहां चावल और मांस का कोरमा अलग-अलग दिया जाता है परन्तु पुकारा उसे पुलाव ही जाता है। कबाब भी बनता है। हमारे यहां की कढ़ी के ढंग की भी कई चीजें बनती हैं। मक्का को उबाल कर उस का गोल पिंड बनाकर कई प्रकार के शोरबों के साथ खाया जाता है। योरुप के दूसरे देशों की अपेक्षा यहां सब्जी और फूलों की बहुतायत थी। रूमानिया के दक्षिण भागों में खूब बढ़िया तम्बाकू भी होता है इसलिये रूमानिया में सिगरेटों की कोई कठिनाई नहीं है। सेव, अंगूर अलूचे तो खूब होते ही हैं। नारंगी के ढंग के फल तैयार करने का यत्न किया जा रहा है।

शरागा ने एक निर्माण कलाकार (architect) को बुला लिया था। नाश्ते के पश्चात् हम लोग बुखारेस्ट की निर्माणकला का परिचय पाने निकले। वर्तमान युग में अन्तर्राष्ट्रीय संपर्क बहुत गहरे हो चुके हैं और सभी देशों की संस्कृतियां एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृति बनाने में योग दे रही हैं। इस अंतर्राष्ट्रीय संस्कृति के प्रभाव से आधुनिक भवन निर्माण सभी देश में प्रायः एक सा रूप ले रहा है। नई बनती इमारतें नई दिल्ली, लंदन, बर्लिन मास्को में प्रायः एक ही ढंग की मिलेंगी। किसी विशेष इमारत में अपनी राष्ट्रीय परम्परा के प्रदर्शन का ध्यान रखा जाये तो दूसरी बात है। किसी देश की निर्माणकला की राष्ट्रीय परम्पराओं को खोजना हो तो डेढ़ दो सौ वर्ष पुरानी इमारतों से ही कुछ परिचय मिल सकता है। बुखारेस्ट के विषय में तो यह बात और भी लागू होती है। रूमानिया में, १९४५ में समाजवादी सरकार की स्थापना से पहले डेढ़सौ वर्ष से जर्मन वंश के राजाओं का राज्य रहा है। यह जर्मन राजवंश रूमानिया की

संस्कृति की अपेक्षा अपनी संस्कृति को श्रेष्ठ समझते थे इसलिये सरकारी इमारतों पर जर्मन और मध्य योरुप का प्रभाव पड़ा है परन्तु स्वयं जर्मन वंश से होकर भी एक स्वतंत्र राज्य कायम कर लेने के पश्चात् यह राजवंश जर्मन संस्कृति का अनुकरण करना भी अपनी हेठी समझने लगे थे। इनके अनुकरण का आदर्श और प्रेरणा का स्रोत फ्रांस के मांगल बन गये थे। यहां भाषा, वेश, संस्कृति और निर्माण कला सभी बातों में फ्रांस के अनुकरण का यत्न किया जाता था।

निर्माण कला विशेषज्ञ ने पुराने गिरजे देखने का परामर्श दिया। बुखारेस्ट का सब से पुराना गिर्जा देखने गये। इस गिरजे को 'पुराने दालान' का गिर्जा कहा जाता है। हमारे देश में कई खंडहर या स्मरण ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर दो हजार वर्ष से पुराने मौजूद हैं। कुछ खंडहरों को किवंदती के आधार पर चार-पांच हजार वर्ष पुराना बताया जाता है इसलिये योरुप की पुरानी इमारतें हमें क्या पुरानी जंचेगी। पुराने दालान का गिर्जा सन् १५४० में लगभग अकबर के समय का बना बताया जाता है। इस गिर्जे की रूपरेखा और योरुप के गिर्जों की रूपरेखा में बहुत अंतर है। पूर्व के चिन्ह-गुम्बद उस के शिखरों पर मौजूद हैं। दीवारें लाल ईंटों की हैं परन्तु मजबूती और सौंदर्य के लिये उनमें चूने-गच्ची के चौकोर पुरते भी दिये हुये हैं। इमारत बहुत बड़ी नहीं है परन्तु एक विशेष परम्परा की प्रतीक है। पुराने यूनानी ईसाई सम्प्रदाय की वह परम्परा इमारत की रूपरेखा की अपेक्षा गिर्जे के भीतर पूजा स्थान में और भी अधिक स्पष्ट और सुरक्षित है।

इंगलैंड जर्मनी में सुधारवादी (प्रोटस्टेंट) ईसाई सम्प्रदाय का प्राधान्य है और शेष योरुप में प्राचीन (रोमन कैथोलिक) ईसाई सम्प्रदाय का। दोनों सम्प्रदायों के विश्वासों और व्यवहारों में उतना ही अंतर है जितना हमारे यहां हिन्दूधर्म के आर्यसमाजी और सनातन धर्म सम्प्रदायों में है। रूमानिया और उससे पूर्व की ओर प्राचीन यूनानी ईसाई सम्प्रदाय का प्राधान्य रहा है और अब भी है। इस सम्प्रदाय के विश्वास, रीति और रूढ़ि बहुत अधिक विश्वास पर हैं और यह लोग गिर्जों की सजधज में प्राचीन रोमन ईसाई सम्प्रदाय से भी बहुत अधिक तड़क-भड़क पसन्द करते हैं। जैसे हमारे यहां के मंदिर रामनवमी और जन्माष्टमी के अवसर पर सजाये जाते हैं वैसे ही प्राचीन यूनानी ईसाई सम्प्रदाय के पूजा स्थान सदा सजे रहते हैं। मसीह देव पुरुषों और सन्तों के चित्रों और मूर्तियों को खूब भारी जड़ाऊ जोड़े पहनाये जाते हैं। पूजा-पात्र

भी सोने चांदी के अथवा मुलम्मा किये हुये होते हैं। छत से झाड़-फानूस खूब लटकाये जाते हैं और मोमबत्तियां या दीपक दिन-रात जला करते हैं।

पुराने दालान का गिर्जा देख कर बुखारेस्ट में रूमानिया का केन्द्रीय गिर्जा देखने गये। यहां दीवारों पर खूब बड़े-बड़े चित्र धर्म-कथाओं के बने हुये हैं। उन के लिये दो सौ वर्ष से अधिक की पुरातनता का दावा नहीं किया जा सकता। कई स्थानों पर चित्रों का रंग छूट गया है। वहां फिर से रंगाई कर दी गई है। इस गिर्जे में चांदी की एक बड़ी पेटी में किसी सन्त का कई सौ वर्ष पुराना शरीर रखा हुआ है। छोटे-बड़े सन्तों के शरीर कई गिर्जाघरों में रखे हुये हैं। इस गिर्जे का प्रधान पादरी रूमानिया का धार्मिक नेता या प्रधान माना जाता है। गिर्जे के साथ ही प्रधान पादरी का मठ और कार्यालय है।

इस मठ का रूप-रंग और व्यवस्था आधुनिक शाही ढंग की है। प्रधान पादरी के ध्यान करने के लिये पृथक छोटा-सा गिर्जा है। रूमानिया के बादशाह उपासना और धर्मोपदेश के लिये इसी स्थान पर आते थे। उन के लिये बनाये गये आसन पृथक हैं। मसीह के चरणों में भी प्रजा और राजा के आसनों के भेद से जान पड़ता है कि भगवान और मसीह भी राजा-प्रजा के भेद का आदर करते थे।

लम्बे-लम्बे काले चोगे पहने कई पादरी इधर-उधर आते-जाते दिखाई दे रहे थे। जैसे सेना में कप्तान, मेजर, कर्नल, जनरल के पद और अधिकार होते हैं वैसे ही इन धर्म-संस्थाओं में भी हैं। पादरी पहले शिष्य बनता है, फिर 'भाई' का पद पाता है उस के बाद 'पिता' का और पूज्य पिता का। पादरियों की टोपियां और चोगों पर बंधी पेटियां उन के पदों की सूचक होती हैं। मठ में चारों ओर व्यस्तता का वातावरण था। उत्सुकता से पूछा—"इस समय समाजवादी शासन में इस मठ के प्रभाव और अधिकारों की क्या स्थिति है?"

उत्तर मिला कि मठ का धार्मिक संगठन यथावत है। मठ की ओर से गिर्जाघरों का निरीक्षण और मठों में उचित पादरी भेजने, रखने और धार्मिक उत्सव मनाने और धर्मोपदेशों के संगठन का काम अब भी हो रहा है।

बहुत से गिर्जे देख लेने के पश्चात् ईसाई साधुओं के आश्रम देखने भी गये। यहां साधु लोग ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुये अध्ययन-मनन में रत रहते हैं। मठ में एक छोटा करखाना बिजली की मोटर खराद और दूसरी मशीनों सहित मौजूद है। इस कारखाने में प्रायः गिर्जे में पूजा के उपकरण,

सलीबें, सुमरनियां आदि वस्तुयें ही बनती हैं। ऐसे ही साधनियों के मठ भी मौजूद हैं।

निर्माण कला का विशेषज्ञ बहुत विश्वाससम्पन्न व्यक्ति नहीं मालूम दे रहा था। अपना कौतूहल उस के सन्मुख प्रकट किया—"बुखारेस्ट में इतने अधिक गिर्जे हैं। कुछ गिर्जों की इमारतें स्कूल पुस्तकालय, हस्पताल आदि दूसरे कामों के लिये भी उपयोग में आती होंगी ?"

"ऐसी बात नहीं है।" उत्तर मिला, "दूसरे कामों के लिये आवश्यकतानुसार प्रयोजन के अनुकूल दूसरी इमारतें बनाई जाती हैं। गिर्जों का प्रयोग उन के लिये क्यों किया जाये ? उन का अपना उपयोग है।"

"परन्तु गिर्जे आवश्यकता से कुछ अधिक नहीं हैं ?"

"कुछ न कुछ लोग सभी गिर्जों में पहुंचते हैं। यह भी सम्भव है कि और गिर्जे बनाने की आवश्यकता जान पड़े। जब तक जनता को गिर्जों की जरूरत है, गिर्जे भी बनाने ही चाहिये। हमारे यहां के लोग बहुत धर्म-प्राण हैं। हम लोगों की विचारधारा और परम्परा धर्म प्रधान रही है। हमारे यहां अब भी शासन में एक सचिवालय धर्म की व्यवस्था के लिये है।"

मैं स्वयं भी देख रहा था कि जैसे हमारे यहां लोग मंदिर के सामने से जाते हुये देवता को नमस्कार करने के लिये पल भर रुक जाते हैं वैसे ही वहां गिर्जे के सामने से गुजरते समय लोग पल भर रुक सिर झुका कर अपने हृदय पर सलीब का संकेत बना कर भगवान् से कृपा-याचना कर जाते थे। स्त्रियां तो अच्छा भला फैशनेबुल फ्राक पहने भी गिर्जे के सामने घुटने टिका कर भक्ति प्रकट कर जाती थीं। भारतवासियों की धारणा है कि हमारे समान दूसरी धर्म-भीरु जाति संसार में नहीं है परन्तु रूमानिया के लोग भी इस बात में कम नहीं।

मुझे आश्चर्य हो रहा था कि रूमानिया में दस वर्ष से समाजवादी शासन है। समाजवादी लोग अंध-विश्वास को प्रश्रय नहीं देते। यह प्रसिद्ध ही है कि रूस में १९१७ की समाजवादी क्रान्ति के पश्चात् समाजवादी लोगों ने धर्म को सरकारी रूप से अस्वीकृत कर दिया था और धर्म को सर्व-साधारण को जड़ता की ओर ले जाने वाली अफ़ीम करार दे दिया था। रूमानिया में तो धर्म के प्रति सहिष्णुता का नहीं एक प्रकार से प्रश्रय का ही व्यवहार जान पड़ रहा था।

उस संध्या सांस्कृतिक विभाग के मंत्री से मुलाकात हुई तो इस विषय में कौतूहल प्रकट किये बिना न रह सका । यहां मालूम हुआ कि रूमानिया के वर्तमान शासन में पादरियों और धर्मोपदेशकों की साम्प्रदायिक शिक्षा के लिये एक यूनिवर्सिटी है और उस के अन्तर्गत छः कालिज हैं । इस यूनिवर्सिटी का संचालन मुख्य मठ के हाथ में जरूर है परन्तु सरकार उसके लिये धन की सहायता देती है और उस पर देख-रेख भी रखती है ।

विस्मय प्रकट किये बिना न रह सका—"आप लोग वैज्ञानिक भौतिकवाद की विचारधारा में विश्वास करते हैं । केवल विश्वास पर आधारित और अंध-विश्वास से भरी साम्प्रदायिकता को प्रश्रय देना क्या आप के लिये उचित है ।

हमारे देश की जनता भी रूढ़िवादी है और साम्प्रदायिक भावना से ग्रस्त है । हमने साम्प्रदायिकता के दुष्परिणाम भी कम नहीं देखे हैं । हमारी सरकार ने तो नये विधान के अनुसार धर्म निरपेक्ष (secular) नीति अपना ली है और रूढ़िवाद और साम्प्रदायिक शिक्षा के लिये राष्ट्रीय धन व्यय करना हम लोग उचित नहीं समझते । हालांकि हमारी सरकार न तो वैज्ञानिक भौतिकवाद में विश्वास करती है और न समाजवादी व्यवस्था का दम भरती है ।

सांस्कृतिक मन्त्री ने उत्तर दिया—"हम लोग वैज्ञानिक भौतिकवादी मार्ग पर चलना चाहते हैं । हम यह भी जानते हैं कि साम्प्रदायिक विश्वास हमारी जनता के मस्तिष्कों में गहरे बैठे हुये हैं । फिलहाल इन विश्वासों को पूरा करना उन के जीवन की आवश्यकता है । इस आवश्यकता को उचित ढंग से पूरा करना भी हमारा काम है । यह साम्प्रदायिक विश्वास एक विशेष प्रकार की आर्थिक जीवन प्रणाली से पोषित हुये हैं । पहला काम है उस प्रणाली को बदलना । जनता को वैज्ञानिक ढंग से सोचने की शिक्षा दी जानी चाहिये परन्तु उन के मन पर चोट पहुंचाने से कोई लाभ नहीं । साम्प्रदायिक विश्वासों के जो हानिकारक अंग हैं पहले उन्हें दूर करना आवश्यक है । ऐसे अंध-विश्वासों को दूर करना हमारे सांस्कृतिक विभाग का महत्वपूर्ण अंग है । उदाहरणतः हमारे देश के दक्षिण में बहुत सी मुसलिम जनता है । उन के यहां स्त्रियों को परदे में रखने की प्रथा स्वास्थ्य के लिये और उन के समाज की उत्पादन शक्ति के लिये भी हानिकारक थी । हम ने इस प्रथा के विरुद्ध प्रचार न कर उन्हें स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से और स्त्रियों के उत्पादन में हाथ बटा सकने के महत्व के दृष्टिकोण को समझाया । उन्हें पर्दे की मूर्खताओं को प्रहसनों द्वारा दिखाया ।

सांस्कृतिक मन्त्री और बोले—"दस वर्ष पूर्व समाजवादी व्यवस्था के कायम होने के समय हमारे यहां अस्सी प्रतिशत लोग निरक्षर थे। देहात में मलेरिया, क्षय रोग और दूसरी बीमारियां बहुत बड़ी संख्या में थीं। उस समय डाक्टरों और औषधियों की कमी तो थी ही परन्तु लोग अंध-विश्वास के कारण डाक्टरों और औषधियों पर भरोसा न कर अधिकतर मन्त्रबल और गंडे-तावीज पर ही भरोसा करते थे। लोगों के साम्प्रदायिक विश्वासों के सम्बन्ध में कुछ न कह कर इन मिथ्या विश्वासों को दूर करना जरूरी था। इस काम में हम ने पढ़े-लिखे पादरियों का बल्कि उन के संगठन का भी उपयोग किया। उन लोगों से हमें काफी सहायता भी मिली।"

सांस्कृतिक मंत्री बताते गये—"अंध-विश्वासों की कथा लम्बी है। हमारे पुरातन यूनानी ईसाई सम्प्रदाय में उपवासों और पूजा के दिनों की अच्छी लम्बी सूचि है। प्राचीन विश्वास के अनुसार उपवास और पूजा के दिन कोई व्यवसायिक काम करना पाप समझा जाता था। उत्पादन के काम में करोड़ों आदमियों के इतने समय की हानि कितनी बड़ी हानि थी?

पूछा—"क्या ऐसे प्रश्नों पर जहां साम्प्रदायिक विश्वासों का सम्बंध हो पादरियों का सहयोग आप को मिल जाता है?"

"पादरियों में सुधारवादी और प्रगतिशील लोग भी हैं जो साम्प्रदायिक विश्वासों की रक्षा के लिये, उन्हें क्रियात्मक स्तर पर रखने के लिये ही ऐसे अंध-विश्वास दूर कर देना चाहते हैं। वे हमारे दर्शन से सहमत नहीं परन्तु हमारी जनहित की आर्थिक नीति का समर्थन करते हैं। हम उन से विश्वास के पहलू पर झगड़ा क्यों करें?

"परन्तु दर्शन का महत्व कम नहीं है। एक सीमा पर आचार व्यवहार और औचित्य का निर्णय दर्शन सम्बंधी दृष्टिकोण ही करता है। विश्वास पर और तर्क पर दृष्टिकोणों में एक दिन संघर्ष होगा ही कि कौन मान्यता पाये?

"अब आर्थिक व्यवस्था और जीवन की प्रणाली तर्कसंगत दृष्टिकोण के अनुसार हो तो केवल विश्वास के दृष्टिकोण का आधार स्वयं ही शिथिल हो जायगा। अन्तिम निर्णय तो जनता के अनुभव के आधार पर होगा। हमारी नीति का परिणाम उन के सामने है। जनता को हम वैज्ञानिक भौतिकवाद की शिक्षा देते हैं। हमारे यहां स्कूलों के पाठ्यक्रम में साम्प्रदायिक शिक्षा सम्मिलित नहीं है।"

मैंने जानना चाहा—"पिछले वर्षों में जनता पर पादरियों के प्रभाव की स्थिति में क्या अंतर आया है ?"

"निश्चय ही ऐसा प्रभाव घट रहा है । बहुत से नौजवान अपनी पारिवारिक परिस्थिति से प्रभावित होकर साम्प्रदायिक संस्थाओं में शिक्षा के लिये जाते हैं परन्तु शिक्षा पूरी कर लेने पर वे पादरी का काम न कर शिक्षक का अथवा दूसरा कोई काम कर लेते हैं । ऐसी शिक्षा चाहने वाले विद्यार्थियों की संख्या कम होती जाने से इन संस्थाओं की भी संख्या घट रही है परन्तु इसके लिये सरकारी शक्ति का प्रयोग नहीं किया गया ।"

मैंने पूछा—"साम्प्रदायिक संस्थाओं में वैज्ञानिक भौतिकवाद की भी शिक्षा दी जाती है या नहीं ?"

"इन संस्थाओं में मुख्यतः ईसाई धर्म ग्रन्थों के सिद्धांतों की शिक्षा दी जाती है परन्तु सभी दर्शनों का तुलनात्मक परिचय भी दिया जाता है । उस प्रसंग में वैज्ञानिक भौतिकवादी दर्शन का भी परिचय उन्हें मिल जाता है । यह विषय उन पर विशेष रूप से लादा नहीं जाता । इन संस्थाओं के पुस्तकालयों में दूसरे साहित्य के साथ मार्क्सवादी दर्शन का साहित्य भी मौजूद रहता है । विद्यार्थी अपनी रुचि के अनुसार उस का भी अध्ययन कर सकते हैं ।"

योरुप के देशों के लोग भिन्न-भिन्न जातियों के हैं । इटली, फ्रांस, स्पेन के लोग लैटिन हैं । जर्मनी, ब्रिटेन के लोग अपने आप को आर्य जाति का बताते हैं । हंगरी, फिनलैंड आदि में मंगोल जाति के लोग हैं । चेकोस्लोवाकिया, पोलैंड, रूस वगैरह के लोग स्लाव हैं । रूमानिया के लोग अपने आपको इंडोआर्यन कहते हैं । अर्थात् वे आर्यों की मध्य एशिया से योरुप जाने वाली शाखा से नहीं बल्कि भारत जाने वाली शाखा से हैं । रूमानिया में जर्मन वंश का राज्य कायम होने से पहले यह देश सौ-सवा-सौ वर्ष तक तुर्की के आधीन था इसलिये यहां के रंग-ढंग और भाषा पर भी तुर्की का अच्छा-खासा प्रभाव है । तुर्की अथवा मुगल संस्कृति और भाषा का प्रभाव हमारे यहां भी से होने बहुत सी बातों में और भाषा के शब्दों में साम्य दिखाई देता है । खान-पान के विषय में तो कह ही चुका हूं । रूमानियन भाषा में अनेक शब्द हमारी खड़ी बोली जैसे ही हैं उदाहरणतः मैदान, दुश्मन, आज, मजदूर, चाय आदि आदि । लिपि तो रोमन ही है । अब रूसी सभी स्कूलों में अनिवार्य है । कारण, पूर्वी योरुप के लोगों ने रूसी भाषा को समाजवादी जगत की साझी भाषा मान लिया है ।

सन् १९४५ तक रूमानिया केवल कृषि पर निर्भर करता था। अपना कच्चा माल देकर तैयार माल योरुप और अमरीका से खरीदता था। देश भर में केवल कपड़े की एक ही मिल थी। दूसरे उद्योग-धन्धों के कारखाने भी नहीं थे। रूमानिया की पहाड़ी घाटियों में पेट्रोल काफी मात्रा में मौजूद है। इस पेट्रोल का व्यवसाय करने का ठेका अमरीकन-ब्रिटिश व्यवसाइयों ने रूमानिया के राजा से ले लिया था। यह व्यवसायी यहां ठेके की अदायगी रूमानिया की सरकार को करती रहती थी परन्तु तेल नाममात्र को ही निकाला जाता था। यह लोग रूमानिया में भी पेट्रोल की निकासी करके दूसरे स्थानों से निकाले जाने वाले अपने पेट्रोल का भाव नहीं गिरा देना चाहते थे। उद्योग-धन्धों के अभाव में सर्वसाधारण का जीवन स्तर बहुत ही नीचा था। शहरों में भी बहुत गरीबी थी। पिछले दस वर्षों में देश का औद्योगीकरण तेजी से हुआ है। जगह-जगह बिजली पैदा की जा रही है। कपड़े, लोहे और फौलाद की कई मिलें खुल गई हैं। मोटरें अभी विदेश से ही आती है परन्तु लारी और ट्रक यहां ही बनने लगे हैं। खेती को औद्योगिक ढंग पर लाकर उत्पादन बढ़ाने के लिए खेती की मशीनें बनाने की आवश्यकता थी। सब से पहले ऐसी ही मशीनें बनाने के कारखाने चालू किये गये। ट्रैक्टर अच्छे और अच्छी मात्रा में बन रहे हैं। वहां सुना था कि कुछ रूमानियन ट्रैक्टर भारत ने भी खरीदे हैं।

बुखारेस्ट में एक महाराष्ट्र डाक्टर कुलकर्णी लगभग चालीस वर्ष से रह रहे हैं। बहुत कम लोग जानते हैं कि डा० कुलकर्णी भारतीय हैं। मुझे भी शर्मा से मालूम हुआ। डाक्टर शर्मा के मौसा हैं। डा० कुलकर्णी की आयु इस समय अस्सी से ऊपर है। आंशिक पक्षाघात के प्रभाव से अब चलना-फिरना कठिन है। एक दिन मिलने गया। वे चालीस वर्ष पूर्व भारत से गये थे तब भी हिन्दी नहीं जानते थे। हिन्दी बिना सीखे जितनी बात समझी-कही जा सकती है, उतनी हिन्दी में कर लेने के बाद अंगरेजी में ही बात करने लगा। पिछले चालीस वर्षों में उन्हें अंगरेजी से भी कम ही वास्ता पड़ा है। डाक्टर साहब की कहानी यह है कि १९१४ के युद्ध में वे सेना के डाक्टरी विभाग में भरती होकर मेसोपोटामिया गये थे। कुछ दूसरे डाक्टरों के साथ वे तुर्की सेना के हाथ पड़ गये। युद्ध काल में बन्दी रहे या तुर्किस्तान में डाक्टरी का काम करते रहे। युद्ध के पश्चात् उन्हें मुक्ति मिली तो वे अपने साथियों सहित बुखारेस्ट के रास्ते इंगलैंड जा रहे थे। बुखारेस्ट में एक रूपवती युवती से मन रम गया। वहीं बस

गये । योरुप में भारतीय डाक्टरों को अच्छी मान्यता है । रूमानिया के राजमहल तक में उन की कद्र थी । इस लिए खूब पैसा कमाते थे । अब गुज़ारा अपना गनीमत है ।

एक भारतीय विद्यार्थी आ रहा है, यह सुन कर डाक्टर के पोते-नाती भी आ गये थे । डाक्टर की वृद्धा पत्नी भी समीप बैठी थीं । डाक्टर का एक बारह वर्ष का नाती मेरे बहुत समीप खड़ा उत्सुकता से आंखें मेरे मुंह पर गड़ाये ध्यान से मेरी बातें सुन रहा था । कुछ क्षण पश्चात् उस ने अम्मा के समीप जाकर उलाहने के स्वर में कुछ शिकायत की । अम्मा और दूसरे लोग हंस पड़े ।

मैंने पूछा—"लड़के ने क्या कहा, इसे क्या शिकायत है ?"

अम्मा ने बताया—"कहता है, मेहमान तो अंगरेजी बोल रहा है । यह 'इंडियन' क्यों नहीं बोलता ।" मैंने तुरन्त बहुत से वाक्य लड़के को हिन्दी में बोल कर सुना दिये ताकि उसे यह भ्रांति न हो जाये कि भारत की भाषा अंगरेजी ही है ।

डाक्टर से रहस्य के स्वर में पूछा—"डाक्टर साहब, आप तो शाही शासन काल से यहां हैं । तब और अब में क्या अन्तर है ?"

डा० गुलगुंत ने वितृष्णा से उत्तर दिया—"अब क्या है, कुछ भी नहीं । तब बहुत पैसा था, बहुत शान-शौकत थी ।"

दो और भारतीय विद्यार्थी बुखारेस्ट में हैं । हृदयपालसिंह चित्रकला सीख रहा है और अली पाश्चात्य दर्शन का अध्ययन कर रहा है । अली पिछले पांच वर्षों से वहां है । उस संध्या भोजन के समय अली साथ ही था । उस से भी पूछा—"पिछले पांच वर्षों में यहां कुछ परिवर्तन आया ?"

"हां बहुत काफी परिवर्तन !" अली ने उत्तर दिया, "जिस गली में रहता हूं वहां प्रायः मजदूरों की बस्ती है । पांच वर्ष पूर्व लोग चिथड़े पहने हुये दिखाई देते थे । स्वयं उन के चेहरे-मोहरे और बच्चे भी गन्दे दिखाई देते थे । व्यवहार में सुस्ती-सी जान पड़ती थी । इस बीच लोगों को पहले की अपेक्षा अधिक काम और अधिक मजदूरी मिलने लगी है । छोटे लड़के अब सुथरे कमीज, नेकर और लड़कियां अच्छे फ्राक पहने दिखाई देती हैं । पहले गरीब बच्चों के पांव प्रायः नंगे रहते थे । अब शायद ही गरमी में कोई बच्चा नंगे पांव दिखाई दे जाय । बच्चों के कपड़े और शिक्षा की सामग्री खास तौर पर सस्ती हो गई है । मेरे सामने जो बुढ़िया रहती है उस की उम्र अब पहले से कुछ कम दिखाई देने लगी है ।

पहले उसे मैले और सुथरे की चिंता करते कम देखा था । अब उस की जवान लड़की रेस्तरां में काम करने लगी है । बुढ़िया हर हफ्ते खूब कपड़े धोती है । बिजली की इस्त्री ले आई है । अब उस के कपड़े सदा साफ और इस्त्री किये दिखाई देते हैं । बिजली की इस्त्री वह एक बरस पहले लाई थी । इस मार्च में बिजली की केतली भी ले आई है । बुढ़िया पढ़ नहीं पाती परन्तु अखबार रोज खरीदती है । सांझ को लड़की के घर लौटने के समय खिड़की के सामने छोटी मेज पर कपड़ा बिछा कर रोटी और चाय के प्याले रख देती है । लड़की के आते ही चाय, नाश्ता देती है । चाय-पीकर लड़की मां को अखबार पढ़ कर सुनाती है । अब उस गली में बहुत से लोगों की खिड़कियों में फूलों के गमले भी आ गये हैं । किसी-किसी घर से रेडियो का स्वर भी सुनाई देता है । पांच बरस पहले तो बम्बई की गंदी मजदूर बस्ती से कुछ भी अंतर न था ।"

अली का डाक्टर मुलगुंत से परिचय नहीं था । उस ने मुलगुंत का नाम भी न सुना था । अली को डाक्टर की राय बतायी कि अब तो सब उजाड़ है शाही शासन में खूब समृद्धि और शानशौकत थी ।

अली ने स्वीकार किया—डा० मुलगुंत की शाही महल तक पहुंच थी तो उस के लिये समृद्धि और शानशौकत जरूर रही होगी । उस समय बड़े-बड़े जमींदारों, व्यापारियों और कुछ अमीर पेशेवर लोगों की खूब शानशौकत थी । बस इन्हीं लोगों की शान थी शेष लोगों का तो बुरा ही हाल था । यहां के बड़े लोग बरस में छः-सात महीने फ्रांस में बिताया करते थे । वे फ्रांस के सामन्ती लोगों के मेहमान बनते थे और फिर फ्रांस के लोग यहां आते थे । हर बात में लोगों का आदर्श फ्रांस था । यह लोग आपस में फ्रेंच ही बोलते थे । फ्रेंच बोलना फैशन था और नौकरों-चाकरों से आपस की बातें छिपाये रखने के लिये भी फ्रेंच उपयोगी थी । शनैः-शनैः बड़े घरों के नौकर और इतर लोग भी फ्रेंच समझने लगे । आज भी बुखारेस्ट के होटलों और रेस्तोरां में अंगरेजी या रूसी से उतनी सुविधा नहीं होती जितनी फ्रेंच के कुछ शब्दों से ।

एक दिन दोपहर से पहले ही बुखारेस्ट की झील और आस-पास की पुरानी बस्तियों की झांकी ले रहा था कि एक के बाद एक कई बसें शोर मचाते बहुत छोटे-छोटे बच्चों से भरी हुई एक ओर जाती देखीं । बीच-बीच में गले में लाल रूमाल बांधे दस से बारह-तेरह वर्ष तक के बच्चे भी अपने अध्यापक अध्यापिकाओं की देख-रेख में टोलियां बांधे उसी ओर चले जा रहे थे । मालूम हुआ बच्चों

के उत्सव का दिन है। उससे पहले भी कई दिन लुड़कते-फुदकते बच्चों की टोलियों को अध्यापिकाओं की देख-रेख में इधर-उधर जाते देख चुका था। यहां स्कूल के समय बच्चों को घुमा-फिरा कर प्रत्यक्ष परिचय से उन का ज्ञान बढ़ाने की प्रणाली है। लेनिनग्राद मास्को में भी यह ढंग देखा था। वहां तो घनी भीड़ में से इतने छोटे बच्चों को सम्भाल कर ले जाने का बहुत रोचक ढंग देखा था। पन्द्रह-बीस बच्चों को बाहर ले जाने के लिये दो अध्यापिकायें साथ रहती हैं। एक अध्यापिका सब से आगे चलते बच्चे का हाथ थाम कर साथ चलती है और सब बच्चे सूत की एक रस्सी को क्रम से पकड़े रहते हैं। सब से पीछे चलते बच्चे के साथ भी एक अध्यापिका रहती है। डेढ़ हाथ ऊंचे इन बच्चों का जुलूस जब सड़क पार करता है तो यातायात का नियंत्रण करने वाला लहीम-शहीम ऊंचा सिपाही सड़क के बीचोंबीच खड़ा हो दोनों बाहें फैला कर पूरे यातायात को रोक देता है। इन समाजवादी देशों में सब से अधिक महत्व बच्चों को ही दिया जाता है। इसका कारण शायद यह है कि इन लोगों की दृष्टि भविष्य की ओर है।

हम लोग भी बच्चों के मेले की ओर चल दिये। झील के किनारे के बाग के मैदानों में छोटे-बड़े बच्चों के ठठ्ठ के ठठ्ठ लगे हुए थे। कई स्थानों पर खूब साफ रेत के छोटे-छोटे बच्चे उस रेत में घर बना-बना कर या लोट-लोट कर भी खेल रहे थे। कुछ घास में से फूल पत्तियां चुन रहे थे। कुछ गेंद या फुटबाल खेल रहे थे। लड़के-लड़कियां अपने-अपने खेलों के लिये अलग-अलग हो गये थे। प्यास लगने पर बच्चों के लिये जल का भी प्रबंध था। योरुप में से पानी पीने के नल उल्टे ऊपर की ओर धार छोड़ते लगाये जाते हैं। उन्हें अंजली के बिना धार मुंह में लेते देख हमें हंसी आ सकती है परन्तु सफाई के विचार से पानी को हाथ से छुए बिना पीना अधिक अच्छा होगा। नल में मुंह भी नहीं लगाया जाता। नल को चारों ओर से घेरे हुये चिलमची कपड़ों पर छींटे पड़ने से बचाये रहती है। जिधर नजर जाती बच्चे ही बच्चे थे। जैसे हजारों भेड़ों के रेवड़ पहाड़ों से उतर आये हों और बीच-बीच में दिखाई देने वाले अध्यापक अध्यापिकायें रेवड़ों को सम्भालने वाले गड़रिये हों।

बुखारेस्ट के आंचल में घूमते हुए कई जगह कच्ची सड़कें और खड़े पानी के ताल-तलैया भी देखे। यहां आकर योरुप में पहली बार भैंसें भी दिखाई दीं। हृदयपालसिंह साथ था। उसने बताया यहां के लोग भी हमारे देश की तरह

भेड़ के दूध को गाय के दूध की अपेक्षा अच्छा समझते हैं। यह सुन कर मानना ही पड़ा कि रूमानिया और भारत की संस्कृति में अवश्य ही सामीप्य है। यहां देहात के पुराने लोगों में योरुपियन हैट की अपेक्षा अस्त्रखानी टोपी, जिसे गांधी टोपी की स्पर्धा में मुस्लिम लीग ने जिन्ना कैप का नाम दे दिया था, का ही रिवाज अधिक है। पतलून इन लोगों की पश्चिमी योरुप की अपेक्षा मध्य एशिया के लोगों की पतलून या हमारे पहाड़ी इलाके के पायजामे से ही अधिक मेल खाती है।

उसी दिन दोपहर बाद स्वास्थ्य विभाग के मंत्री से बातचीत हुई। उन से बातचीत में ऐसा लगा कि रूमानिया की सरकार के सामने सबसे बड़ी समस्या देश की जनता का स्वास्थ्य ही है। उन्होंने स्वीकार किया। शाही शासन की नौकरशाही में जनता के स्वास्थ्य की दशा शोचनीय थी। प्रतिवर्ष आठ-दस लाख आदमी केवल मलेरिया से ही मर जाते थे। क्षय रोग का और दूसरे रोगों का भयंकर प्रकोप था। अब गत तीन वर्षों में दो आदमियों को मलेरिया ज्वर हुआ है। क्षय और यौन रोग भी ढूंढने से कहीं ही मिलेंगे।

पूछा—"आप अपने राष्ट्रीय बजट का कितना भाग सार्वजनिक स्वास्थ्य रक्षा के लिये व्यय करते हैं?"

मन्त्री ने उत्तर दिया—"स्वास्थ्य के सम्बन्ध में व्यय की सीमा का प्रश्न नहीं होना चाहिये। राष्ट्र का स्वास्थ्य ठीक न होने पर राष्ट्र का कौन काम ठीक हो सकता है? जितने व्यक्ति जितने दिन बीमार रहेंगे राष्ट्र के उत्पादन की उतनी ही हानि होगी। सार्वजनिक स्वास्थ्य सुधार के लिये हमें आरम्भ में सोवियत से बहुत सहायता मिली। १९४५ में जिस समय देश को हमने नाजी बरबादी के पश्चात् संभाला, युद्ध की बरबादी के कारण सब ओर रोग ही रोग था। विदेशी सिपाहियों ने सब ओर यौन रोग फैला दिये थे। हमारे पास न पर्याप्त डाक्टर थे और न आवश्यक औषधियां ही। सोवियत ने हमें दो हजार डाक्टरों के दल सहायता के लिये और बहुत बड़ा भण्डार औषधियों का भी दिया। हमने जनता को रोगों से मुक्त होने में पूरी सहायता दी।

मैंने पूछा—"कुछ रोग विशेष कर यौन रोगों के सम्बन्ध में अधिकार से यह कहना कि उन्हें निर्मूल कर दिया गया है, कठिन है क्योंकि दुर्भाग्यवश लोग इन रोगों को प्रकट करने में लजाते हैं।"

मन्त्री ने उत्तर दिया—"इस लज्जा का कारण परिस्थितियां हैं। रोग से

मुक्त कौन नहीं होना चाहता ? रोग को तभी छिपाया जाता है, जब यह भय हो कि रोग का पता लगने से या तो व्यक्ति की जीविका जायगी या उसकी ओर उंगलियां उठेंगी । अब हमारे यहां यौन-व्यवसाय से पेट भरने की मजबूरी और अवसर किसी को नहीं है । हमारी व्यवस्था ऐसी है कि यौन रोग का इलाज कराने के लिये नाम-धाम का परिचय देने की आवश्यकता ही नहीं । इस के अतिरिक्त हमने गांव-गांव, मुहल्ले-मुहल्ले में ऐसा प्रबंध किया है कि एक भी व्यक्ति रक्त परीक्षा के बिना न रह सके । इस के लिए सब से आवश्यक बात थी जनता को विश्वास दिलाना कि रक्त परीक्षा न करा सकना स्वयं अपनी हानि है ।

स्वास्थ्य मन्त्री से बातचीत करते समय याद आ रहा था कि भारत सरकार ने भी स्वास्थ्य सुधार और रोगों की रोक-थाम के लिये बहुत कुछ किया है । कई जगह गांवों में ढेर की ढेर औषधियां जाती हैं पड़ी-पड़ी बरबाद हुआ करती हैं । कई हस्पतालों में जहां प्रतिदिन औसतन तीन साढ़े तीन सौ बीमार दवा लेने आते हैं, सरकार की ओर से प्रतिदिन साल रुपये का खर्चा नियत है । ऐसा देखा है कि महामारी फैलने की आशंका में सरकार बीमारी के प्रतिरोध के लिये इंजेक्शन का प्रबन्ध करती है परन्तु जन सेवा की सरकारी नौकरी करने वाले लोग अफसर के रोब से आंख दिखा कर बात करते हैं । भाव सेवा का नहीं शासन का रहता है । ऐसे अवसर पर इंजेक्शन से बच जाना ही लोग अपनी सफलता समझते हैं । बड़े अफसर या बड़े लोग ऐसी आज्ञा से मुक्त समझे जाते हैं, इसलिये बड़ा समझा जाना चाहने वाले भी इस आज्ञा से बचने का यत्न करते हैं । हमारे यहां सरकारी अनुशासन से ऊपर होना बहुत सम्मानजनक समझा जाता है, सरकारी अनुशासन के आधीन होना अपमानजनक । विदेशी शासन की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न सरकार और प्रजा में विरोध की भावना समाप्त होने में नहीं आती । जनता अपनी सरकार को अपना नहीं समझती । यह जनता की मूर्खता तो है परन्तु इस मूर्खता को दूर करने के लिए सरकार ही क्या कर रही है ? क्यों नहीं वह जनता की विश्वासपात्र बनती । क्यों नहीं जनता से आत्मीयता स्थापित कर पाती ।

प्राहा में रूमानियन लेखक देमित्र को मैंने अपनी कहानी 'कोयला डकैत' का अंग्रेजी अनुवाद दिया था । अवसर की बात थी या देमित्र ने ऐसे प्रभाव किया था कि बुखारेस्ट में मेरे पहुंचने के दिन ही वह कहानी एक साप्ताहिक में

प्रकाशित हुई थी इसलिये परिचय के समय प्रायः ही लोग कह देते थे 'हां आपकी एक कहानी पढ़ी है।' मुझ से पहले नागार्जुन और नवतेज भी रूमानिया हो आये थे। उन की भी कुछ कहानियां रूमानियन पत्रों में प्रकाशित हुई थीं। यह नाम भी लोगों को याद थे। 'रूमानिया नुवा' (नव-रूमानिया) के सम्पादक ने दफ्तर में मिलने के लिये बुलाया था। लगभग पूरा सम्पादकीय विभाग उपस्थित था। बातचीत बहुत अनौपचारिक ढंग से हो रही थी। सम्पादक ने कहा—"हम लोगों के काम के ढंग, हमारी राजनैतिक, सामाजिक समस्याओं के विषय में कोई भी जिज्ञासा हो तो निस्संकोच पूछिये। उत्तर देने का यत्न करेंगे।"

महीने भर से जहां जाता था ऐसे ही प्रश्न पूछता था। पूछ-पूछ कर मन भर गया था। उत्तर दिया—"यदि आप अन्यथा न समझें तो अपने ख्याल में बहुत प्रकार के प्रश्न कहीं न कहीं पूछ ही चुका हूं। यहां के लोगों ने मेरी बहुत सी जिज्ञासाएं पूरी कर मुझ पर काफी एहसान किया है। आप लोगों के जीवन की व्यवस्था और रंग-ढंग प्रत्यक्ष देखने का भी अवसर मिला है। आप लोगों को ऐसा अवसर नहीं है। चाहता हूं आपके एहसान का कुछ बोझ हल्का कर सकूं। आप ही बताइये, आप लोगों को मेरे देश के विषय में क्या जिज्ञासाएं हैं। आप के प्रश्नों से मेरे मन में भी और प्रश्न उठ सकते हैं।"

सम्पादक विभाग की सदस्या मिसेज पेत्रेस्कू ने मेरी 'उदारता' की सराहना कर कहा—"इस से अच्छी और क्या बात हो सकती है? आप अपने यहां के पत्रकारों के जीवन और काम के विषय में ही बताइये? उन के श्रम का कितना पारिश्रमिक मिलता है? सप्ताह में कितने घण्टे काम करना पड़ता है? रचनात्मक कार्य के लिये क्या सुविधा मिलती है? उन की सामाजिक स्थिति क्या है?

छिपा कर क्या करता। स्वीकार किया—"हमारे यहां पत्रकारों की स्थिति न आर्थिक दृष्टि से और न सामाजिक सम्मान की दृष्टि से ही विशेष स्पृहणीय है। (कौन नहीं जानता जिस पत्रकार को भी सरकारी समाचार या प्रचार विभाग में स्थान मिल सका, वह स्वतन्त्र पत्रकारिता या पत्रकार की नौकरी छोड़ कर सरकारी नौकरी में चला गया है।) काम के घण्टे प्रति दिन आठ और सप्ताह में छः दिन काम साधारण बात है। विशेषांक निकालना हो तो इस से भी अधिक काम पड़ सकता है।"

श्रोताओं के चेहरों पर समवेदना की छाया देख कर उन की स्थिति के

विषय में जिज्ञासा की। मालूम हुआ प्रतिदिन छः घंटे काम का साधारण नियम है। सप्ताह में एक दिन का विश्राम और एक दिन रचनात्मक कार्य के लिये दफ्तर न आने की सुविधा है। उस दिन पत्रकार साहित्यिक कार्य के लिये स्वतंत्र रहता है। इस प्रकार की रचनाओं के लिये रचना के स्तर के अनुसार पत्रकार को वेतन के अतिरिक्त पारिश्रमिक मिलता है। दफ्तर में हाजरी के पांच दिनों में कभी एक दिन और कभी दो दिन जन-सम्पर्क द्वारा सामग्री प्रस्तुत करने के लिये मिलते हैं।

बात चल पड़ने पर मैंने प्रश्न किया—"क्या आप के कार्यालय में प्रति मास और प्रति सप्ताह जितनी कवितायें, कहानियां और लेख आ जाते हैं, आप का सम्पादक मंडल सभी लिपियों को ध्यान से पढ़ सकता है ?"

"हां, अवश्य, क्यों नहीं ?" भरोसे से उत्तर मिला।

"औसतन आप के यहां प्रति मास कितनी कवितायें, कहानियां या लेख आ जाते हैं।" मैंने पूछा।

"हमारा पत्र चित्र प्रधान है। यहां साधारणतः समाचार से सम्बंध रखने वाले चित्र और छोटे लेख ही रहते हैं। परन्तु दूसरे साप्ताहिकों और मासिकों के कार्यालय में एक मास में बीस-पच्चीस कवितायें, दस-पंद्रह या बीस कहानियां और लेख आ जाना कोई बड़ी बात नहीं।"

"एक ऐसे कार्यालय में कितने व्यक्तियों का सहयोग रहता है ?"

"साप्ताहिक में दस-बारह और मासिक में पांच-छः व्यक्ति तो होने ही चाहियें।"

कुर्सी पर सीधे होकर मैंने उत्तर दिया—"आप को विस्मय तो होगा परंतु तथ्य ही कह रहा हूं। मेरा एक साधारण मासिक पत्र नया पथ से कुछ सम्बंध है। यह मासिक पत्र लेखकों को पारिश्रमिक नहीं देता। इस पत्र के कार्यकर्ता भी एक प्रकार से अवैतनिक ही हैं। इस पत्र के प्रति लेखकों के आकर्षण का एक ही कारण है कि पत्र का दृष्टिकोण प्रगतिशील समझा जाता है। जमे हुये लेखक इस पत्र को अपनी रचनाएं केवल आग्रह करने पर ही देते हैं। इस पत्र पर अधिक कृपा नये लेखकों की या लेखक बनने की इच्छा रखने वालों की ही होती है। इस पत्र में औसतन प्रति मास सत्तर-अस्सी कवितायें और चालीस-पचास कहानियां आ जाती हैं। देखिये, हमारे देश में कितनी प्रतिभा भरी पड़ी है।" मुस्कराकर मैंने कहा, "इतनी रचनाओं में से नया पथ के सम्पादकों को

चार-छः कवितायें और तीन कहानियां प्रति मास चुननी पड़ती हैं। 'नया पथ' में नियमित रूप से काम करने वाले सम्पादकों की संख्या दो है? जब मैं 'विप्लव' मासिक का सम्पादन करता था तो पूरे कार्यालय में सम्पादक विभाग में मैं अकेला और प्रबंध विभाग में अकेली मेरी पत्नी थी।"

श्रोता लोग विस्मय से आंखें फाड़ किये मेरी ओर देख रहे थे। अवसर की गम्भीरता कम करने के लिये मैंने कहा—"हम लोगों के काम में लगे रहने की क्षमता तो आप अवश्य सराहनीय समझेंगे? हमारे यहां प्रकाशकों द्वारा पूंजी और साधनों के जोर पर चलाये जाने वाले पत्र तो किसी भी देश के पत्रों की तरह ही हैं परन्तु लेखकों द्वारा चलाये गये पत्रों की स्थिति भिन्न है। कारण यह कि लेखक साधनों के अभाव को अपना पसीना बहा कर पूरा कर देना चाहता है। इस के अतिरिक्त और उपाय ही क्या है? परन्तु ऐसे सब यत्न निष्फल रह जाते हैं।

फिर कहा—"पत्र-पत्रिकाएं तो सभी देशों में साधनवान लोगों या संस्थाओं के हाथ की चीज हो गई हैं। पूंजीपति जगत में पत्र-पत्रिकाएं साहित्य और ज्ञान प्रसार के उद्देश्य से नहीं चलतीं, व्यापारियों के सौदे का प्रचार करने के लिये चलती हैं। पत्र लिपटन की चाय, किसी के कपड़े, कैडबरी के चाकलेट, बिनाका के दंतफेन का विज्ञापन देने के लिये प्रकाशित किये जाते हैं। ऐसे पत्रों को व्यापारी मुफ्त भेंट करने के लिये तैयार हैं परन्तु ग्राहक इन्हें मुफ्त भी लेने के लिये तैयार नहीं इसलिये इन विज्ञापनों में दो-तीन कवितायें, एक दो कहानियां और एकाध लेख मिला कर उसे साहित्य के नाम से सस्ते दामों बेच दिया जाता है। केवल साहित्यिक पत्र का लागत मूल्य विज्ञापन प्रधान पत्रों के दाम से कहीं अधिक हो जाता है। हमारे यहां अनेक बार पत्रों के विशेषांकों में इतना कागज रहता है कि उसे रद्दी के भाव बेचा जाय तो पूरा मूल्य वसूल हो सकता है। ऐसी अवस्था में आप ही समझ लीजिये, हमारे यहां पूंजीवाद की जी हजूरी न करने वाला पत्र चला लेना कितना कठिन होगा।"

रूमानिया के लेखक समझ नहीं पायेंगे परन्तु हमारे देश के लोगों के लिये हमारे पत्रों की नीति समझने के लिये किसी भी दिन सीलोन रेडियो सुन लेना पर्याप्त है। सीलोन रेडियो हमारे पत्रों का श्रव्य रूप है। सीलोन रेडियो इतना उदार है कि वह अपनी सेवा के लिये किसी मूल्य की आशा नहीं करता। वह अपनी सेवा का यही मूल्य चाहता है कि आप उसे सुन लें। सीलोन रेडियो की

इस उदारता ही का आधार व्यापारियों से मिलने वाली बड़ी-बड़ी फीसें हैं परन्तु व्यापारी भी क्या यह रुपया सिनेमा रेडियो को निःस्वार्थ भाव से ही देते हैं ? जिन लोगों को पत्र प्रकाशन व्यवसाय का कुछ अनुभव है, वे जानते हैं कि पत्र का प्रकाशन आरम्भ करते समय प्रतिष्ठित लेखकों का सहयोग पाने की चिंता नहीं की जाती बल्कि चिंता यह की जाती है कि विज्ञापन कितना मिल सकेगा ?

मैंने सामने पड़ी 'नव रूमानिया' की सचित्र प्रति की ओर संकेत किया—विश्वास है आप मेरा अभिप्राय अन्यथा नहीं समझेंगे। आप के इस पत्र में विज्ञापन नहीं है न ?"

"नहीं।"

"तो फिर क्या हम इस पत्रिका की बिक्री के मूल्य से पत्रिका का पूरा व्यय निकल आता है, और यह पत्रिका इस कार्यालय का भी व्यय पूरा कर सकती है ? मेरा यह अनुमान है यहां की सरकार या कोई संस्था पत्रिका की सहायता करती है। तभी आप पत्रिका और उस के कार्यकर्ताओं को उचित स्तर पर रख सकते हैं।"

श्रोताओं में से एक व्यक्ति ने उत्तर दिया—इस पत्रिका में बहुत अधिक और रंगीन चित्र रहने के कारण इस का लागत मूल्य दामों से कुछ अधिक हो जाता है। पाठकों की सहूलियत के लिये दाम एक सीमा से अधिक नहीं बढ़ाये जा सकते परन्तु हमें सहायता सरकारी निधि से नहीं मिलती, पत्रों के सहकारी संघ से मिलती है। पत्र कई प्रकार के हैं। बहुत से पत्रों का दाम उनके लागत मूल्य से अधिक है और उन की बिक्री लाखों में होती है। भिन्न-भिन्न पत्रों के हानि-लाभ को बराबर कर लिया जाता है।

एक श्रोता पूछ बैठे—"आप के यहां साधारणतः पत्र-पत्रिकाओं की प्रकाशन संख्या क्या रहती है ?"

"पांच सौ से लेकर पचास-साठ हजार" मैंने उत्तर दिया, "हमारे यहां प्रत्येक व्यक्ति को पत्र-प्रकाशन आरम्भ करने की स्वतन्त्रता है। कुछ व्यक्ति बहुत उत्साह से यथा-शक्ति पैसा बटोर कर पत्र आरम्भ कर लेते हैं और कुछ दिनों में पूंजी का कुआं सूख जाने के बाद पत्र बन्द हो जाता है।

"आप के यहां पत्र-पाठकों की संख्या अधिक है हमारे यहां पत्रों की। आप के यहां पत्र-पत्रिकाओं की संख्या क्या होगी ?" बताई गई संख्या ठीक याद नहीं परन्तु दो सौ भी नहीं थी। मैंने बताया—"हमारे यहां केवल हिन्दी में

निश्चय ही हजार से बहुत अधिक पत्र होंगे और हमारे यहां चौदह भाषाएं हैं । प्रति वर्ष अनेक पत्र आरम्भ होते हैं और बन्द होते हैं ।"

मिसेज पेत्रेस्कू बोलीं—"परन्तु पचास हजार पाठक संख्या भी तो कोई बड़ी नहीं है ।" उन्होंने अपने एक-एक लाख से अधिक छपने वाले पत्र का नाम बताया और कहा, "आप के देश की जनसंख्या तो तीस करोड़ से भी अधिक है । एक-एक भाषा के बोलने वाले हमारे पूरे देश की दो करोड़ जन संख्या से अधिक होंगे ?"

"जरूर हैं ।" स्वीकार किया, "हमारे यहां हिन्दी भाषा बोलने वाले लग-भग दस-पन्द्रह करोड़ हैं परन्तु अभी देश में निरक्षरता काफी है । सस्ते से सस्ता पत्र भी हमारी निन्यानवे प्रतिशत जनता के लिये बहुत महंगा है । हमारे यहां पत्रों के पाठकों की संख्या की कमी पत्रों की संख्या से पूरी हो जाती है ।"

एक श्रोता ने संकोच से कहा—"हमें यह राष्ट्रीय धन और शक्ति का बहुत बड़ा अपव्यय जान पड़ता है ।"

बुखारेस्ट के दर्शनीय स्थानों में एक छोटा संग्रहालय वहां के प्राचीन बर्तनों, गृह-उद्योगों और प्राचीन वेष-भूषा का है । बुखारेस्ट नगर की आधुनिक वेष-भूषा और योरुप की साधारण वेष-भूषा में कोई अंतर नहीं है परन्तु प्राचीन वेष-भूषा का संग्रहालय प्राचीन रूमानियन जीवन की अद्भुत स्मृति है । यह संग्रहालय इस कथन की पुष्टि करता है कि रूमानियन जाति इंडोआर्यन शाखा अथवा आर्यों की उस शाखा का अंग है जो भारत पहुंची थी । अभिप्राय है, प्राचीन रूमानियन वेश-भूषा और भारत के कुछ भागों की वेष-भूषा का साम्य ।

भारत की राष्ट्रीय वेश-भूषा क्या है; इस विषय में अनेक मत हैं । जैसे पूरे राष्ट्र की एक साझी भाषा स्वीकार करने में लोगों को कठिनाई हो रही है वैसे ही एक राष्ट्रीय पोशाक स्वीकार कर लेने में भी । शायद पोशाक का प्रश्न और भी कठिन है । अंगरेजी राज ने अंगरेजी बोलना तो सभी को सिखा दिया । धोती-चादरधारी बंगाली, दक्षिणी लोग और पायजामा पगड़ी पहने पंजाबी, इस व्यवधान के बीच भी अनेक [illegible] आपस में अंगरेजी बोल लेते हैं । राज को अंगरेजी [illegible] अंगरेज [illegible] मिली परन्तु आधुनिक पश्चिमी पोशाक [illegible] । दिल्ली में भारतीय पार्लिमेन्ट की बैठक में एक भाषा [illegible] परन्तु पोशाकें सब की अपनी-अपनी हैं इसलिये भारतीय [illegible] आर्यों की वेश-भूषा क्या रही

होगी; कहना कठिन है। अजन्ता-एलोरा की प्राचीन मूर्तियों और अजन्ता तथा कोणार्क के पुरातन चित्रों में दिखाई देती पोशाकें अपनाने का उत्साह और आग्रह कहीं दिखाई नहीं देता। प्राचीन आर्यों की पोशाक का अनुमान करना ही हो तो मेरी कल्पना में कांगड़ा के उत्तरीय भागों की पोशाक या अल्मोड़ा, गढ़वाल के उत्तरीय भागों के ऐसे लोगों की पोशाकें जो आधुनिक रंग-ढंग से प्रभावित नहीं हुए हैं प्राचीन आर्यों की पोशाक से बहुत कुछ सादृश्य रखती होंगी। रूमानिया की प्राचीन पोशाकों के संग्रह में प्रायः ऐसे ही नमूने दिखाई देते हैं।

पोशाकों को क्रमशः विकास के क्रम से रखा गया है। विस्मय यह है कि भारत के हिमालय स्थित पहाड़ी भागों में आज भी यह सब नमूने न्यूनाधिक मिल सकते हैं। कम से कम दस वर्ष पहले जब मुझे अंतिम बार वहां जाने का अवसर मिला, जरूर मिल सकते थे। पट्टियों के कम्बल से बने, ढीले घुटनों तक लटकते अंगरखे या कोट और उस पर लम्बी रस्सी की पेटी। उस के बाद कपड़े की बनावट में सुधार हो जाने पर कोट के घेरे को समेट कर कोट और ढीले पायजामे के जोड़े की पोशाकें। जूते भी अनगढ़ चप्पल से लेकर बोड़ी खाल के पंजाबी ढंग के जूते और फिर नाभा में पहने जाने वाले कपड़े के मोजे और चप्पल के मेल के प्राचीन यूनानी ढंग के जूते इस संग्रहालय में मौजूद हैं। पुरानी पोशाकों में छोटी पगड़ियां भी हैं क्रमशः उन का स्थान टोपियों ने ले लिया है। बहुत पुरानी टोपियां सिर पर सिमटी हुई और फिर धीरे-धीरे चौरस होती-होती हैट की आकृति में आ गई हैं। स्त्रियों की पोशाकों में सादृश्य और भी अधिक है। कुछ पोशाकों के भारी घेरेदार लंहगे राजस्थानी लंहगों की नकल जान पड़ते हैं। चादर-दुपट्टा भी मौजूद है। साड़ी, धोती अलबत्ता नहीं है। हमारे हिमालय के पहाड़ी प्रदेशों में भी यदि पोशाकों में विकास जारी रहता या उन का सम्बन्ध अन्य देशों में जाकर बस गये उन के प्राचीन बंधुओं से बना रहता तो इनकी पोशाकें भी आधुनिक पश्चिमी ढंग की ही होतीं।

बुखारेस्ट में भी कला और सांस्कृतिक कामों की चहल-पहल खूब रहती है। नाटक का रंग-मंच, संगीत नाट्य (आपेरा) और नृत्य नाट्य (बैले) में लोगों की खूब रुचि है। इन शास्त्रीय कला और सांस्कृतिक संस्थाओं के अतिरिक्त लोक कला की ओर भी खूब प्रवृत्ति है। सांस्कृतिक सचिवालय का एक पृथक लोक संगीत विभाग है। यहां प्राचीन लोक-गीत स्वरों सहित संग्रह

किये जाते हैं। स्वरों के रिकार्ड भर लिये जाते हैं। बांसुरी यहां बहुत जनप्रिय है। लोक-गीतों के विभाग में लोक-वाद्यों का भी संग्रह है। यहां कई प्रकार की छोटी-बड़ी बांसुरियां, अलगोजे एकत्रित हैं। लम्बे-लम्बे बांसों को पोला करके नरसिहों के ढंग के बनाये हुये वाद्य भी हैं। चौड़ी पटिया पर तारों को कसकर एक विचित्र सा वाद्ययंत्र भी वहां बनाया जाता है। इस की ध्वनियों में सितार या वीणा से बहुत सादृश्य है। चेकोस्लोवाकिया में मुझे पश्चिमीय शास्त्रीय संगीत की अपेक्षा लोक-गीतों के स्वर भले लगे थे। रूमानिया में यह बात और भी अधिक अनुभव हुई। यहां के लोक-गीतों के स्वर और लय पंजाब और हिमालय के पहाड़ी प्रदेशों के गीतों के लय और स्वरों के बहुत समीप जान पड़ते हैं। लोक-गीतों के विषय और कल्पनायें तो लोक भावनाओं के अनुकूल एक ही जैसी होती हैं।

बुखारेस्ट के कलाकारों, चित्र और मूर्तिकारों को निर्माण कार्य में सहायता देने के लिए एक नया कला-भवन बनाया गया है। इमारत के बीचोंबीच एक संग्रहालय है। उचित प्रकाश के लिए संग्रहालय की छत और एक ओर की दीवार मोटे कांच की है। बहुत से कमरे हैं जिन में कलाकारों के रहने की और अपना काम निर्विघ्न करते रहने की व्यवस्था है। भोजन या किसी भी दूसरी आवश्यकता के लिये बाहर जाने की विवशता नहीं रहती।

लेखकों के लिये 'रचनात्मक कार्य का भवन' या 'सृजन-प्रासाद' नगर से आठ दस मील दूर एक पुराने राजप्रासाद को आधुनिक ढंग से बनायी गई आतिथिशाला है। साहित्य सृजन में व्याघात न पड़ने देने के लिये प्रत्येक लेखक के लिये सोने, काम करने, स्नान आदि की जगह पृथक है। इस भवन के कमरों के कालीन और फर्नीचर शाही जमाने से यथावत हैं। खाने के कमरे में जो बर्तन देखे, विशेष कर शराब पीने के गिलास तो इतने सुन्दर और कीमती हैं कि कला संग्रहालय में ही रखने योग्य हैं। व्यक्ति अपने अभ्यास और संस्कार के अनुसार ही सोचता है। मुझे वैसे सुख और समृद्धि में रहने का अभ्यास नहीं है। इस सृजन प्रासाद को देखकर मुझे मनोयोग से परिश्रम करने योग्य वातावरण नहीं बल्कि विश्राम में सब कुछ भूल जाने योग्य परिस्थिति ही जान पड़ी।

× × ×

कोंस्तांजा

रूमानिया के दक्षिण भाग में काले समुद्र के किनारे बहुत सी मुस्लिम आबादी है। मैं देखना चाहता था कि समाजवादी व्यवस्था का प्रभाव इन लोगों पर क्या पड़ा है। कोंस्तांजा काले समुद्र पर रूमानिया का बन्दरगाह है। तेज एक्सप्रेस गाड़ी से केवल चार घण्टे का रास्ता है। मैं और शरागा तीसरे पहर, चार बजे की गाड़ी से रवाना हुये। रूमानिया में रेल यात्रा का भी अनुभव हो गया। योरुप में रेलगाड़ियों में सभी जगह बरामदे या कोरीडोर होते हैं। चाहें तो आदमी एक सिरे से दूसरे सिरे तक घूम फिर सकते हैं। रूमानिया में रेलगाड़ी में दो श्रेणियां, पहली और दूसरी ही होती है। एक ही बार के सफर में अपने यहां गाड़ियों में भीड़ होने की शिकायत जाती रही। पहली और दूसरी दोनों ही श्रेणियां ठसाठस भरी हुई थीं। बेंचों पर कुर्सियों की तरह हत्थे भी लगे रहते हैं इसलिये एक आदमी के बैठने की जगह में दो के बैठने का अवसर नहीं रहता परन्तु बरामदों में स्त्री-पुरुष एक दूसरे से चिपके खड़े हुये थे। भीड़ में समानता होने पर यात्रियों के व्यवहार में बहुत भेद था। भीड़ चाहे जितनी हो दूसरों को भीतर आने से कोई नहीं रोकता। गाड़ी में कैसे घुसा जाय और भीतर जाकर क्या करना होगा यह भीतर जाने वाले की समझ पर निर्भर करता है। गाड़ी चलने से दस मिनिट पहले ही पहुंच गये थे। एक बार गाड़ी के आरम्भ से अन्त तक चक्कर लगा लिया परन्तु स्थान कहीं न था। शरागा ने कण्डक्टर से विदेशी अतिथि के प्रति सौजन्य की मांग की।

कुछ रूसी सैनिक बुखारेस्ट से कोंस्तांजा जा रहे थे। इन लोगों के लिये एक डिब्बा सुरक्षित था। इसी डिब्बे में हम लोगों को भी जगह दे दी गई। रूसी सैनिकों के जगह पा जाने के बाद शेष भीड़ को भी नहीं रोका गया। यह डिब्बा भी ठसाठस भर गया।

बुखारेस्ट में पहुंच कर जैसे गर्मी सुहावनी लगी थी, कोंस्तांजा में नहीं लगी। बुखारेस्ट की अपेक्षा काफी गरम भी लगा। स्टेशन पर हमारी अगवानी में आये मोटर ड्राइवर ने बता दिया कि समुद्र तट के किसी होटल में जगह खाली नहीं है, शहर के पुराने होटल में ही जहां जगह मिल जाये, ठहरना पड़ेगा। जगह बहुत बुरी नहीं थी, लन्दन के साधारण होटलों जैसी ही। कोंस्तांजा काले सागर

का बन्दर होने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय स्थान तो रहा ही होगा। भोजन के लिये गये तो दो-तीन रेस्तोरां घूम कर और कुछ देर प्रतीक्षा कर एक मेज मिली। मैं चारों ओर बैठे भिन्न-भिन्न लोगों के चेहरे देख कर शरागा के कान के पास मुंह ले जाकर धीमे से पूछ लेता—"वह आदमी किस जाति का है? शरागा और साथी ड्राइवर की राय से कोई तुर्क थे, कोई यूनानी, कोई पुराने बसे हुये रूसी। शोर-शराबे और कहकहों के कारण तकल्लुफ का कोई वातावरण नहीं था। बहुत सजावट और सफाई का दम्भ भी नहीं था। गले में नकटाई तो किसी के ही थी। पूछने पर जाना कि अधिकांश लोग नये आरम्भ किये गये कारखानों के आदमी हैं। ठसाठस भीड़ में काम चलाने का ढंग कम परन्तु गर्मियों में बरफ का उपयोग करने वाले लोगों की दृष्टि से एक चीज नहीं बच सकती थी। वह थी प्रत्येक मेज के साथ लोहे के ढांचे पर रखी बरफ भरी बाल्टी। बरफ में सोडे का साइफन, बियर और शराब की बोतलें दबी हुई थीं।

कोंस्तांजा में एक और परिचित वस्तु देखी। यह थी बग्घी। रोमानिया में रोम के सिवा बग्घी और कहीं नहीं दिखाई दी। घोड़े साधारण ही थे। बग्घियों की सजावट भी ऐसी नहीं थी कि वे शौक की सवारी जान पड़तीं। बग्घियों का राष्ट्रीयकरण करना तो टेढ़ी समस्या होगी इसलिये वे निजी कारोबार के रूप में चलती हैं।

रात में ऐसी गरमी तो नहीं थी कि कमरे में परेशानी होती परन्तु खिड़की से आकाश में चंद्रमा देख कर चांदनी में सोने की याद अवश्य आयी। चांदनी में सो सकने का सुख तो सम्भवतः हमारे देश के अतिरिक्त दूसरी जगह सम्भव नहीं। संस्कारवश योरुप के लोग खुले आकाश के नीचे सोने की स्थिति को सब से बड़ी विवशता ही समझते होंगे। नगर समुद्र के किनारे छोटी-छोटी पहाड़ियों पर बसाया है। पत्थर गढ़ी सड़कों पर चढ़ाई-उतराई है। युद्ध में इस नगर का ध्वंस अधिक नहीं हुआ इसलिये नये बने स्थान का कोरापन नहीं लगता। मकान अनेक रूप-रंग के हैं। गर्मी में खुली हवा की आवश्यकता होने के कारण कलकत्ता, बम्बई के से ढंग के बरामदेदार मकान भी बन रहे हैं। बीच-बीच में यूनानी शैली की ढलवां छतों के ऊंचे-ऊंचे गिर्जे खड़े हैं। कई मसजिदें भी हैं। इन मसजिदों पर जामा-मसजिद के ढंग के बहुत बड़े-बड़े गुम्मद नहीं हैं। गिर्जे और मसजिद के बीच का सा ढंग है। अलबत्ता एक मीनार और उस पर छोटा गुम्मद जरूर रहता है। भिन्न-भिन्न जाति के मुसलमानों, तुर्कों,

तातारों और कज्जाखों की मसजिदें पृथक-पृथक हैं। उस दिन शुक्रवार नहीं था इसलिये सभी मसजिदों के द्वारों पर ताले पड़े थे। मसजिदें शुक्रवार को ही खुलती हैं। प्राचीन यूनानी ईसाई सम्प्रदाय के गिर्जे भी इंगलैंड या भारत के गिर्जों की तरह सदा नहीं खुले रहते, केवल पूजा के अवसर पर ही खोले जाते हैं।

सुबह का नाश्ता कर हम लोग मोटर से दक्षिण की मुस्लिम प्रधान बस्तियों की ओर चल दिये। नगर से कुछ ही दूर जाकर ड्राइवर ने दक्षिण की ओर दूर सड़क के साथ-साथ चली जाती ऊंचे टीलों की रीढ़ की ओर संकेत कर बताया—यह रोमन खाई है। कोंस्तांजा रोमन साम्राज्य में था। रोमन लोगों ने बर्बरों और मंगोलों के आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिये दो अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व यह खाई बनायी थी। हम लोग बात करने लगे—एक समय खाइयों और दीवारों से (चीन की दीवार) शत्रु के आक्रमण को रोका जा सकता था। उस समय युद्ध वर्षों तक चलते रहते थे। आज तो शत्रु आकाश मार्ग से पलक मारते सैकड़ों मील की रफ्तार से आक्रमण कर सकता है। ऐसी अवस्था में दूसरों को शत्रु बना कर कैसे त्राण सम्भव है? अब तो रक्षा शत्रुता की भावना मिटा देने में ही है।

केमरावे गांव कोंस्तांजा से लगभग पच्चीस मील होगा। गाड़ी गांव के संयुक्त कृषि क्षेत्र के दफ्तर के सामने रुकी थी। सामने ही छोटा-सा मकान गांव का क्लब या सांस्कृतिक केन्द्र बना दिया गया है। मकान नया बना नहीं है। एक बड़ा सा कमरा है। कुछ जवान लड़के-लड़कियां एक कोने में बेंचों पर बैठे थे। कुछ दीवार की टेक लगाये खड़े किसी बात पर बहुत जोर से खिल-खिला रहे थे। भीतर कुछ और छोटे-छोटे कमरे हैं। एक कमरे में बड़ी-सी मेज के चारों ओर बेंचे थी और मेज पर बहुत से पत्र-पत्रिकाएं। पांच-छः नौजवान और दो जवान लड़कियां बैठे कुछ पढ़ रहे थे। एक ओर तीन लड़-कियां बेंचों पर बैठी एक किताब से नमूने देख कर कसीदा काढ़ रही थीं। दूसरे कमरे में तीन प्रौढ़ और दो जवान दो शतरंज बिछाये खेल रहे थे। वैसा ही दूसरा खेल डोमिनो भी चल रहा था। ठीक दोपहर के समय क्लब में इतने आदमी होने का कारण रविवार का अवकाश था।

कृषि क्षेत्र के प्रधान से मालूम हो गया था कि गांव के सभी लोग दो-तीन नये आये हुओं को छोड़ कर मुसलमान हैं। अधिकांश तातार हैं और कुछ तुर्क

थे। हम लोग वाचनालय की मेज पर आ बैठे। हमें देख दो प्रौढ़ कौतूहल से समीप आ गये। एक की कतरी हुई मूंछों और गाल की उभरी हड्डियों और छोटी आंखों से तातारी रक्त स्पष्ट झलक रहा था। मेरे पास रूमानियन सिग-रेट थे। सिगरेट पेश करने के बाद पूछा—"आप के इलाके में तम्बाकू होता है या नहीं? उन लोगों ने अपने इलाके के तम्बाकू की प्रशंसा की। नाम पूछने पर उन लोगों ने इस्माइल और बेग कुछ ऐसे ही नाम बताये।

पूछा—"आप लोगों के गांव में मसजिद है?"

उन लोगों ने विनय और गर्व से सीने पर हाथ रख कर स्वीकार किया। फिर पूछा—"जुम्मे की नमाज तो आप लोग मसजिद में ही पढ़ते होंगे।"

"हां, मसजिद में चले जाते हैं या वैसे भी नमाज पढ़ लेते हैं।"

इतने में एक बूढ़े चले आये। उन की मजहबी ढंग से कतरी हुई मूंछें देख कर पूछ लिया—"क्या दोपहर की नमाज के लिये रुक गये थे?"

उन्होंने गरमी के कारण टोपी उतार सिर खुजा कर कहा—"दोपहर में दूध शहर में ले जाने वाला ट्रक आता है। यह भी तो जरूरी काम है।" यह बूढ़े क्षेत्र की डेरी के अधिकारी थे।

"आप लोग रोजा भी रखते होंगे?"

"जरूर-जरूर!" उन्होंने विश्वास दिलाया, "बारह साल से ऊपर उम्र के सब लोग रोजा रखते हैं।

प्रश्न किया—"यहां लड़के-लड़कियों के लिये स्कूल भी हैं या पढ़ने दूर जाना पड़ता है।" गांव में सातवीं श्रेणी तक स्कूल था। इस के बाद पढ़ने के लिए उन्हें पांच मील दूर जाना पड़ता है। क्षेत्र का ट्रक विद्यार्थियों को स्कूल पहुंचा कर शाम को ले भी आता है।

लड़कियों की ओर देखकर मैंने कहा—"हमारे यहां भी अब लड़कियां पढ़ना-लिखना सीखती हैं लेकिन बीस बरस पहले बड़ी-बूढ़ियां पर्दा करती थीं। अफगानिस्तान की मुसलमान औरतें तो अब भी पर्दा करती हैं।"

एक प्रौढ़ बोला—"यहां भी वैसा ही था। बहुत बरस पहले औरतें पर्दा करती थीं। लेकिन उस से क्या फायदा। यह लोग तो पढ़ती-लिखती हैं, खेती का और दूसरा काम भी करती हैं।"

एक कोने में काठ की पुरानी कुर्सी पर बैठा एक बुड्ढा काठ की पटिया पर बहुत से तार कस कर बनाये गये वाद्य-यंत्र को टुनटुनाकर सुर ठीक कर

रहा था उन्हें देख ध्यान आया और पूछा--"आप लोगों का पहनावा तो अब योरुपियन ढंग का है। क्या आप लोगों का गाना-बजाना भी बिलकुल योरुपियन ढंग का है ?"

कृषि क्षेत्र का प्रधान बोला—"हमारे यहां दोनों ढंग चलते हैं। आधुनिक ढंग भी, और लोगों का अपना परम्परागत ढंग भी। हमारा नाचने-गाने वाला दल काफी जन-प्रिय है। पड़ोस के गांव में गाने-बजाने का दंगल है। सब लोग वहां गये हैं। यदि शौक हो तो हम तातार नाच तो दिखा ही सकते हैं।"

मेरे उत्कट इच्छा प्रकट करने पर तीन-चार लड़कियों से अनुरोध किया गया। वे नाच के लिये उचित कपड़े बदलने चली गईं। बुड़ों का बाजा भी ठीक हो गया। दो नौजवान छोटे-छोटे वायलिन ले आये।

लड़कियों ने गुलाबी, लाल और नीले रंग के लंहगे और कुर्तियां पहन लीं। सिरों पर टोपियां और टोपियों पर छोटी ओढ़नियां। केशों में लम्बी-लम्बी चोटियां भी बांध लीं। नाच का ढंग योरुपियन कतई नहीं था। न हमारे कत्थक का ही ढंग था परन्तु हाव-भाव बताने का ढंग और गति, ठुमकियां और फिरकनें वैसी ही थीं जैसे हमारे यहां स्त्रियां विनोद और उत्सव के समय करती हैं।

नाच के पश्चात हम लोग गांव की मसजिद देखने गये। मसजिद टीन की ढलवां छत का छोटा सा हाल था। एक कोने पर शेष छत से प्रायः तीन-चार फुट ऊंची एक मीनार भी थी। मकान साफ-सुथरा, लिपा-पुता था। ताला खोलने पर भीतर फर्श पर टाट और दरियां बिछी दिखाई दीं। प्रकट था कि लोग घुटने मोड़ कर ही बैठते होंगे। हाते में ऊंचा घास-पात सब ओर खड़ा हुआ था। उस से वहां लोगों के अधिक आने-जाने का अनुमान नहीं होता था।

लौटते समय साथ चलने वाला एक प्रौढ़ हमें अपने मकान में ले गया। कोठरियां नयी बनी हुई थीं। सफाई अच्छी थीं। ढंग योरुपियन और भारतीय के बीच का था। दीवारों के साथ बने दीवानों के गद्दों पर कढ़े हुए कपड़े बिछे थे। एक मेज और बेंचें भी थीं।

घर में दो लड़कियां थीं। एक तेरह बरस की और दूसरी सत्रह बरस की। शरीरों पर साधारण कपड़े के फ्राक थे पाँव में कुछ नहीं। सत्रह बरस की लड़की हाई स्कूल में पढ़ रही थी। उससे पूछा—"अगले वर्ष स्कूल की शिक्षा समाप्त करके क्या करोगी ?"

लड़की ने अपने पिता की शिकायत की—"मेरा विचार तो विमान-चालिका बनने का है परन्तु पिता किसी तरह नहीं मानते।"

पिता ने लड़की को मेरे सामने ही समझाया—"यह लड़कियों के लायक काम नहीं है। बच्चों जैसी बातें मत किया करो। इस बात की इजाजत हम नहीं देंगे।"

"तो फिर दूसरा क्या काम पसन्द है?" मैंने पूछा। लड़की ने कहा, "तो फिर मैं कुछ दिन साहित्यिक विद्यालय में पढ़ूंगी और रूमानियन भाषा की अध्यापिका बनूंगी।"

इस बार सराया ने समझाया—"रूमानियन भाषा तुम्हारे लिये कठिन होगी। यों भी रूमानियन भाषा पढ़ाने वाली लड़कियों की कमी नहीं है। तुम अपनी भाषा की अध्यापिका क्यों नहीं बनना चाहती?"

जब हम लोग यह बातचीत कर रहे थे एक स्त्री बाहर से आकर आंगन में हम लोगों से जरा दूर हमारी ओर देख कर खड़ी हो गयी थी। यदि चारों ओर की परिस्थितियों का ध्यान न होता तो उस स्त्री को मोटे कपड़े की छोटी ओढ़नी, घुटनों से नीचे तक लम्बे चोले और कम घेरे के पायजामे से, विशेषकर उसके सकुचाकर दूर खड़े रहने के ढंग से देहाती पठान स्त्री ही समझता परन्तु गृहपति ने उस की ओर संकेत कर परिचय करा दिया—"यह मेरी बिढ़िया की मां है।" यानि यह प्रौढ़ा विमान-चालिका बनने की इच्छा करने वाली लड़की की मां थी। यह दो पीढ़ियों का अन्तर था। प्रौढ़ा मुझसे थोड़ा झिझकी भी परन्तु अपरिचित की ओर ओट कर देखा और उस की बेटी अतिथि से हाथ मिलाना सभ्यता का व्यवहार समझती थी।

बेराराबा से हम लोग मजीदिया की ओर गये। जब रूमानिया तुर्की सुल्तानों के आधीन था यह कस्बा किसी सुल्तान की स्मृति में बसाया गया था। पास-पड़ोस में यहां की मसजिद सब से बड़ी है। यहां के [illegible] और ईद पढ़ने आते। यह सुन कर कि कोई भारतीय [illegible] है, तीन मुसलमान नवयुवतियां भी चली आई थीं। मेरे इस्लामी ज्ञान की प्रकाण्डता यही थी कि मैंने मसजिद के द्वार पर खुदा कलमा अनुमान से पढ़ लिया था। ईद, बकरीद और शबेरात के त्योहारों के नाम जानता था। यह भी जानता था कि रोजे चांद के हिसाब से रखे जाते हैं। नमाज दिन में पांच बार पढ़ी जाती है और रात की नमाज को [illegible] कहते हैं।

यह मसजिद बेसराबा की मसजिद से छः गुनी बड़ी होगी। ऊपर बैठने के लिये गैलरी भी बनी हुई थी। मुल्ला ने बताया कि ईद के दिन तिल रखने के लिये भी जगह नहीं रहती - मैंने पूछा—"जैसे ईसाई गिर्जाघरों में स्त्रियां भी उपासना में भाग लेती है, क्या इस मसजिद में भी स्त्रियां आती हैं ?"

मुल्ला ने बताया—"पहले पर्दा था तो स्त्रियों को मसजिद में आने की आज्ञा नहीं थी। अब आ तो सकतीं हैं परन्तु यह आवश्यक है कि सिर ढंक रहें और उन्हें मर्दों के पीछे बैठने की जगह दी जाती है।"

मैंने मुस्कराकर याद दिलाया कि साधारण सामाजिक व्यवहार में तो स्त्रियों को पुरुषों से पहले ही बैठाया जाता है। मैंने अफगानिस्तान और पाकिस्तान में अभी तक पर्दा होने की बात पर विस्मय प्रकट किया। मुल्ला ने राय दी—पर्दे से धर्म का क्या सम्बन्ध ? पर्दा स्त्रियों और समाज की उन्नति के मार्ग में बाधक है।

यह मुझे मालूम था कि रूमानिया, अल्बानिया वगैरा में जहां भी मुस्लिम और ईसाई आबादियां साथ-साथ थीं सामन्तवादी और पूंजीवादी शासन में साम्प्रदायिक दंगे बहुत अधिक होते रहे थे। ईसाई लोग मुसलमानों की धर्म-भावना को ठेस पहुंचाने के लिये मसजिदों में सुअर का गोश्त फेंक देते थे और मुसलमान प्रतिकार में ईसाइयों के धर्मस्थान विशेषकर कब्रिस्तान उखाड़ डालते थे। रास्ते में बातचीत करते हुए ड्राइवर से भी पता चला था कि कोंस्तांजा के आस-पास तो जातिगत द्वेश और भी अधिक था। कभी किसी साम्प्रदायिक मामले पर और कभी स्त्रियों के सम्बन्ध में साम्प्रदायिक झगड़े हो जाते थे। किसी ईसाई या यहूदी के मुसलमान लड़की से ब्याह कर लेने पर यदि वे कहीं दूर न भाग जायें तो उन का कत्ल हो जाता था। अब ऐसी बात नहीं रही है। पिछले वर्षों में अन्तर-साम्प्रदायिक विवाहों के अवसर पर कोई झगड़ा नहीं हुआ। मजीदिया और बुखारेस्ट में वेश-भूषा का अन्तर यही है कि यहां कुछ लोग अस्तरखानी टोपी पहने भी दिखाई देते हैं, सूती कोट पतलून भी दिखाई दिये और पोशाकें कुछ कम चुस्त थीं।

संध्या समय कोंस्तांजा लौट आये। काले समुद्र की लहरों का आघात सहती दीवार के सहारे बने, कास्सा के भव्य भवन के समुद्र की ओर फैले आंगन में बैठकर काफी पीते बात करते रहे। बम्बई में मैरीन ड्राइव की सड़क पर यदि कोई रेस्तोरां समुद्र का कुछ भाग काटकर या बढ़ाव डालकर लहरों

के ऊपर बना दिया जाये तो कास्सा का दृश्य बन सकेगा । इतना अन्तर अवश्य रहेगा कि बम्बई का समुद्र उतना नीला नहीं है । काला समुद्र तो सचमुच नील का सागर ही जान पड़ता है । आंगन समुद्र के तल से दस फुट के लगभग ऊंचा बंधा है इसलिये लहरों का वेग बढ़ जाने पर भी जल ऊपर नहीं आ सकता ।

कास्सा के हाल बहुत बड़े-बड़े हैं । गत महायुद्ध से पहले कास्सा फ्रांस के समीप माण्टिकार्लो का प्रतिद्वन्द्वी था । यह दोनों हाल संसार में जुए के सब से बड़े अड्डे समझे जाते थे । जो लोग केवल जुआ खेलने की उत्तेजना के लिये इतनी दूर आ सकते थे उन की शेष तड़क-भड़क का क्या हिसाब होगा ? कोंस्तांजा भी नाजियों के अधिकार में आ गया था । उस समय कास्सा को सैनिक यातायात का केन्द्र बना दिया गया था क्योंकि उस के हाल में बड़े से बड़े ट्रक सुविधा से रख लिये जा सकते थे । दिन भर की थकावट और स्थान इतना अच्छा था कि उठने को मन न हुआ । समुद्र की ओर से आती हवा बहुत तेज हो गई तो हाल के भीतर आ बैठे । अब यहां जुआ तो नहीं हो रहा था परन्तु पीने और खाने का प्रबन्ध बहुत अच्छा था । खूब फल-फूल सजावट और मेजों के साथ बरफ की बाल्टियों में दबे हुये पेय पदार्थ । आर्केस्टरा नाच की धुनें बजा रहा था । जोड़ियां उठकर नाचने लगतीं और फिर लौट कर पीने और खाने लगतीं ।

योरुप में आइसक्रीम तो सभी जगह चलती है परन्तु बहुत ठंडे पेय का शौक रूमानिया में देखा । योरुप में लोग तेज मद्य में भी सोडा नहीं मिलाते । आसव (वाईन) में कुछ मिलाने का प्रश्न क्या । रूमानिया में मद्य का तो कहना क्या, आसव में भी बरफ और सोडा मिला लेना पसंद किया जाता है ।

दो जून दोपहर के समय देमित्र, मिहाइली, मिसेज पेत्रेस्कू, मिसेज दान, अन्दानिना और मैंने भोजन एक साथ ही किया । देमित्र ने कहा—"अब तो हम लोगों में कोई तकल्लुफ नहीं रह जाना चाहिये । यह बताइये कुछ दिन की इस रूमानिया यात्रा में आप को क्या पसन्द आया ?"

"आप की व्यवस्था में जो परिवर्तन आ गया है वही सब से अच्छा और उत्साहप्रद जान पड़ा है ।" मैंने उत्तर दिया, "इस व्यवस्था के कारण सब ओर उत्साह और आशा दिखाई देती है ।"

"नहीं नाम लेकर कोई बात कहिये ।" देमित्र ने आग्रह किया ।

"यह कठिन है मैंने कहा, "दो एक बातों का नाम लूंगा तो निश्चय ही

अभिप्राय होगा कि शेष चीजें उतनी पसन्द नहीं आईं परन्तु मुझे वास्तव में सभी कुछ अच्छा लगा है इसीलिये कह रहा हूं कि प्रगति के लिये सार्वजनिक उत्साह ही सब से अधिक संतोषजनक लगा है।"

"अच्छा संकोच तो नहीं करेंगे न ?" देमित्र ने पूछा, "दूसरा प्रश्न पूछूं ?"

"अवश्य पूछिये संकोच क्या है ?"

"यह बताइये, पसन्द क्या नहीं आया ?"

यह प्रश्न और भी कठिन था। कैसे कह देता कि सब ओर पूर्णता देख रहा हूं। मन में कई बार अनुभव हुई कचोट जबान पर आ गई। कह बैठा—"आप भी बुरा ना मानिये तो कहूं।"

सभी ने आश्वासन दिलाया—"बुरा नहीं मानेंगे।"

मैंने कहा—"आप के लेखकों का 'सृजन प्रासाद' पसन्द नहीं आया था वह मेरी पसन्द से बहुत ऊंचा है। उस प्रकार के विलास के वातावरण में रह कर मैं केवल भोग का स्वप्न देख सकता हूं। समाज की भूख और आवश्यकता की पीड़ा से सृजन के लिये तलमला अनुभव नहीं कर सकता। शायद मेरा यह संस्कार गरीबी में जीवन बिताने के कारण है। पांच सौ लेई (सौ रुपये) कीमत के गिलास से पानी पीते समय मुझे सदा यही भय रहेगा कि यह अब टूटा और तब टूटा। उन कालीनों पर चलते समय मैं अपने आप को साधारण अवस्था में अनुभव नहीं कर सकूंगा। मुझे चिंता रहेगी कि तेज चलने से कालीनों का रोयां न घिस जाये। लेखक का ध्यान तो उस के कागज पर रहना चाहिये फिर सामने टटके गुलाबों से भरा फूलदान और पांव के नीचे कालीन हुआ था न हुआ।"

मिसेज दान लेखिका नहीं है। वे विदेशों से सांस्कृतिक सम्पर्क के विभाग में काम करती हैं। मुस्करा कर बोलीं—"शायद ऐसी बातों में व्यक्तिगत रुचि का प्रश्न होता है। हम अपने लेखकों का आदर करते हैं इसलिये उन्हें सृजन कर सकने की अधिक से अधिक सुविधा देना चाहते हैं। लेखकों पर यह सब सजा के रूप में लादा तो नहीं जाता। वह उन के लिये प्राप्य है तो अपना काम पूरा कर लेने के बाद वहां जाकर विश्राम कर लिया करें।

देमित्र बोला—"मैं यशपाल से सहमत हूं। लिखना तो अपने कमरे में ही होता है। मैं कभी लिखने के लिये सृजन प्रासाद में नहीं गया। हां, जगह अच्छी जरूर है।"

मैंने और कहा—"बात कह दी है तो उस का दूसरा पहलू भी कह डालूं।

लेखकों का सृजन प्रसाद मुझे 'कर' देने वाली प्रजा पर बोझ डाल कर लेखकों के प्रति अनुचित पक्षपात जान पड़ता है। हमारे देश के लेखक तो अपनी कला की आय से जीवन की नितांत आवश्यकतायें भी पूरी नहीं कर सकते। आप के यहां लेखकों की आय आखिर क्या इतनी हो सकती है कि आपसी चंदे से इतने बड़े महल का खर्चा चला सकें? निश्चय ही सरकार आप के लिये खर्च कर रही है। आप के देश में सर्व-साधारण जनता के जीवन का स्तर कम से कम फिलहाल प्रासाद के विलास का स्तर नहीं है।"

मिहाइली, देमिच और पेत्रेस्कू ने विरोध किया—"नहीं-नहीं इसमें गलत-फहमी है। प्रासाद, सामान और सज्जा सहित जरूर सरकार की भेंट है। यह पुरानी शाही सम्पत्ति थी अब लेखक संघ को सौंप दी गई है। मजदूर संघ इत्यादि को भी ऐसे भव्य मकान दिये गये हैं। खर्चा लेखक संघ की संयुक्त आमदनी में से एक भाग निकाल कर पूरा किया जाता है?"

मिहाइली बुखारेस्ट की राष्ट्रीय प्रकाशन संस्था में काम करता है, स्वयं लेखक है। उसने पूछा—"आपके यहाँ साधारण स्थिति के लेखक के उपन्यास की कितनी प्रतियां एक संस्करण में छपती हैं?"

उत्तर दिया—"दो हजार तो छपती ही हैं।"

"दो हजार, केवल? एक संस्करण बिक कितने समय में जाता है?"

"तीन चार बरस में बिक जाये तो बुरा नहीं।"

"आप के देश की इतनी बड़ी जन-संख्या है और पुस्तकों की इतनी कम खपत होती है? अच्छा, रायल्टी किस हिसाब से मिलती है?"

"रायल्टी लेखक की स्थिति के अनुसार १०% से लेकर २०% तक हो सकती है।"

हमारे यहां भी पहले लगभग यही स्थिति थी परन्तु अब हम आठ दस हजार से कम कोई उपन्यास नहीं छापते। रायल्टी हमारे यहां ४०% दी जाती है।

"नये पुराने लेखकों के लिये एक ही हिसाब चलता है?"

"नहीं, रायल्टी का अनुपात एक ही चलता है परन्तु पुराने या लोकप्रिय लेखक की पुस्तक की प्रतियां अधिक छपती हैं और नये संस्करण भी जल्दी होते हैं।"

मैंने प्रश्न किया—"आपके यहां वर्ष भर में कितनी नयी पुस्तकें प्रकाशित हो जाती हैं?"

"डेढ़ सौ दो सौ तक संख्या पहुंच सकती है।"

"बस ?" मैं हंस दिया, "हमारे यहां प्रति वर्ष नयी पुस्तकों की संख्या डेढ़-दो हजार से कम नहीं होती होगी। पुस्तक चाहे जैसी हो, वह छप सकती है और चतुर एजेण्ट उसे बेच भी लेता है। ऐसी पुस्तकें कम हैं जो दो या तीन बार छपती हैं। आप के यहां कम लेखकों की पुस्तकें अधिक संख्या में छपती हैं। हमारे यहां अधिक लेखकों की पुस्तकें कम संख्या में छपती हैं। शायद कागज हमारे देश में अधिक खप जाता होगा। क्या छपने योग्य है यह निर्णय हमारे यहां प्रकाशक अपनी बेचने की शक्ति के अनुसार करता है।"

मिहाइली ने कहा—"आपके यहां पुस्तकों से होने वाली आय बहुत अधिक लोगों में बंट जाती है। उसमें निर्वाह किसी का नहीं हो सकेगा। मुख्य भाग प्रकाशक ही ले जाता होगा। हमारे यहां भी पहले यही स्थिति थी। इस ढंग में राष्ट्रीय अपव्यय बहुत है ?"

मैंने आपत्ति की—"क्या छपने योग्य है, इस का निर्णय जब किसी एक संस्था के हाथ में रहेगा तो विचारों की स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध लगने की आशंका भी रहेगी।"

"क्यों ? इस का निर्णय स्वयं लेखकों के संघ पर रहना चाहिये।"

मैंने पूछा—"आपके यहां प्रकाशन योग्य होने की कसौटी क्या है ?"

"साहित्य के सम्बन्ध में मुख्य कसौटी है कलात्मकता।"

"ऐसा साहित्य जिस का आप की आधुनिक व्यवस्था से कोई भी सम्पर्क न हो उदाहरणतः अनातोल फ्रांस के उपन्यास 'ताई' का अनुवाद क्या आप आज छापेंगे ?"

"क्यों नहीं, छापा है और छापेंगे। हम शेक्सपियर के नाटक और बेलजाक की कहानियां भी छाप रहे हैं। हैमलेट का हमारी आज की व्यवस्था से क्या सम्पर्क हो सकता है ? आप अपने यहां का कुछ चुना हुआ साहित्य पुराना और नया हमें दीजिये, हम उसे भी छापेंगे।"

उस दिन संध्या खूब बाजार की सैर की। बुखारेस्ट में रूस, जर्मनी, चेको-स्लोवाकिया, ब्रिटेन सभी जगह की मोटरें दिखाई देती हैं। मोटर अभी विदेश से ही खरीदी जाती है। अमरीकन मोटरें भी दिखाई देती हैं। अमरीका रूमानिया या समाजवादी देशों से आर्थिक असहयोग की नीति पर डटा हुआ है। यह लोग अमरीकन मोटरें या दूसरा अमरीकन सामान स्विटजरलैंड द्वारा खरीदते हैं।

स्विटज़रलैंड से इन लोगों का काफी व्यापार है। बाज़ार में रूसी, चेक और जर्मन सामान के अतिरिक्त फ्रांस का सामान विशेष तौर पर प्रसाधन का सामान काफी दिखाई देता है। फ्रांस के माल का दाम यहां बहुत ज्यादा है। रूमानिया के बने साबुन की अपेक्षा फ्रांस से आये साबुन का दाम पन्द्रह-बीस गुना अधिक है। फ्रांस की चीजों के लिये इन लोगों में अभी तक विशेष आदर है।

सुबह जगह-जगह पर स्वतंत्र बाजार लगते हैं जिन में नगर के समीप के गांवों से किसान साग-सब्जी, मक्खन-पनीर, अण्डा-मुर्गी और फल काफी मात्रा में बेचते हैं। इस बाजार में मूल्य भाव-तोल से तय होता है। शेष दुकानों पर बंधे हुये निरख चलते हैं। बाजार में लोग घर की दस्तकारी का माल कालीन और कढ़े हुये कपड़े आदि भी बेचते दिखाई देते हैं। नगर के चौक में देहात से घर के बनाये कालीन बेचने आये लोगों की पांत की पांत लगी रहती है। कालीनों का यह शौक मध्य एशिया से बहुत मिलता-जुलता है। लोगों की छोटी-छोटी निजी दुकानें भी काफी संख्या में दिखाई देती हैं। हाथ के काम के दाम बहुत ज्यादा है।

यहां मेरी एक कहानी प्रकाशित हुई थी और एक छोटा-सा लेख भी 'नव रूमानिया' के लिये लिखा था। जेब में हजार से अधिक लेई के नोट भरे थे। कुछ सामान खरीदना ही चाहिये था। सुअर के चमड़े का एक छोटा सूटकेस साढ़े चार सौ लेई में खरीद लिया। दाम बहुत ज्यादा लगे। उस सूटकेस का दाम बम्बई में क्या होना चाहिये, यह कौतूहल था। लौटने पर 'फ्लोरा फाउंटेन' के समीप एक दुकान पर उस से मिलता-जुलता सूटकेस दिखाई दिया। दाम एक सौ चालीस रुपये बताये गये। ग्रामोद्योग की सरकारी दुकानें भी हैं। जहां घरों में तैयार किया सामान बिकता है। सामान प्राय: कुल्लू के रंग-ढंग का होता है। यशोदा के लिये एक लहंगे का कपड़ा तीन सौ लेई में खरीद लिया। साधारणत: पदार्थों के मूल्य के विचार से लेई का मूल्य चार आने के लगभग होना चाहिये लेकिन विनिमय का दर इस से भिन्न है। यहां न्यूनतम वेतन लगभग छ: सौ लेई है। बुखारेस्ट में कई वर्ष से रहने वाले अली का विचार है कि साधारण विद्यार्थियों का निर्वाह ढाई-तीन सौ लेई प्रतिमास में हो सकता है। यहां भी सभी विद्यार्थियों को दो सौ लेई छात्रवृत्ति मिलती है। बेकारी की आशंका नहीं है। शिक्षा तथा चिकित्सा का दायित्व समाज अथवा शासन व्यवस्था पर है।